GP-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

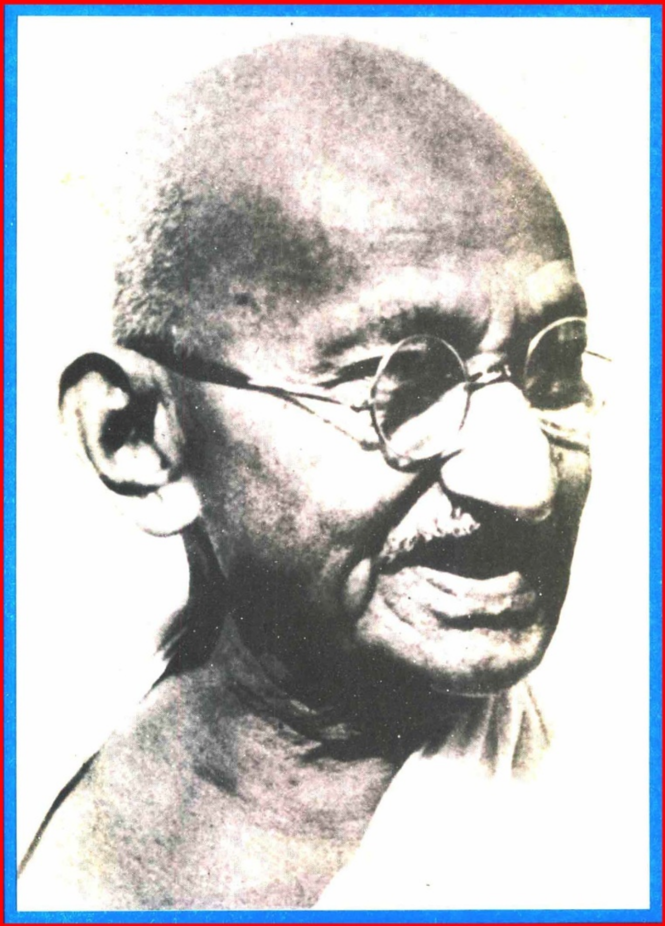

गाँधी चिन्तन

GP - 03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

गाँधी चिन्तन

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. बी. अरुण कुमार

सह आचार्य,राजनीति विज्ञान

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. एन. राधाकृष्णन्

पूर्व अध्यक्ष गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति राजघाट, नई दिल्ली

प्रो. एम.एल. शर्मा

आचार्य,गांधी अध्ययन केन्द्र

पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

प्रो. आर.एस. यादव

विभागाध्यक्ष(राजनीतिक विज्ञान) एवं निदेशक, गांधी अध्ययन केन्द्र

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

प्रो. के.एस. भारती

विभागाध्यक्ष(गांधी एवं विचार) टी.के.एम. नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

प्रो. पी. मोटियानी

शांति एवं संदर्भ निवारण विभाग

गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद गुजरात

सम्पादक एवं पाठ लेखक

सम्पादक

डॉ. बी. अरुण कुमार

सह आचार्य,राजनीति विज्ञान

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई लेखक	इकाई संख्या	इकाई लेखक	इकाई संख्या
प्रो. (डॉ.) हिमांशु बोराई आचार्य,राजनीति विज्ञान विभाग हेमवती नन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय श्रीनगर(गढ़वाल) उत्तरांचल प्रदेश	2	**डॉ. फूल सिंह गुर्जर** व्याख्याता, राजनीति विज्ञान राजकीय महाविद्यालय, कोटा	1,13
प्रो. विल्लयम भास्करन डिपार्टमेन्ट ऑफ गाँधीयन थॉट एण्ड साइंस गाँधीयन रुरल इंस्टीट्यूट, गांधीग्राम(तमिलनाडु)	15	**डॉ. अल्का अग्रवाल** व्याख्याता, राजनीति विज्ञान राजकीय महाविद्यालय,	12
डॉ. बी. अरुण कुमार सह आचार्य,राजनीति विज्ञान वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	3,7,8,14	**डॉ. जुगल दाधीच** सहायक आचार्य, अहिंसा एवं शान्ति अध्ययन विभाग जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाड़नू	11
डॉ. हुकमा राम सुथार व्याख्याता, राजनीति विज्ञान राजकीय महाविद्यालय, बाड़मेर	7	**डॉ. आशीष कुमार** व्याख्याता, व्यावसायिक प्रशासन इस्लामिया डिगरी कॉलेज, देवबन्द, सहारनपुर उत्तर प्रदेश	10
डॉ. राधाकृष्णन व्याख्याता, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, साम्भरलेक	6,9,16		

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) बी.के. शर्मा**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक,संकाय विभाग	सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा**	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन : अप्रैल 2012 ISBN - 13/978-81-8496-338-0

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय सूची

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	गाँधी चिन्तन : एक परिचय	7–23
इकाई - 2	गाँधी पर प्रभाव	24–35
इकाई - 3	राजनीतिक आध्यात्मीकरण पर गाँधी के विचार	36–54
इकाई - 4	राज्य एवं राजनीतिक शक्ति पर गाँधी के विचार	55–64
इकाई - 5	गाँधी चिंतन में स्वराज्य एवं रामराज्य	65–82
इकाई - 6	गाँधी एवं विचारधाराएँ	83–103
इकाई - 7	सत्याग्रह का दर्शन	104–126
इकाई - 8	सत्याग्रह के तकनीक	127–135
इकाई - 9	महात्मा गाँधी के धर्म संबंधी विचार	136–155
इकाई - 10	स्वदेशी पर गाँधी के विचार	156–164
इकाई - 11	गाँधी एवं ट्रस्टशिप	165–180
इकाई - 12	रोटी के लिए श्रम	181–187
इकाई - 13	गाँधी एवं वर्ण व्यवस्था	188–197
इकाई - 14	आधुनिक सभ्यता पर गाँधी के विचार	198–219
इकाई - 15	सर्वोदय की अवधारणा	220–239
इकाई - 16	शान्ति सेना	240–252

इकाई - 1

गाँधी चिन्तन : एक परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 राजनीतिक विषयों पर चिन्तन

1.3 आर्थिक विषयों पर चिन्तन

1.4 सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी विचार

1.5 सारांश

1.6 अभ्यास प्रश्न

1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात निम्नलिखित के बारे में विद्यार्थी आपना समझ विकसित कर सकेंगे

- गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक चिन्तन का सार।
- गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत आर्थिक चिन्तन का सार।
- गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत सामाजिक चिन्तन का सार।

1.1 प्रस्तावना

एक परम्परागत गुजराती वणिक परिवार के सदस्य के रूप में जीवन की शुरूआत करने वाले मोहन दास कर्मचन्द गाँधी ने तत्कालीन मध्यमवर्ग की मनोवृत्ति और आकांक्षाओं के अनुरूप इंग्लैण्ड से "बैरिस्टर' की उपाधि प्राप्त की और इसे आजीविका के साधन के रूप में प्रयुक्त करने के सिलसिले में अफ्रीका गये तो यहां से शुरूआत हुयी जीवनलक्ष्य परिवर्तन की। अफ्रीका में उन्होंने उस अन्याय और अत्याचार को देखा जो वहाँ गोरी सरकार रंग और जाति भेद के आधार पर प्रवासी भारतीयों पर कर रही थी। डर्बन से प्रिटोरिया जाते समय रात मैरित्सबर्ग स्टेशन पर प्रथम दर्जे के रेल के डिब्बे से उतार दिये जाने की सर्वविदित घटना इस दिशा में निर्णायक सिद्ध हुयी। अपने अपमान के बारे में व्यग्र होकर वह जितना ही सोचते गये, एक इस्पाती दृढ़ता और निश्चय उनमें उतना ही बलवान होता गया। इस घटना को वह अपने जीवन का सबसे सृजनशील और नियामक अनुभव मानते थे। उसी क्षण से उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के शासकीय और वर्ण विद्वेषक सामाजिक अन्याय के खिलाफ कमर कस ली।

इस प्रकार गाँधीजी स्वयं अपमान, उपेक्षा का शिकार होने तथा अपने हिन्दुस्तानी भाईयों को सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक अधिकार दिलाने के संघर्ष के लिए समर्पित हो गये। स्वयं उन्हीं के शब्दों में -'इस प्रकार मैं हिन्दुस्तानी समाज की सेवा में ओत-प्रोत हो गया,

उसका कारण आत्म दर्शन की अभिलाषा थी। ईश्वर की पहचान सेवा से ही होगी, यह मान कर मैंने सेवा धर्म स्वीकार किया था।

गाँधी ने अफ्रीका प्रवास के दौरान ही सभी धर्म पुस्तकों का अध्ययन कर लिया था। रस्किन की अनटु दिस लास्ट से गाँधी ने "सर्वोदय" का विचार ग्रहण किया, जिसे उनके सामाजिक न्याय की अवधारणा का मुख्य आधार माना जा सकता है। गाँधी ने जीवन के सभी पक्षों (आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक) की गतिविधियों का मार्गदर्शन का उसके अंतिम ध्येय, ईश्वर प्राप्ति को माना है अत: सभी मानवों की सेवा उसे पाने के प्रयास का आवश्यक अंग बन जाती है।

गाँधी जी मूलत: मानवतावादी होने के कारण, भारतीय समाज में कुरीतियों अंधविश्वासों पर आधारित व्यक्ति-व्यक्ति के प्रति जन्म, लिंग या व्यवसाय के आधार पर किये जाने वाले असमानतापूर्ण दुर्व्यवहार का विरोध किया तथा भारतीय समाज में व्याप्त इन बुराइयों को दूर करने के लिए कार्य तथा विचार प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि सम्पूर्ण मानव एक ही परिवार के सदस्य हैं। धर्म जाति, समुदाय तथा राष्ट्रों के द्वारा मानव-मानव के मध्य किये गये भेद में वे विश्वास नहीं करते थे तथा सभी मानवों में पूर्ण समानता और सभी का अधिकतम कल्याण के पक्षधर थे। वे अपने देशवासियों तथा अन्य देशों के लोगों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं करते थे और बिना जाति, धर्म तथा रॉष्ट्रीयता के सम्पूर्ण मानव जाति से करते थे।

1.2 राजनीतिक विषयों पर चिन्तन

नैतिकता, स्वतंत्रता, समानता तथा न्याय पर आधारित समाज का पुनर्गठन करने के लिए गाँधी ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था में सुधार के लिए विचार, किये।

1.2.1 साधन तथा साध्य की पवित्रता

उन्होंने साधन तथा साध्य को अलग-अलग नहीं माना क्योंकि ये दोनों मिलकर ही नैतिक जीवन का निर्माण करते हैं। यह केवल नैतिक सिद्धान्त न होकर मनोवैज्ञानिक सत्य है। गाँधी के अनुसार, साध्य तथा साधन को पृथक् करने वाली कोई दीवार नहीं हैं। साधन बीज तथा साध्य पेड को समान हैं ओर पेड तथा बीज के समान ही इन दोनों का अटूट सम्बन्ध है। यही कारण है कि गाँधी के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विचारों में साध्य कि प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता को अपरिहार्य माना गया है।

गाँधीजी ने साध्य तथा साधन की एकता के सिद्धान्त का निरूपण करके क्रांतिकारी कार्य किया है। गाँधीजी इस मत पर दृढ़ और अटल थे कि चाहे कितना ही महान् उद्देश्य या बडा लाभ अथवा हानि हो अनैतिक साधनों। का प्रयोग नहीं क्रिया जा सकता। नैतिक साधनों पर इतना बल दिये जाने का अर्थ यह नहीं था कि बुराई, अन्याय तथा अत्याचार को सहन किया जाय। गाँधी अन्याय का विरोध करते हुये जिये तथा मरे। गाँधी इस तथ्य से भी अवगत थे कि यदि अन्याय का विरोध अहिंसा से न किग्रा गया तो किसी अन्य तरीके से किया जायेगा अत: उनका कहना था कि "मेरा यह विश्वास है कि जहां केवल हिंसा तथा कायरता में से किसी एक

को चुनना हो तो मैं हिंसा की सलाह दूँगा लेकिन इसके साथ उनका यह भी दृढ़ विश्वास था कि अहिंसा हिसा से अपार रूप में महान् है।

साध्य व साधन की पवित्रता के प्रबल समर्थक होने के कारण ही गाँधी ने जीवन के हर क्षेत्र में इसे अंगीकार करने तथा उसे आध्यात्मिकता से अभिन्न बताते हुये व्यक्ति की सामाजिक व आर्थिक गतिविधियों का ही नहीं अपितु राजनीति का भी आध्यात्मीकरण करने की आवश्यकता महसूस की।

1.2.2 सत्य और अहिंसा

सत्य और अहिंसा को गाँधीजी ने मानव जीवन तथा सामाजिक सम्बन्धों की आधार शिला के रूप में पूर्व कल्पना की है। उनका कहना था कि यदि मेरे देश के विकास के लिए असत्य तथा हिंसा आवश्यक है तो मेरे देश की अवनति होने दो। मैं पूरी दुनियाँ की कीमत पर भी सत्य तथा अहिंसा की कुर्बानी नहीं दे सकता। सत्य की कीमत पर मैं देश की सेवा नहीं करना चाहता क्योंकि मैं जानता हूँ कि जो व्यक्ति सत्य को त्याग सकता है वह अपने देश तथा सबसे घनिष्ठ व प्रिय को भी त्याग सकता है।

इसी तरह गाँधीजी ने अहिंसा पर दृढ़ संकल्पित रहने को बहुत महत्वपूर्ण माना। उनके अनुसार अहिंसा ही सत्य की प्राप्ति का साधन हो सकता है। इसलिए अहिंसा को जीवन सिद्धान्त के रूप में अपनाया जाना चाहिए। यह कायरता अथवा अवसरवाद का प्रतीक नहीं होना चाहिए। महान् कर्मयोगी थे, जिनका कार्यक्षेत्र समग्र मानवता की सेवा करना था, अत: वह अपने लक्ष्य-ईश्वर प्राप्ति को, अहिंसा रूपी साधन द्वारा प्राप्त करना चाहते थे और यह कार्य, उनके अनुसार सच्चे समाजसेवक के रूप में ही पूरा किया जा सकता है।

1.2.3 राजनीति का आध्यात्मीकरण

गाँधीजी के लिए धर्म, मानवीय कार्यकलापों से पृथक् मात्र कर्मकाण्ड नहीं था, अपितु वह सम्पूर्ण जीवन का नैतिक आधार था। वास्तविक धर्म आसन्न न्याय का सिद्धान्त है और सामाजिक सम्बन्धों में न्याय के नैतिक सिद्धान्तों का क्रियान्वयन ही 'वास्तविक राजनीति' है। दोनों का (धर्म तथा राजनीति) आधार नैतिकता या सामाजिक आचार है। जीवन विभिन्न अभेद्य खण्ड में विभाजित न होकर समग्र है यही कारण है कि गाँधी ने राजनीति का नीतिकरण किया। प्रश्न यह उठता है कि गाँधी ने एक मानवतावादी, आध्यात्मिक पुरूष होते हुये भी राजनीति को अपने ' कर्म' का आधार क्यों बनाया? स्वयं गाँधी ने इसका कई बार जवाब दिया है। राजनीति उनके जीवन का ध्येय नहीं था, अपितु जनता को, उसके जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति के लिए समर्थ बनाने के विभिन्न साधनों में से एक था। उनका यह मानना था कि राजनिति में भाग लेना इसलिए अनिवार्य है कि राजनीति ने हमारे " सम्पूर्ण जीवन को साँप के समान जकड़ रखा है और कोई कितना ही प्रयास करें वह इस सर्प-समान राजनीति की जकड़न से मुक्त नहीं हो सकता", वे इस साँप से कुश्ती (संघर्ष) करना चाहते थे।

1.2.4 स्वराज एवं समाज सुधार

समाज सुधार के कार्य को वे राजनीतिक कार्य की तुलना में किसी भी प्रकार से कम महत्वपूर्ण या गौण नहीं मानते थे, अपितु उनका रारजनीति में भाग लेने का करण यह था कि एक हद तक राजनीतिक कार्यो की सहायता के बिना सामाजिक कार्य असंभव हो जाता है। अत: उन्होंने राजनीतिक गतिविधियों में उसी सीमा तक भाग लिया जितना कि सामाजिक कार्य के लिए सहायक हो। इसीलिए उन्होंने स्वीकार किया कि जिसे शुद्ध राजनीतिक कार्य कहा जाता है उसकी अपेक्षा इस प्रकृति (राजनीतिक) का समाज सुधार या आत्म शुद्धिकरण उन्हें सैकड़ों गुणा प्रिय है।

यही कारण है कि गाँधी ने समाज सुधार पर निरन्तर बल दिया हैं। उन्होंने कांग्रेस के उग्रवादियों के इस मत को कभी स्वीकार नहीं किया कि पहले स्वाधीनता प्राप्त कर ली जाय, समाज सुधार की समस्या स्वाधीन भारत स्वत: हल कर लेगा। गाँधी का मानना था कि सामाजिक कुरीतियाँ स्वराज की ओर, हमारी गति में बाधक हैं। जितना हमारा समाज-सुधार होगा उतनी ही तीव्र गति से हम अपने निर्धारित लक्ष्य की और अग्रसर होंगे। समाज सुधार को स्वराज की प्राप्ति तक स्थगित करने का अर्थ है कि हम स्वराज का अर्थ ही नहीं समझते। सामाजिक पुनर्गठन तथा राजनीतिक स्वराज के लिए संघर्ष का काम साथ-साथ चलना चाहिए। इन दोनों में प्राथमिकता तथा पार्थक्य का प्रश्न ही नहीं है। नयी समाज व्यवस्था को बलपूर्वक थोपा नहीं जा सकता। ऐसी चिकित्सा रोग से भी बदतर होगी। वे अपने आपको व्याकुल समाज सुधारक मानते थे। वे मौलिक तथा सतत सामाजिक पुनर्गठन की प्रक्रिया चाहते थे लेकिन सब कुछ स्वभाविक रूप से हो, ऊपर से थोपा न गया हो।

सामाजिक सुधार तथा राजनीतिक स्वाधीनता को गाँधी द्वारा समान महत्व दिये जाने का कारण यह था कि वे समाज के सभी व्यक्तियों को केवल राजनीतिक रूप से ही स्वतंत्र कराने से संतुष्ट नहीं थे अपितु अपार कुरीतियों, अंधविश्वासों, परम्पराओं तथा धर्मशास्त्रों की अनुपालना के नाम पर भारतीय समाज में व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के प्रति किये जाने वाले दुर्व्यवहार, अमानवीय भेदभाव तथा शोषण को समाप्त कर समाज को समानता व न्याय के आधार पर पुनर्गठित करना चाहते थे। उनके समाज सुधार की योजना में रचनात्मक कार्यक्रम का रूप से देश को सक्षम बनाना चाहते थे। उनके लिए यह महत्वपूर्ण नहीं था कि अत्याचार विदेशी लोगों द्वारा किया जा रहा है या स्वयं इसी देश के लोगों द्वारा, उनका लक्ष्य तो अत्याचार को समाप्त करना था इसीलिए उन्होंने 'अस्पृश्यता' के रूप में सवर्ण हिन्दुओं द्वारा निम्न जातियों पर किये जाने वाले दमन तथा अत्याचार के विरूद्ध आंदोलन चलाया। लेकिन गाँधी ने न तो बल के आधार पर स्वतंत्रता का समर्थन किया और ना ही नयी सामाजिक व्यवस्था को बलात् जनता पर थोपने का। दोनों ही क्षेत्रों में जनमत जागृत कर जनता के हृदय परिवर्तन द्वारा जन-आन्दोलन के माध्यम से लक्ष्य प्राप्त करना चाहा। इस संदर्भ मे एक बडा अन्तर यह है कि जहाँ गाँधी ने विदेशी शासन के हृदय परिवर्तन के लिए बार-बार 'सत्याग्रह' तथा 'उपवास' की शक्ति का प्रयोग किया, वहीं सवर्ण हिन्दुओं को अस्पृश्यता निवारण हेतु बाध्य करने के लिए इन हथियारों का प्रयोग नहीं किया। यद्यपि 1932 में साम्प्रदायिक पंचाट में

अस्पृश्यों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिये जाने के विरोध में गाँधी द्वारा आमरण-अनशन किया गया था लेकिन इसका लक्ष्य 'अस्पृश्यता' को समाप्त करना नहीं।

वे केवल अंग्रेजी शासन से मुक्ति को ही स्वराज नहीं समझते थे अपितु उनका मानना था कि औसतन ग्रामीण में यह चेतना आये कि वह स्वयं अपना भाग्यदाता तथा अपने द्वारा चयनित प्रतिनिधि के रुप में स्वयं विधायक है, वहीं वास्तविक स्वराज है। सत्ता के केन्द्रीकरण को लोक हित के विरुद्ध मानने के कारण उन्होंने सत्ता के अधिकतम विकेन्द्रीकरण को ग्रामीण इकाई के आधार पर लागू करने का विचार रखा। वे चाहते थे कि ' स्वराज' गरीब व्यक्ति का स्वराज हो और राजकुमारों तथा पूंजीपतियों के साथ ही आम आदमी भी जीवन की आवश्यकताओं का उपभोग कर सके। इसका अर्थ यह नहीं कि आम आदमीं भी जीवन की आवश्यकताओं का उपभोग कर सके। इसका अर्थ यह नहीं कि आम जनता के पास भी भव्य महल हो, यह प्रसन्नता के लिए आवश्यक नहीं है। अपितु जीवन की वे सब सामान्य सुविधायें प्राप्त हों, जिनका धनवान व्यक्ति उपभोग करते हैं, निस्संदेह इसके बिना स्वराज पूर्ण नहीं हो सकता। गाँधी धर्म या नस्ल के भेदभाव के बिना स्वराज के समस्त व्यक्तियों की भलाई का सपना देखते थे। स्वराज किन्हीं विशेष धर्मानुयायियों या पूँजीपतियों के एकाधिकार की वस्तु न होकर सभी के लिए, विशेष तौर से किसान, अंधों, भूखों तथा विकलांग, दलित परिश्रमी अर्थात् असहायों का होगा। गाँधी ने यह सपना देखा था कि ' स्वराज' में हमारी सभी दुर्बलतायें समाप्त हो जयेंगी तथा हमारा समाज मानवतावादी मूल्यों पर आधारित होगा। यद्यपि स्वराज को वे अल्पकाल की व्यवस्था मानते थे, उनका लक्ष्य था- राज्य विहीन समाज जिसमें नैतिक सत्ता की सार्वभौमिकता होगी।

1.2.4 आदर्श राज्य

गाँधीजी राज्य को हिंसा का संगठित स्वरूप मानते थे और आदर्श के तौर पर एक राज्य और वर्ग विहीन समाज की कल्पना करते थे। गाँधीजी ने एक ऐसे राज्य का सपना देखा जिसे उन्होंने रामराज्य का नाम दिया। लेकिन इसका अर्थ किसी धर्म पर आधारित राज्य से न होकर ईश्वर के राज्य से था। राजनीतिक दृष्टि से यह पूर्ण प्रजातंत्र है, जिसमें गरीबी और अमीरी, रंग तथा मतमतांतर के आधार पर असमानताओं का सर्वथा अन्त हो जाता है। रामराज्य में भूमि तथा राज्य जनता का होगा। न्याय शीघ्र पूर्ण और सस्ता होगा, प्रत्येक व्यक्ति को अपने तरीके से पूजा प्रार्थना, स्वतंत्र विचाराभिव्यक्ति और लेखन की स्वतंत्रता होगी और नैतिक कानूनों के स्वैच्छिक पालन द्वारा ही यह सब होगा।

1.2.5 अन्तरराष्ट्रीयता

गाँधी केवल अपने देश के लोगों के लिए ही स्वतंत्रता, समानता और न्याय नहीं चाहते थे बल्कि उनकी सेवा के कार्य क्षेत्र में सम्पूर्ण मानवता समाहित थी। उनका कहना था कि वे भारत की स्वतंत्रता के लिए जीने-मरने को तैयार है, क्योंकि स्वतंत्र भारत ही सम्पूर्ण मानवता की सेवा के लिए खड़ा हो सकता है। लेकिन यह स्वतंत्रता वे किसी अन्य देश के शोषण या पतन के मूल्य पर प्राप्त नहीं करना चाहते थे। वे देश को स्वतंत्र करवाना चाहते थे ताकि अन्य

देश उससे कुछ सीख सकें, और देश के संसाधनों का उपयोग मानव जाति के करवाना चाहते थे ताकि अन्य देश उससे कुछ सीख सकें, और देश के संसाधनों का उपयोग मानव जाति के लाभ के लिए किया जा सके। जैसे देश भक्ति की अवधारणा हमें यह शिक्षा देती है कि व्यक्ति को परिवार के लिए, परिवार को गांव के लिए, गांव को जिले के लिए, जिले को प्रान्त के लिए और प्रान्त को देश के लिए मर जाना चाहिए। इसीलिए एक देश को स्वाधीन हो जाना चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर विश्व के कल्याण के लिए वह बलिदान हो सकें।

गाँधी ने अपने जीवन का लक्ष्य सम्पूर्ण मानव समाज के हर व्यक्ति में आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की भावना की स्थापना बताते हुये कहा था कि यदि " मैं मानव-समाज के शारीरिक रूप से कमजोर से कमजोर स्त्री-पुरूष में यह विश्वास जगा सकूं कि अपने आत्म-सम्मान और स्वतंत्रता का वह स्वंय संरक्षक है, तो मेरा लक्ष्य पूरा हो जायेगा। यह विश्वास इतना दृढ़ होना चाहिए कि संपूर्ण विश्व भी इसे नहीं हिला सकें।

इस प्रकार गाँधी के राजनीतिक विचार भी नैतिकता तथा मानवतावादी आधार पर अवलम्बित थे। राजनीति को उन्होंने न्याय, स्वतंत्रता और समानता की प्राप्ति तथा मानवता की सेवा के एक साधन के रूप मैं अपनाया। लेकिन सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह जैसे व्यक्तिगत मूल्यों को राष्ट्रीय स्तर पर एक आंदोलन के रूप में परिवर्तित कर उन्होंने राजनीति के मौलिक आधार, प्रकृति तथा उद्धेश्य को अपनी अवधारणाओं के साचे में ढाल लिया। हिंसा को राज्य का अविभाज्य अंग मानकर अस्वीकार कर दिया और एक ऐसे समाज की कल्पना की जिसके कानून पालन का आधार राज्य, शक्ति, दण्ड या भय न होकर नैतिकता थी। उन्होंने राजनीति तथा स्वराज को निम्नतम व्यक्ति के हित का साधन बनाने का स्वप्न देखा और विश्व बन्धुत्व तथा संपूर्ण मानव समाज की सेवा के लिए राजनीति को साधन के रूप में अपनाने की बात की।

1.3 आर्थिक विषयों पर चिन्तन

जीवन के अस्तित्व के लिए अर्थ आवश्यक है। रोटी, कपड़ा और निवास, तीनों मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुद्रा अनिवार्य है। समाज का एक वर्ग करोड़पति हो और दूसरी ओर एक ऐसा वर्ग जो भर पेट भोजन भी न प्राप्त कर सके, ऐसे समाज को न्याय पर आधारित या नैतिकता पर आधारित समाज नहीं कहा जा सकता। गाँधी ने इस तथ्य पर बल देते हुये विद्‌यमान अर्थ- व्यवस्था तथा अर्थ - सम्बन्धों में मौलिक परिवर्तन की व्यवस्था दी जिसके परिणामस्वरूप समाज में सभी व्यक्ति जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। प्रत्येक व्यक्ति को इतना काम मिले कि वह अपनी इन मूल आवश्यकताओं को पूरा कर सके और यह तभी संभव हो सकता है जबकि इन आवश्यकताओं के उत्पादन के साधनों पर आम जनता का नियंत्रण रहे, जनता को शोषण का माध्यम न बनाया जाय। इस क्षेत्र में किसी देश या व्यक्तियों के समूह का एकाधिकार होना अनुचित तथा अन्यायिक होगा। सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए गाँधी के आर्थिक विचारों के मुख्य पहलू इस प्रकार है-

1.3.1 नैतिकता पर आधारित अर्थ-व्यवस्था

राजनीति के समान ही अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध में उनका विचार था कि सच्चा अर्थशास्त्र नैतिकता के महान् नियमों के प्रतिकूल हो ही नहीं सकता। सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय चाहता है और समाज के प्रत्येक व्यक्ति का हित चाहता है, यहां तक कि दुर्बलतम व्यक्ति का भी सामाजिक हित चाहता है, और अच्छे जीवन के लिए आवश्यकता भी है। क्योंकि व्यक्ति में नैतिक बोध होगा तभी वह आर्थिक रूप से परोपकार कर सकता है। नैतिकता के आधार पर अर्थ संचालन करने पर ही व्यक्ति या राष्ट्र शोषण की दुर्भावना का त्याग कर सकता है तथा दूसरे व्यक्ति को भूखा-नंगा रखकर अपने ही स्वार्थो को सिद्ध करने में नहीं लगा रह सकता। इसी आधार पर गाँधी ने आर्थिक क्षेत्र में अपरिग्रह के विचार का समर्थन किया और कहा कि यदि व्यक्ति ऐसी चीज लेकर रखता है जिसकी उसे तात्कालिक उपयोग के लिए आवश्यकता नही है तो वह किसी दूसरे की चोरी करता है। प्रकृति का यह मौलिक नियम है कि वह रोज उतना ही उत्पन्न करती है जितनी हमे जरूरत हो। यदि हर व्यक्ति प्रतिदिन अपनी आवश्यकतानुसार ही ग्रहण करे तो इस दुनियाँ में न तो गरीबी रहे और ना ही

1.3.2 औद्योगीकरण का आधार शोषण

आधुनिक विज्ञान और तकनीक व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग बनता जा रहा है और इसे सभ्यता और विकास का चिह्न माना हैं वहीं गाँधी ने वैज्ञानिक आविष्कारों पर आधारित औद्योगीकरण और मशीनों का तीव्र विरोध किया है। विरोध का आधार है नैतिकता। बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए बहुत अधिक मात्रा में कच्चे माल तथा बड़े बाजारों की खोज की यह प्रवृत्ति साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद को जन्म देती है जो शोषण पर आधारित और नैतिकता के विरूद्ध है। इस प्रकार औद्योगीकरण पूर्णतया शोषण की क्षमता पर आधारित है।

गाँधी द्वारा मशीनीकरण के विरोध का मूल कारण यही था कि मशीनों ने ही एक राष्ट्र को दूसरे का शोषण करने में समर्थ बनाया है। मशीनों के कारण ही मानव का शारीरिक तथा नैतिक पतन हुआ है। औद्योगिकरण के पारिणामस्वरूप धन थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित हो जाता है और बहुसंख्यक वर्ग को अपना जीवन अत्यधिक निर्धनता में व्यतीत करना पड़ता है इसलिए गाँधी ने मशीनों, के साम्राज्य को समाप्त करने का दृढमत रखा। उनका कहना था कि मशीनें भी कायम रहे लेकिन वे पूर्णतया मानवीय श्रम का स्थान न लें।

1.3.3 कुटीर उद्योगों का समर्थन

गाँधी ने औद्योगीकरण के स्थान पर कुटीर उद्योगों का समर्थन किया क्योंकि इसके द्वारा ही भारत के करोड़ों ग्रामीण बेरोजगार, भूखे लोगों को शारीरिक श्रम द्वारा आजीविका का साधन मिल सकता था और उत्पादन जनता के हाथ में होने से अर्थ-व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण होता था जिसकें अन्तर्गत प्रत्येक गांव को एक आत्मनिर्भर आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करना था। भारतीय ग्रामों में कुटीर के रूप में वे खादी को जन-जन तक पहुँचाना चाहते थे क्योकि खादी को वे देश की जनता की आर्थिक स्वतंत्रता तथा समानता की शुरूआत मानते थे। इरा

प्रकार समाज को सभी प्रकार के आर्थिक शोषण से मुक्त कर सभी सदस्यों को मूलभूत आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए उन्होंने कुटीर-उद्योगों को मुख्य आधार बनाया।

1.3.4 आर्थिक समानता

सामाजिक न्याय की स्थापना में आर्थिक पक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका, है क्योंकि सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक क्षेत्र समान अधिकारों की स्वीकृति के बावजूद यदि व्यक्ति भूखा हो तो वह न तो उपर्युक्त अधिकारों के प्रयोग में सक्षम हो सकता है और ना ही अपने अंतिम लक्ष्य ' ईश्वर की प्राप्ति' की ओर अग्रसर हो सकता है अपितु उसकी संपूर्ण एकाग्रचितता तथा प्रयास ' रोटी' की व्यवस्था की ओर ही संचालित होंगे। भूखा व्यक्ति पाप नहीं जानता अत: उससे नैतिकता या सदाचार की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती। दूसरी ओर यदि व्यक्ति के पास अपार आर्थिक संसाधन हो तो वह भौतिक वैभव में डूबकर अपने जीवन के अंतिम लक्ष्य को भूल जाता है अत: गाँधी एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था स्थापित करने के हिमायती थे जिसमें व्यक्ति अर्थोपार्जन को केवल अपना कर्त्तव्य समझकर व्यवसाय करे तथा अपना संपूर्ण ध्यान और ऊर्जा आध्यात्मिक लक्ष्य के लिए लगा सके। गाँधी ने स्वयं ' रचनात्मक कार्यक्रम ' में आर्थिक समानता का अर्थ समझाते हुये लिखा है कि- " आर्थिक समानता के लिए काम करने का अर्थ है, पूँजी व मजदूरी की बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना। इसका अर्थ यह होता है कि एक ओर जिन मुट्ठी भर धनवानों और करोड़ों लोग अधभूखे और नंगे रहते हैं उनकी संपत्ति में वृद्धि करना। जब तक मुट्ठी भर धनवानों और करोड़ो भूखे रहने वालों के मध्य अत्यधिक अन्तर रहेगा तब तक अहिंसा पर आधारित राजव्यवस्था कायम नहीं हो सकती।

आर्थिक समानता के साम्यवादियों के सिद्धान्त की आलोचना करते हुये गाँधी का कहना था कि- " साम्यवादी तथा समाजवादी आर्थिक समानता के लिए प्रचार भर कर सकते हैं। इसके लिए लोगों में द्वेष या वैर पैदा करने और उसे बढ़ाने में उनका विश्वास है और सत्ता प्राप्ति के बाद वे लोगों से समानता के सिद्धान्त पर अमल करवायेंगे जबकि मेरी योजना के अनुसार राज्य लोगों की इच्छा पूरी करेगा न कि लोगों को आज्ञा देगा या जबरन आज्ञा का पालन करवायेगा।..,... आर्थिक समानता का अर्थ है - जगत के पास समान संपत्ति का होना यानि सबके पास इतनी संपत्ति का होना जिससे वे अपने प्राकृतिक आवश्यकतायें पूरी कर सकें।

1.3.5 ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

आर्थिक समानता की स्थापना के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है, समाज के मुट्ठी भर पूँजीपतियों के अधिकार में समाज की अधिकाँश सम्पत्ति। इस संपत्ति को एक साम्यवादी भी समाज के हित में पूँजीपति से प्राप्त करना चाहता है, लेकिन उसका रास्ता है- वर्ग संघर्ष, खूनी लड़ाई के परिणामस्वरूप पूँजीपति से प्राप्त करना चाहता है, लेकिन उसका रास्ता है- वर्ग संघर्ष, खूनी लड़ाई के परिणामस्वरूप पूँजीपतियों की सम्पत्ति को छीनना लेकिन गाँधी वर्ग संघर्ष के हिंसापूर्ण मार्ग द्वारा लक्ष्य को प्राप्त नहीं करना चाहते। अहिंसा के पुजारी होने के कारण वे शारीरिक बल या हिंसा का प्रयोग किये बिना आर्थिक शोषण का अंत करना चाहते थे। अत: उनका कहना था कि यदि पूंजीपति और जमींदार वर्ग गरीबों के संरक्षक के रूप में कार्य करें तो

शोषण समाप्त किया जा सकता है। ट्रस्टी का अर्थ है कि पूँजीपति या जमींदार सम्पत्ति का मालिक नहीं है। मालिक वह होता है जो अपने स्वार्थो की रक्षा करता है। जब पूँजीपति या जमींदार अपने आपको समाज का सेवक मानेगा, समाज के खातिर धन कमायेगा और समाज के कल्याण में उसे खर्च करेगा, तब उसकी कमाई में शुद्धता आयेगी। लेकिन यदि पूंजीपति संरक्षता के सिद्धान्त को स्वीकार न करे तो? ऐसी स्थिति में मजदूरों को सत्याग्रह द्वारा हृदय परिवर्तन साधन का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार गाँधी ने पूँजीवाद को समाप्त न करके उसे जनकल्याण की भावना में परिवर्तित करने के लिए ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दिया।

आर्थिक समानता की स्थापना के लिए गाँधी द्वारा दिया गया ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दो तथ्यों पर अवलम्बित है-

समाज में समानता के आदर्श की ओर अग्रसर होने के लिए अहिंसा के सिद्धान्त का सामाजिक स्तर तक विस्तार तथा वर्ग संघर्ष को टालना।

स्वयं गरीबों तथा अमीरों से जुड़े रहने के कारण ट्रस्टीशिप के आदर्श को व्यवहार में बदलने का गाँधी का विश्वास।

वस्तुत: न्यास का सिद्धान्त अव्यावहारिक है। गाँधी ने जमनालाल बजाज के उदाहरण से यह विश्वास किया कि ट्रस्टीशिप को व्यवहार में लाया जा सकता है लेकिन बड़ी संख्या में पूँजीपतियों द्वारा गाँधी व काँग्रेस को सहयोग देने का मुख्य कारण यह नहीं था कि परोपकारिता और देशभक्ति की भावनाओं से पूँजीपति अभिभूत थे अपितु वे स्वहित से प्रेरित थे क्योंकि वे जानते थे कि गाँधी व काँग्रेस के सहयोंग के परिणाम स्वरूप उन्हें विदेशी माल से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी पड़ेगी ओर वर्ग संघर्ष की स्थिति टलने से उनकी स्थिति और भी मजबूत हो जायेगी।

दूसरी मुख्य कमजोरी यह है कि ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त मानव स्वभाव की प्रवृति के प्रतिकूल है क्योंकि कुछ अपवादों को छोड़कर, मानव स्वभाव अधिक से अधिक सम्पत्ति जुटाकर, प्राप्त जीवन स्तर को और ऊपर उठाने का होता है और एक बार स्थापित जीवन स्तर को घटाना व्यक्ति के लिए आसान नहीं है। यदि उसे सम्पत्ति का स्वैच्छिक उपभोग करना ही नहीं है तो वह इतनी कमायेगा क्यों?

1.3.6 स्वदेशी

गाँधीजी ने स्वदेशी की अवधारणा को भी प्रतिपादित किया जिसके अनुसार उन्होंने इस बात पर बल दिया कि व्यक्ति को दूर दरार जगहों की तुलना में अपने निकटतम क्षेत्र में उत्पादित हो रहे वस्तुओं का उत्पादन करना चाहिए। व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने और गाँवों को स्वावलम्बी बनाने के लिये गाँधीजी ने स्वदेशी को अपरिहार्य माना।

रस्किन की पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' से गाँधी ने सर्वोदय का जो विचार ग्रहण किया उसकी तीन मुख्य बातें इस प्रकार थी-

रस्किन की पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' से गाँधी ने सर्वोदय का जो विचार ग्रहण किया उसकी तीन मुख्य बातें इस प्रकार थी-

सबके हित में ही व्यक्ति का हित है।

एक वकील तथा नाई के काम का समान महत्व है क्योंकि सभी को अपने द्वारा आजीविका कमाने का समान अधिकार है।

एक मजदूर का जीवन भी सार्थक है। (जैसे-शिल्पकार)।

इसलिए गाँधी का विचार था कि अहिंसा का पुजारी उपयोगितावादी अवधारणा (अधिकतम लोगों का अधिकतम हित) को स्वीकार नहीं कर सकता। वह सभी लोगों के अधिकतम हित, प्राप्त करने के प्रयास मे मर जायेगा। इस प्रकार, वह औरों के जीवन के लिए स्वयं मरने को तैयार रहेगा। अपना बलिदान कभी नहीं करेगा जबकि सम्पूर्णतावादी (सभी के हित में विश्वास करने वाला)। अपने आपकों कुर्बान कर देगा।

इस प्रकार, गाँधी ने व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता की रक्षा के लिए आर्थिक आधार पर अपेक्षित बल दिया है। यद्यपि नैतिकतावादी और सत्य अहिंसा में अटूट आस्था के परिणामस्वरूप समस्याओं के समाधान के लिए सुझाये गये उपाय आदर्शवादी बन पड़े हैं लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि उन्होंने अपने जीवन में और जीवनकाल में इन आदर्शो का समाजीकरण करने का भी प्रयास किया। सर्वोदय के विचार की क्रियान्वित करने के लिए ही स्वतंत्र भारत में विनोबा भावे ने सर्वविदित भूदान आंदोलन चलाकर गाँधीं के सपने को साकार करने का प्रयास किया।

1.4 सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी विचार

गाँधी व्यक्ति का आंतरिक नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान चाहते थे। उनका मानना था कि यदि सभी व्यक्ति सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तों का पालन करते हुये, अपनी समस्त इंद्रियों पर नियंत्रण स्थापित कर इन सिद्धान्तों को अपने विचार तथा व्यवहार का अभिन्न अंग बना ले तो समाज क्रमश: धीरे-धीरे उनके द्वारा चाहे गये आदर्श की अवस्था तक पहुँच जायेगा। तार्किक दृष्टि से तो यह सही है कि यदि एक-एक करके सभी व्यक्तियों का रूपान्तरण होगा तो अंतत: सम्पूर्ण समाज भी सुधर जायेगा लेकिन यह सिद्धान्त सैद्धान्तिक रूप से तार्किक होकर भी अव्यावहारिक है। यद्यपि यही आत्म सुधार विस्तृत रूप से संभव हो सके तो समस्त सामाजिक रोगों का निदान हो सकता है। स्वयं गाँधी ने अपने जीवन को उपदेशानुसार ढाला। उनका आश्रम व्यवस्थित परिश्रम का साकार रूप था ओर शारीरिक श्रम पर जोर देना गाँधी के महानतम गुणों में से एक था। लेकिन आज के भौतिकवादी युग में उपलब्ध मशीनों की सुविधा का त्याग कर व्यक्ति न तो शारीरिक श्रम के लिए उत्सुक है और ना ही आत्म सुधार द्वारा समाज सुधर के लिए कृत संकल्प। इसका अर्थ यह नहीं कि समाज में समानता की स्थापना का गाँधी का सपना टूट गया है। गाँधी के द्वारा स्थापित आदर्श तथा लक्ष्य अनुचित थे अपितु लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा की अनिवार्यता के कारण ह्रदय परिवर्तन का ही रास्ता बचता है और ह्रदय परिवर्तन एक रात में नही हो सकता। यह प्रक्रिया बहुत धीमी है और इस तथ्य को स्वयं गाँधी ने भी स्वीकार किया था।

1.4.1 गाँधी एवं शिक्षा

शिक्षा मानव निर्माण की कला तथा विज्ञान है अत: शिक्षा का उद्देश्य सम्पूर्ण मानव का निर्माण तथा व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है। शिक्षा व्यक्ति की उन क्षमताओं को उजागर तथा प्रेरित करती है जो व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई या अन्तर्निहित है, शिक्षा क्षमताओं का निर्माण नहीं करती। इस प्रकार सरल शब्दों में शिक्षा वह है जो व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास द्वारा सर्वांगीण विकास करती हो। समन्वित तथा संतुलित विकास द्वारा ही सर्वांगीण विकास संभव है। ऐसा नहीं है कि किसी एक तत्व को दूसरे से अधिक प्राथमिकता देकर शिक्षा का उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि शारीरिक अंगों, जैसे- हाथ, पैर, आँखें, कान, नाक आदि के उचित व्यायाम तथा प्रशिक्षण द्वारा ही उसकी मानसिक शक्तियों का श्रेष्ठ व तीव्र विकास हो सकता है। लेकिन शारीरिक तथा बौद्धिक विकास के साथ-साथ यदि समान रूप से आत्म-जागृति न हो तो उपर्युक्त दोनों (बुद्धि-शरीर) का विकास बहुत ही निर्बल तथा असंतुलित होगा। आध्यात्मिक शिक्षा का अर्थ है, हृदय की शिक्षा। अत: शारीरिक व आध्यात्मिक विकास के साथ ही बच्चे के मस्तिष्क का उचित तथा सर्वांगीण विकास हो सकता है। ये तीनों ही अविभाज्य रूप से पूर्णता का निर्माण करते है। इसलिए, इस सिद्धान्त के अनुसार यह मानना भारी भूल होगी कि शारीरिक, बोद्धिक व आध्यात्मिक विकास को, एक दूसरे से पृथक करके या एक-दूसरे से स्वतंत्र रखकर प्राप्त किया जा सकता है।

गाँधी के अनुसार- "शिक्षा का लक्ष्य है व्यक्ति के चरित्र का निर्माण। उसमें साहस, शक्ति, गुणों का इस प्रकार विकास करना कि वह महान् उद्देश्यों के लिए काम करते हुये अपने-आप का भुला दे। साक्षरता या अकादमिक शिक्षा इस उच्चतर लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन मात्र है। यही कारण है कि भारत में साक्षरता की शोचनीय स्थिति के बावजूद मुझे ऐसा महसूस नहीं होता कि भारत स्वाशासन के लिए अयोग्य है। साक्षरता शिक्षा का उद्देश्य नहीं है, यहाँ तक कि शिक्षा का आरंभ भी नहीं है। यह व्यक्ति के नैतिक स्तर को एक इंच भी ऊपर नहीं उठा सकती। चरित्र-निर्माण साक्षरता से पूर्णतया अलग या स्वतंत्र है।

1.4.1.1 विद्यमान शिक्षा प्रणाली के दोष

विद्यमान विदेशी शिक्षा गाँधी द्वारा मान्य शिक्षा के उद्देश्यों के अनुकूल नहीं थी। तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में गाँधी को निम्नलिखित दोष दिखाई दिये-

विद्यार्थियों के लिए निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों के पाठ्यक्रम का उनके आसपास के वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं है अपितु यह उनके लिए पूरी तरह अजनबी चीजों से सम्बद्ध है। इन पाठ्य-पुस्तकों से विद्यार्थी यह नहीं सीख सकता कि गृहस्थ जीवन में क्या उचित हे और क्या अनुचित? उसे अपनी भूमि पर गर्व करने की शिक्षा नहीं दी जाती है जितनी ऊंची शिक्षा वह प्राप्त करता जाता है, उतना ही अपने घर से दूर होता जोता है और अपनी शिक्षा के अंतिम चरण में वह अपने ही घर तथा वातावरण से अजनबी हो जाता हैं। उसे अपने गृह जीवन में सरसता नहीं महसूस होती। गाँव के दृश्य उसके लिए बंद किताब के समान हैं। उसके सामने उसकी अपनी सभ्यता को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि वह नितान्त दुर्बल, बर्बर,

अंधविश्वासों से परिपूर्ण तथा समस्त व्यावहारिक लक्ष्यों की दृष्टि से व्यर्थ है। यह शिक्षा उसे अपनी पारम्परिक संस्कृति से विमुख करने का काम करती है और यदि बहुसंख्यक युवाओं का अराष्ट्रीकरण नहीं किया जाता तो इसका कारण है-प्राचीन संस्कृति का युवाओं में गहराई से जड़े जमाना, जो कि विपरीत शिक्षा के बावजूद कायम है।

विद्यमान शिक्षा हृदय तथा हाथ के उपयोग की संस्कृति की उपेक्षा करके केवल मस्तिष्क से सम्बन्धित है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, जहाँ 80 प्रतिशत जनता किसान तथा 10 प्रतिशत उद्योगों पर निर्भर है अत: ऐसी स्थिति में शिक्षा को केवल साहित्यिक बनाकर विद्यार्थी जीवन के बाद लड़के-लड़कियों को शारीरिक काम के लिए अयोग्य और असमर्थ बनाना एक अपराध है। यह सत्य है कि हमारा अधिकतम समय रोजी-रोटी कमाने में लग जाता है अत: बचपन से हमें अपने बच्चों को ऐसे श्रम की प्रतिष्ठा की शिक्षा देनी चाहिए, न कि उन्हें श्रम विरोधी शिक्षा दी जाय।

विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाये जाने के कारण बच्चों की नसों पर पड़ने वाले अनावश्यक दबाव के कारण मानसिक थकान होती है। यही नहीं, इससे वे मौलिक चिन्तन तथा कार्य के लिए असमर्थ होकर केवल रट्टू तथा नकलची बनते हैं और आम जनता तथा परिवार के लिए उनकी शिक्षा उपयोगी नहीं होती। विदेशी माध्यम ने व्यवहार में हमारे बच्चों को अपनी ही भूमि में विदेशी बना दिया है और हमारे देशी भाषाओं के विकास को अवरूद्ध कर दिया।

इस प्रकार विदेशी शासन द्वारा स्थापित और संचालित शिक्षा व्यवस्था से वे संतुष्ट नहीं थे और उसे चरित्र-निर्माण के प्रतिकुल मानते थे। यद्यपि भारतीय समाज सुधारकों ने अंग्रेजी शिक्षा के दोषों की आलोचना की थी लेकिन 1905 से आरंभ हुये स्वदेशी और बायकॉट आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई।

गाँधी ने विद्यमान शिक्षा व्यवस्था पर एक ऐसी प्रणाली का विचार रखा जो शिक्षा उनकी परिभाषा के अनुसार, व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास को पूर्ण करती हो। गाँधी के शिक्षा सुधार सम्बन्धी विचार सर्वाधिक मौलिक थे। वर्ष 1936 में, गाँधी ने ' नयी तालीम या बुनियादी शिक्षा' कि नाम से शिक्षा सम्बन्धी जो विचार रखे इन्हें ही शिक्षा की वर्धा योजना भी कहा जाता है।

तत्कालीन भारतीय समाज की आवश्यकताओं तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखकर गाँधी ने जो शिक्षा व्यवस्था की प्रणाली प्रस्तुत की, उसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं-

केवल मस्तिष्क के विकास पर आधारित शिक्षा को गाँधी अधूरी शिक्षा मानते थे इसलिए उन्होंने न केवल शारीरिक श्रम पर बल दिया अपितु इसे शिक्षर्जन का माध्यम बनाने का आव्हान किया। वे साक्षरता को शिक्षा का एकमात्र साधन न मानकर विभिन्न साधनों में से एक मानते थे इसलिए किसी भी हस्त उद्योग के प्रशिक्षण से वे बालक की शिक्षा का आरंभ करना चाहते थे तथा इस प्रशिक्षण के साथ ही वे उसे सम्बद्ध हस्त उद्योग द्वारा उत्पादन में समर्थ बनाना चाहते थे। इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था में ही उन्हें मानसिक तथा आत्मिक

विकास संभव दिखाई दिया। हर उद्योग की यांत्रिक तथा वैज्ञानिक तरीके से जानकारी दी जाय ताकि बच्चे को उसकी कार्यप्रविधि का ज्ञान हो सके। यह प्रणाली, कार्यकर्ताओं को कताई सिखाते समय काम में ले ली जाने के कारण अनुभव पर आधारित है। इस प्रणाली द्वारा इतिहास, भूगोल तथा गणित की शिक्षा भी बालक को स्वाभाविक रूप से दी जा सकती है। वाचन तथा लेखन द्वारा अधिक से अधिक दस बार दोहरा कर भी जो नहीं सिखाया जा सकता, वह हस्त-उद्योग द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से बच्चा वैसे ही सीख जाता है। अक्षर-चिन्हों की पहचान तो बाद में, तब आसानी से सिखाई जा सकती है जबकि वह गेहूँ तथा भूसे में अन्तर समझने लगे और जब वह अपना स्वाद का ज्ञान विकसित कर लें।

यद्यपि यह एक क्रांतिकारी प्रस्ताव है लेकिन यह प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित भारी मेहनत में कमी करके विद्यार्थी को एक ही वर्ष में इतना अर्जन करने के योग्य बनाता है जिसे प्रचलित प्रणाली में काफी समय लगता है। हस्त-उद्योग का अर्थ है- ' सर्वांगीण मितव्ययता' निश्चित रूप से अपना हस्त उद्योग सीखते समय गणित भी सीख रहे होते है। हमने अब तक अपना सम्पूर्ण ध्यान बच्चों के मस्तिष्क में, उनके प्रोत्साहन तथा विकास का ख्याल किये बिना, विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को भरा है अत: अब हमें एक गौण कार्यकलाप के रूप में नहीं अपितु बौद्धिक शिक्षण के मुख्य साधन के रूप में हस्त शिल्प को अपनाने पर सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित करना चाहिए विशेष धंधे की शिक्षा के माध्यम से बच्चों का मस्तिष्क, शरीर, हस्तलेख, कलात्मक बोध आदि स्वत: ही विकसित होंगे। सम्पूर्ण शिक्षा हस्त शिल्प शिल्प या उद्योग द्वारा दी जानी चाहिए।

गाँधी की शिक्षा सम्बन्धी प्रस्तुत व्यवस्था की प्रमुख विशेषता यह थी कि उन्होंने शिक्षा व्यय को गरीब देश के लिए आसान बनाने के लिए यह विचार रखा कि शिक्षकों के वेतन का भुगतान उनके शिष्यों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य से किया जा सकता है। करोड़ो बच्चों को शिक्षित करने के लिए इसके अलावा कोई अन्य रास्ता नहीं है। इसके अलावा, प्राथमिक शिक्षा में जो बातें शामिल होंगी, वे हैं-स्वास्थ्य, उपचार विज्ञान, आरोग्य शास्त्र, पोषहार, अपना काम स्वयं करना तथा घर में माता-पिता के काम में हाथ बँटाना व अनिवार्य शारीरिक प्रशिक्षण।

संपूर्ण देश के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा में गाँधी का दृढ़ विश्वास था और उनका मानना था कि बच्चों को उपयोगी उद्योग का प्रशिक्षण देकर ही हम उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं और इसको उसके शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के साधन के रूप में प्रयुक्त कर सकते है। शिक्षा के इस आर्थिक पक्ष का अर्थ यह नहीं कि यह व्यवस्था अपवित्र है। सच्ची अर्थव्यवस्था कभी उच्च नैतिक स्तर के विरुद्ध नहीं होती।

शहरी बच्चों को किस प्रकार के उद्योग सिखाये जायें इस संदर्भ में कोई कठोर नियम गाँधी ने नहीं बनाया लेकिन उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि वे ग्रामीण भारत को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। गांव शहर का एक हिस्सा मात्र रह गये है और शहर के शोषण के लिए ही जीवित हैं, यह स्थिति तभी समाप्त हो सकती है जबकि शहर अपने दायित्व को महसूस करे और गाँवों से अपनी शक्ति तथा पोषणाहार प्राप्त करने के बदले में उचित देय का भुगतान करे। यदि

शहरी बालक सामाजिक पुनर्गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना चाहते हैं तो जिन व्यवसायों के माध्यम से वे शिक्षा ग्रहण करते हैं, वे प्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण आवश्यकताओं से सम्बन्धित होने चाहिये।

इसके अलावा उच्च शिक्षा का भी उन्होंने विरोध नहीं किया लेकिन उनका कहना था कि राज्य को उच्च शिक्षा का खर्च तभी देना चाहिये जबकि इसका राज्य के लिए उपयोग हो। उन्होंने धर्म निरपेक्ष शिक्षा का समर्थन किया है लेकिन शिक्षा में नैतिकता की शिक्षा को अनिवार्य माना।

इस प्रकार गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी विचार भी सामाजिक समानता व न्यायप्रियता से ओतप्रोत है, लेकिन यहाँ शोषित वर्ग अछूत या स्त्रियों के रूप में न होकर ग्रामीण तथा नगरीय समाज में समानता का लक्ष्य है। शिक्षा द्वारा वे आर्थिक रूप से नगरीय जनता द्वारा किये जाने वाले ग्रामीणों के शोषण को समाप्त करना चाहते थे। अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा लागू करके वे समाज के निम्न से निम्न व अति गरीब व्यक्ति को भी शिक्षा सुलभ करवाना चाहते थे। गाँधी परम्परागत शिक्षा को पूर्णतया अस्वीकार करते हुये एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था कि स्थापना करना चाहते थे जो कि भारतीय समाज की बेरोजगारी गरीबी आर्थिक शोषण, किताबी ज्ञान, भारतीय संस्कृति के प्रति उपेक्षा भाव, जैसी समस्याओं को समूल रूप से नष्ट कर सके। यह बात दीगर है कि गाँधी द्वारा निर्देशित शिक्षा को लागू करना व्यावहारिक रूप मे कठिन हैं। लेकिन गाँधी ने इसी शिक्षा को समानता व न्याय पर आधारित समाज के पुनर्गठन का आधार मानते हुये कहा है-

कताई तथा धुनाई जैसे ग्रामीण उद्योगों को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाने में मेरी योजना मौन सामाजिक क्रांति द्वारा दूरगामी परिणामों को प्राप्त करने की कल्पना पर आधारित है। यह ग्राम और शहर के मध्य सौहार्द्र तथा नैतिकता पर आधारित सम्बन्धों का संचालन करेगी तथा इस प्रकार वर्तमान विभिन्न वर्गों में विद्यमान सामाजिक सुरक्षा और जहरीले सम्बन्धों को समाप्त करने कि ओर अग्रसर होगी। यह हमारे ग्रामों के बढ़त पतन को रोककर एक एसी न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था कि नींव रखेगी जिसमें सुविधा सम्पन्न तथा सुविधाहीन जैसा कोई अप्राकृतिक विभाजन नहीं होगा और प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-यापन के लिए मजदूरी तथा स्वतंत्रता का अधिकार मिलेगा। यह सब बिना किसी आतंक या खूनी वर्ग संघर्ष के होगा और भारत जैसे बडे महाद्वीप के मशीनीकरण के लिए विशाल पूंजी का व्यय भी नहीं करना पडेगा। स्पष्ट है कि शिक्षा व्यवस्था द्वारा गाँधी ने समाज में गरीब लोगों को शोषण व दरिद्रता से मुक्त कर समानता की स्थापना की ओर सामाजिक व्यवस्था को उन्मुख किया है। यद्यपि गाँधी ने ऐसी शिक्षा में मशीनों का विरोध किया है जो आधुनिक समाज में आलोचना का विषय है, लेकिन फिर भी गाँधी द्वारा दिमार्गा श्रम के साथ-साथ शारीरिक श्रम की आवश्यकता तथा प्रतिष्ठा को प्रतिपादित किया गया है क्योंकि इसके अभाव में ही हमारे समाज में कई शिल्पकारों को हीन दृष्टि से देखा जाता है।

1.4.2 सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए सामाजिक समानता की स्थापना आवश्यकता है। गाँधी इसके प्रबल समर्थक थे, लेकिन केवल वर्ण व्यवस्था की पुनर्स्थापना या अस्पृश्यता

निवारण से ही सामाजिक न्याय की स्थिति सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए सामाजिक समानता की स्थापना आवश्यकता है। गाँधी इसके प्रबल समर्थक थे, लेकिन केवल वर्ण व्यवस्था की पुनर्स्थापना या अस्पृश्यता निवारण से ही सामाजिक न्याय की स्थिति का प्राप्त होना कठिन था अत: गाँधी ने इनके साथ ही समाज की राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक व्यवस्था में परिवर्तन कर सम्पूर्ण समाज की एक ऐसी परिवर्तित व्यवस्था का विचार रखा जिसमें सभी व्यक्तियों का अधिकतम हित हो सके। गाँधी के अनुसार सामाजिक व्यवस्था के साथ-साथ धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक अवस्था तथा शिक्षा व महिलाओं की स्थिति में निम्नलिखित सुधार व परिवर्तन द्वारा ही ऐसे समाज की स्थापना की जा सकती है, जिसमें सभी लोगों को न्याय मिल सकें।

1.4.3 गाँधी एवं स्त्रियाँ

स्त्रियों को गाँधीजी के समकालीन भारतीय समाज मे धर्म तथा शास्त्रों के नाम पर निर्योग्य घोषित किया हुआ था। समाज में स्त्रियों को शिक्षा तथा किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता से वंचित करके सम्पूर्ण मानवीय अधिकारों से वंचित कर रखा था। ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद आरम्भ हुये समाज सुधार कार्यक्रम में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा स्त्रियों की स्थिति के सुधार का ही रहा। राजाराम मोहन राय से लेकर मोहन दास कर्मचन्द गाँधी तक-सभी समाज सुधारकों ने यह विचार रखा कि स्त्रियों की स्थिति में सुधार करके ही हम अपने समाज का विकास कर सकते है, अन्यथा नहीं।

एक आध्यात्मिक व्यक्ति तथा महान् मानवतावादी होने के कारण हर इंसान के दुखदर्दों से गाँधी को हमदर्दी थी। यही कारण है कि भारतीय समाज में स्त्रियों की दुर्दशा को देखकर वे व्यग्र हो उठे। एक पुरूष होते हुये भी उन्होंने स्त्री की अन्तरवेदना को महसूस किया तथा उन सभी पक्षों पर प्रकाश डाला जो स्त्रियों को समाज मे सम्मानजनक स्थिति तथा समानता के अधिकार को प्राप्त करने में सहायक थे। सर्वप्रथम, गाँधी का यह मानना था कि मौलिक रूप से स्त्री तथा पुरूष समान हैं और सारतः दोनों की समस्या भी एक ही है। दोनों में आत्मा एक समान ही है, दोनों समान जीवनयापन करते हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक के सक्रिय सहयोग के अभाव में दूसरा जी नहीं सकता। गाँधीजी ने कहा कि स्त्री की प्रतिभा को कुंठित करने वाले प्रतिबन्धों को निडर होकर अस्वीकार कर दिया जाय। इसी उद्देश्य से, गाँधी का कहना था कि हमें अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त नैतिक आचार संहिता का उल्लंघन नहीं करना चाहिए लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि परम्परा से चला आ रहा है, वह सब अभ्रान्त या अटल सिद्धान्त है। हमें जहाँ तक संभव हो सके, हर बात का तर्क की कसौटी पर परीक्षण करना चाहिए और जो बात इस आधार पर खरी न उतरे, वह चाहे कितनी ही पुरानी क्यों ना हो, अस्वीकार कर देनी चाहिए।

उनका यह मानना था कि स्त्री-पुरूष सामाजिक स्थिति, सम्मान तथा प्रतिष्ठा की दृष्टि से तो समान है लेकिन इसका अर्थ लैंगिक समानता से नहीं है। महिला के शिकार करने या भाला बर्छी फैंकने, चलाने पर कोई कानूनी रोक न होने पर भी वह स्वाभाविक रूप से ऐसा नहीं करती। प्रकृति मे ही इन दोनों को एक दूसरे का पूरक बनाया है और उनकी शारीरिक बनावट के

अनुसार ही उनके कार्यो को परिभाषित किया है। लेकिन कार्य चाहे गृहस्थी का हो या साहस का, दोनों को समान प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए। सम्पूर्ण सामर्थ्य के आधार पर भी यदि स्त्री पुरूष की तुलना की जाय तो गाँधी ने स्त्री को पुरूष के समकक्ष ही पाया।

गाँधी के विचारों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि शारीरिक भिन्नता के आधार पर स्त्री को घर की देखभाल व पुरूष को आजीविका के काम का दायित्व सौंपते है लेकिन वे इस कार्य विभाजन को अंतिम रेखा नहीं मानते। वे तो सामर्थ्य तथा परिस्थिति के अनुसार दोनों को अपना काम धंधा करने की स्वतंत्रता के पक्षधर थे। कार्य के इस क्षेत्र में जहाँ स्त्रियों को नितान्त निर्बल माना जाता है वहाँ गाँधी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वस्तुत: स्त्री ऐसे गुणों की स्वामिनी है जो उसे पुरूष से भी श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं अत: -

गाँधी के महिलाओं की स्थिति में सुधार सम्बन्धी विचारों के अध्ययन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग यह है कि गाँधी ने स्त्री-स्वभाव और मनोवृति को अपने सत्य और अहिंसा सम्बन्धी सिद्धान्तों के सर्वाधिक अनुकूल पाया। उनके अनुसार, स्त्री अहिंसा का मूर्तरूप हैं।

1.5 सारांश

इस प्रकार गाँधीजी ने मानवीय जीवन के सभी पक्षों की अटूट सम्बद्धता की धारणा में विश्वास व्यक्त किया। उनके चिन्तन में व्यक्ति तथा समाज के समस्त पक्षों - सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक आदि में परिशोधन की अपेक्षा दिखई देती है। नैतिकता, स्वतंत्रता, समानता तथा न्याय पर आधारित समाज का पुनर्गठन करने के लिए गाँधीजी तत्पर थे। इन मूल्यों की प्राप्ति में बाधक ऐसी सभी मान्यताओं, परम्पराओं, प्रथाओं और विश्वासों की उन्होंने तार्किक आलोचना की और सक्रीय रूप से इन्हे दूर करने का प्रयास किया। सामाजिक-परिवर्तन के लिए उन्होंने राज्य की कानूनी शक्ति अपर्याप्त माना। वे बल प्रयोग और हिंसा का समर्शन नहीं करने के पक्षधर थे और विकल्प के तौर पर अहिंसा और हृदय परिवर्तन के प्रबल समर्थक थे।

1.6 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधीजी के राजनीतिक विचारों की प्रकृति एवं महत्व समझाइये।
2. गाँधीजी के सामाजिक विचारों को स्पष्ट कीजिए।
3. गाँधीजी के आर्थिक विचारों की प्रकृति एवं महत्व समझाइये।

1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोपीनाथ धवन : दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. आय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी. ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
3. सिंह, रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986

4. पटेल एम. एस., दी एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1958
5. ऑस्टरगार्ड, जेफरी, नानवायलेन्ट रेवल्यूशन इन इण्डिया, गाँधी पीस फाउण्डेशन, नई दिल्ली, 1985
6. शंकधीर, एम.एम., अण्डरस्टैंडिंग गाँधी टुडे, दीप एण्ड दीप पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1996
7. दास, दीप्ती मोई, गाँधीस डोकट्रीन ऑफ ट्रुथ एण्ड नॉन वायलेन्स : ए क्रिटिकल स्टडी, डॉमिनेन्ट पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008

इकाई - 2

गाँधी पर प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 पारिवारिक पृष्ठभूमि का प्रभाव

2.3 लोक प्रचलित प्रेरक प्रसंगों का प्रभाव

2.4 हिंदु धर्म का प्रभाव

2.5 जैन धर्म का प्रभाव

2.6 बौद्ध धर्म का प्रभाव

2.7 इस्लाम धर्म का प्रभाव

2.8 ईसाई धर्म का प्रभाव

2.9 धर्म निरपेक्ष लेखकों का प्रभाव

2.10 शांतिवादी विचारकों का प्रभाव

2.11 सारांश

2.12 अभ्यास प्रश्न

2.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के उपरांत आप गाँधीजी के जीवन और चिंतन पर पड़ने वाले निम्नलिखित विविध प्रभावों को समझ सकेंगे :-

- उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि के प्रभाव।
- भारत के प्रमुख धर्मों का प्रभाव।
- ईसाई धर्म के प्रभाव।
- धर्मनिरपेक्ष लेखकों का प्रभाव।
- विभिन्न शांतिवादी विचारकों का प्रभाव।

2.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी (1869-1948) एक प्रेरक शिक्षक और पैगम्बर थे। गाँधीजी सत्य और अहिंसा में विश्वास रखते थे। वे मानव इतिहास में धर्म की सृजनात्मक शक्ति को स्वीकारते थे। उनके लिए धर्म दुनिया के व्यवस्थित नैतिक प्रशासन में विश्वास को प्रतिबिंबित करता है। वे स्वयं को हिन्दू कहते थे वे संकीर्ण पंथी नहीं थे। वे पंथों, सम्प्रदायों, रूढ़ियों तथा धार्मिक संस्कारों के बंधनों से ऊपर उठे हुए थे। उन्होंने हिंदुवादी के नैतिक व आध्यात्मिक सार-तत्त्व को स्वीकार किया जो कि उनके अनुसार मानवता के सभी महान् धर्म का सारा तत्व है।

2.2 पारिवारिक पृष्ठभूमि का प्रभाव

मोहनदास कर्मचन्द गाँधी का जन्म पोरबन्दर के काठियावाड़ में 2 अक्टूबर, 1869 को हुआ था। गाँधी उनकी माता से, जो कि एक संतमयी धार्मिक विचारों वाली महिला थीं और उसके पिता कर्मचन्द गाँधी, जो कि उस राज्य के दिवान पद पर कार्यरत थे, से अत्यन्त प्रभावित थे। गाँधी की माता पुतली बाई का धार्मिक आस्था और भक्ति के प्रति, बड़ा लगाव था। प्रतिदिन प्रार्थना करना और उपवास रखना उसका नैत्यकर्म बन गया था। उनकी धर्म में गहरी आस्था थी और प्रतिदिन बिना पूजा-पाठ के कुछ भी नहीं खाती थी। प्यारेलाल ने महात्मा गाँधी के बारे में लिखा है कि "उसकी माता उसकी आंतरिक सत्ता का मूल आधार बन गई थी। उनके लगाव ने सम्बन्धों को ऐसा स्वरूप दिया कि वह उसको निरन्तर संरक्षण और प्रभावित करती रही। गाँधीजी की माता के धार्मिक कार्यों व वचनों के प्रति जुड़ाव की भावना ने गाँधी पर अमिट छाप छोड़ी। गाँधी के पिता कर्मचन्द गाँधी पोरबन्दर के दिवान थे। वे एक सच्चे, साहसी, ईमानदार और सिद्धान्तवादी व्यक्ति थे। वे कभी भी धन संचयन की तथा उसके परिवार के लिए वसीयत बनाने की इच्छा नहीं रखते थे।

2.3 लोक प्रचलित प्रेरक प्रसंगों का प्रभाव

गाँधीजी कभी भी अपने शिक्षकों या अन्य लोगों से झूठ नहीं बोलते थे। वह एक प्राचीन नाटक 'श्रवण-पितृभक्ति" से काफी प्रभावित हुए थे, जिसमें श्रवण अपने माता-पिता के प्रति असीम प्रेम दिखते हैं। इसके बाद गाँधीजी का ध्येय माता-पिता की हमेशा आज्ञापालन करना हो गया। राजा हरिशचन्द्र से संबन्धित एक नाटक ने उसको सच्चा और सादा जीवन जीने के लिए प्रेरित किया। बचपन से ही गाँधीजी के युवा मस्तिष्क ने आध्यात्मिक विस्मयकारी घटना का अनुभव किया और टोह लेना शुरू किया जिसने उसे पढ़ने की कोशिश को बढ़ाया और मनुस्मृति ने, जो उसके पिता के पुस्तक संग्रह में एक थी, उसकी समझा को बढ़ाया। गाँधीजी ने लिखा है "सत्य अपने आकार में प्रतिदिन बढ़ता रहता है और इसके बारे में मेरी परिभाषा भी हमेशा व्यापक से व्यापकतर होती गई।

2.4 हिंदु धर्म का प्रभाव

दुनिया के किसी भी देश में अहिंसा की परम्परा उतनी गहरी नहीं है जितनी की भारत में है। अहिंसा सही अर्थों में विश्व के चिंतन को भारत का सबसे बड़ा योगदान है। भारत के सभी महत्त्वपूर्ण धार्मिक उपदेशकों ने अहिंसा को सबसे बड़ा कर्तव्य के रूप में बताया है। भारतीय आरम्भिक समय से ही आध्यात्मिकता मे विश्वास करते रहे हैं। उपनिषदों के समय से ही अहिंसा के सद्गुण पर जोर दिया जाता रहा है। अहिंसा का तात्पर्य है - किसी भी जीवित को चोट न पहुँचाए। महान् पण्डित पातंजलि के "योगशास्त्र" का गाँधीजी ने 1903 में जोहान्सबर्ग में अध्ययन किया जिसमें अहिंसा को पाँच यमों में शामिल किया गया था। गाँधी ने इन यमों की विस्तृत व्याख्या की और उनको सत्याग्रह के अनुशासन का एक एकीकृत भाग बना दिया।

रामायण और महाभारत ने करोड़ों भारतीयों के लिए दिशा सूचक सितारों के समान कार्य किया है। ये प्रकट रूप से युद्धों की कहानियाँ हैं, लेकिन इन कवियों (वाल्मीकि और व्यास) का

ध्येय केवल इतिहास वर्णन करना नहीं था। बल्कि गाँधी का इस सम्बन्ध में यह मत है कि ये महाकाव्य आन्तरिक द्वंद्व का वर्णन करते हैं कि जो एक व्यक्ति में अंधकार और प्रकार की शक्तियों के बीच चलता रहा है।

28 जुलाई, 1925 को कलकत्ता में गाँधीजी का इसाई मिषनरियों को दिए प्रसिद्ध एक सम्बोधन में उनका गीता के प्रति लगाव का पता चला कि "हालांकि मैं इसाईयत की बहुत प्रशंसा करता हूँ मैं अपने आपको रूढ़िवादी ईसाईयत के साथ पहचान बनाने में अयोग्य हूँ। हिन्दुत्व को जिस रूप में मैं जानता हूँ यह पूर्ण रूप से मेरी आत्मा, को संतुष्ट करता है, मुझे पूर्णतया संतुष्ट करता है और मैं भगवद्गीता और उपनिषदों में तसल्ली पाता हूँ जो कि ' सर्मन ऑन द माउण्ट' में नहीं पाता हूँ। जब भी मुझे संदेह होता है, जब मेरे चेहरे पुर असंतोष का भाव आ जाता है और जब मैं कोई भी आशा की किरण को क्षितिज किरण की और से नहीं पाता हूँ त्योंही मैं भगवद्गीता की ओर देखता हूँ और आराम पाता हूँ, और तत्काल मेरे चेहरे पर गहन दुःख में भी मुस्कान आ जाती है। मेरा जीवन बाहय त्रासदियों से भरा हुआ है और यदि वे मेरे ऊपर कोई मूर्त और अमूर्त प्रभाव नहीं छोड़ती है तो इसके लिए मैं भगवद्गीता की शिक्षाओं का ऋणी हूँ।" गीता का मूल विषय स्व-अनुभूतिकरण है और इसके लिए मार्ग भी बताये गये हैं। दूसरा और आठवाँ सर्ग स्व-अनुभूतिकरण और नास्तिक योग निष्काम कर्म योग (परिणाम के लिए बिना इच्छा रखे कार्य करना) के बारे में बताते हैं।

2.5 जैन धर्म का प्रभाव

जैन दर्शन की प्रमुख विशेषता है - अहिंसा। जैन का विश्वास है कि यह सम्पूर्ण विश्व अक्षरशः असंख्य मात्रा में आकारित आत्माओं से भरा हुआ है। उनके (आत्माओं के) शरीर या तो स्थूलकाय और मूर्त है या सूक्ष्म और अदृश्य है। सभी तत्व आत्मा के साथ सक्रिय हैं। भौतिक शरीर में चेतना का मूर्तिकरण होना ही दुःख का कारण बनता है। इसलिए जीवन का अर्थ है - दुःख, यहाँ तक कि आत्मा के साथ अदृश्य शरीरों को भी। मुक्त आत्मा होने के लिए - आत्मा का शरीर के बंधों से मुक्त होना जरूरी है। व्यक्ति को निर्झरा (कर्म से छुटकारा पाना) की प्रक्रिया से अवश्य गुजरना चाहिए। इसके लिए तीन साधन - त्रिरत्न बताये गये हैं - सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र। सम्यक् चरित्र पाँच व्रतों से मिलकर बना है - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रहमचर्य और अपरिग्रह। इनका श्रावणों को कठोरता से पालन करना होता है तथा आम आदमी को उसकी क्षमता के अनुसार। श्रवणों के लिए यह पंच महाव्रत कहलाते हैं जबकि सामान्य जनों के लिए अणुव्रत कहलाते हैं।

भारत के किसी भी राज्य ने गुजरात से ज्यादा जैन धर्म को नहीं अपनाया। जहाँ गाँधी का जन्म हुआ और पालन पोषण हुआ। बचपन में उसके पिता, हालाँकि वैष्णव थे, हमेशा जैन श्रावणों से जुड़े हुए रहे। गाँधी ने जैन धर्म के रूढ़िवादी दृष्टिकोण को नहीं स्वीकारा, लेकिन उन्होंने उसके सकारात्मक पहलुओं पर बहुत जोर दिया।

2.6 बौद्ध धर्म का प्रभाव

बौद्ध धर्म जैन धर्म द्वारा अहिंसा के प्रति अपनाये उसके उग्र मत से नकारते हैं। बुद्ध की शिक्षाएँ यह कहती है कि शुद्धता से शुरू करें और प्रेम के साथ समाप्त करें और वह नैतिकीय विचारों पर बल देने के कारण वह अनोखा है बजाय उपनिषदों के नीतिशास्त्र के तत्त्व मीमांसीय अनुप्रयोग के।

जैन धर्म और बौद्ध धर्म दोनों ही अहिंसा पर बल देते हैं, यह (अहिंसा) सावयवी रूप से सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह से सम्बन्धित है। इसलिए जैन और बुद्ध के लेखन ने भी गाँधीजी के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ा।

2.7 इस्लाम धर्म का प्रभाव

गाँधी का मानना है कि ईसाईयत, बोद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के समान ही इस्लाम धर्म शान्ति का धर्म है। इस्लाम के अनुयायी कभी-कभी तलवार लिए रहते हैं, लेकिन यह पवित्र कुरान की शिक्षा नहीं है, लेकिन यह पर्यावरणीय प्रभाव है जिसमें इस्लाम का उद्भव हुआ था। गाँधी के अनुसार इस्लाम का मुख्य योगदान 'मानव का भाईचारा' है। लेकिन इसके पैगम्बर का मूल संदेश दयालुता और शान्ति व प्रेम का था। प्रेम केवल मानव जाति के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण जीवित प्राणी मात्र के लिए है। पवित्र कुरान हिंसा की बजाय अहिंसा को प्राथमिकता देती है। 'इस्लाम' शब्द का मूल अर्थ - 'शान्ति', सुरक्षा व मुक्ति है। आम मुसलमान के अभिवादन (असलामवालिक्कुम) का अर्थ ' 'आप शान्ति से रहें' ।

2.8 ईसाई धर्म का प्रभाव

ईसाई धर्म उद्भव की दृष्टि में यहूदी है और भगवान जीसस ने कहा है कि "उसका मत कुछ नहीं था बल्कि ओल्ड टेस्टामेंट के पैगम्बर की शिक्षा प्रेम का नियम - है। हालांकि जीसस ने इसे पारस्परिकता के स्तर से उठाते हुए क्रान्तिकारी और रूपान्तरकारी नियम बनाया। भगवान जीसस और उसकी शिक्षाऐं सत्याग्रह के गाँधी दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। गाँधी ने एक बार फादर जे.जे. डोक को बताया कि यह न्यू टेस्टामेंट ही था, विशेषकर के 'पर्वत पर दिया गया प्रवचन', जिसने वास्तव में मुझे सत्याग्रह के मूल्य और सदाचार के प्रति जाग्रत किया।"

इसी क्रम में गाँधीजी ने युगों पुराने अहिंसा के दर्शन को पुनर्जीवित किया। उनका महान् योगदान उसकी खोजों पर अहिंसा की सम्भाव्यताऐं जीवन के सभी स्तरों पर और बड़े जन आन्दोलनों में व्यावहारिक अनुप्रयोग पर आधारित है। वे मानते हैं कि सत्याग्रह मानवता की समस्याओं के समाधान का एकमात्र रास्ता है। अहिंसा सभी परिस्थितियों में काम करने वाला सार्वभौमिक नियम है। इसकी अवहेलना निश्चितया विनाश की ओर ले जाती है। सत्याग्रह जीवन के अहिंसक नजरिये से अपृथकनीय है। एक वास्तविक प्रभावी सत्याग्रही होने के लिए व्यक्ति को अवश्य उन तत्व मीमांसीय और नैतिक सिद्धान्तों को प्रसारित करना चाहिए, जो नियम सत्याग्राही की जड़े होती है।

2.9 धर्म निरपेक्ष लेखकों का प्रभाव

गाँधीजी के जीवन को कुछ धर्मनिरपेक्ष लेखकों व चिंतकों ने भी बडी मात्रा में प्रभावित किया। जिनमें शामिल हैं - गोपालकृष्ण गोखले, डेविड थोरो, जॉन रस्किन और टॉल्स्टॉय।

गोपालकृष्ण गोखले - दक्षिण अफ्रीका छोड़ने के अन्तिम निर्णय से पूर्व तक गाँधी का गोखले के साथ लम्बा व लाभप्रद जुड़ाव रहा। वे गोखले के राजनीतिक अनुशासन से पूर्णतया वाकिफ हो गये थे। उन्होंने गोखले को अपना राजनीतिक गुरू माना। गोखले के प्रति गाँधी की छवि, जोकि उसने अपनी आत्मकथा में लिखी है, " सर फिरोजशाह मुझे हिमालय के समान प्रतीत हुए, लोकमान्य समुद्र के समान लेकिन गोखले गंगा के समान थे ताकि कोई भी इस पवित्र नदी में स्नान कर तरोताजा महसूस कर सकता था हिमालय अटल था। समुद्र को कोई भी आसानी से पार नहीं कर सकता था, लेकिन गंगा ने सभी को अपने वक्ष:स्थल में आमंत्रित किया। "

हेनरी डेविड थोरो - गाँधीजी डेविड थोरो के विचारों और कार्यों से बहुत प्रभावित हुए थे। थोरो एक सुविख्यात अमेरिकी अराजकतावादी थे जिसने अमेरिका में दासता के विरूद्ध प्रतिरोध के रूप में करों की अदायगी से मना कर दिया था। वह भी पहला व्यक्ति था जिसने अपने एक भाषण में (1849) ' सविनय अवज्ञा' शब्द का प्रयोग किया था।

जॉन रस्किन के 'अनटू दिस लास्ट', जिसका गाँधीजी ने ' सर्वोदय' के नाम से अनुवाद किया, गाँधीजी के विचारों को आकृति देने वाला रूपांतकारी प्रभावों में से एक था। वे रस्किन के 'शारीरिक श्रम' के आदर्श से बहुत ज्यादा प्रभावित हुए थे। गाँधी ने उसकी पुस्तक का दक्षिण अफ्रीका में अध्ययन किया था और इसमें से तीन शिक्षाओं को महत्वपूर्ण माना था। जिनमें प्रथम है - एक व्यक्ति की भलाई सबों की भलाई में निहित है, दूसरी है - एक वकील के कार्य का मूल्य एक हज्जाम के कार्य के बराबर है। इसी प्रकार सबको अपने कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन का अधिकार है। तथा तीसरी है - एक श्रमिक का जीवन खेत को जोतने वाले किसान का जीवन और दस्तकारों का जीवन अन्य जीवों के समान ही है।

गांधी रस्किन से कई मामलों में समान है। दोनों ही चेतना की सर्वोच्चता और मानव प्रकृति की अच्छाई में विश्वास करते है। दोनों ही चरित्र को बुद्धिमता से ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं। दोनों ही राजनीति और अर्थशास्त्र का नौतिकृत करना चाहते हैं। दोनों ही सामाजिक पुनरूत्थान की प्राथमिकता पर बल देते हैं केवल राजनीति पुनरूत्थान से, दोनो का ही मशीनों में विश्वास नहीं है और निवेदन किया कि यदि कोई काम करने वाला नहीं है, उसका (मशीन का) प्रयोग किया जा सकता है लेकिन वह भी मानव को मुक्त करने के रूप में किया जाए न कि उससे गुलाम आदमी बनाने के लिए। दोनों ही जोर देते हैं कि पूँजीपतियों को अपने कर्मचारियों के प्रति सम्बन्धों में बुद्धिमान पिता का व्यवहार करना चाहिए।

लियो टॉलस्टॉय - टॉलस्टॉय का दर्शन ईसाई-अराजकतावाद के नाम से जाना जाता है। यह आधुनिक युग की सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के समाधान में ' सर्मन आन द माउण्ट' की शिक्षाओं को व्यावहारिक अनुप्रयोग है। टॉलस्टॉय के अनुसार ईसा मसीह की शिक्षाओं के द्वारा मानवीय समस्याओं की उपयुक्त समाधान - प्रेम हैं। टॉलस्टॉय के अनुसार प्रेम

अप्रतिरोध और असहयोग के सिद्धान्तों का आधार है। टॉलस्टॉय का विश्वास है कि इसाई सभ्यता उसके अजीब अवरोधाभास के बीच वयस्क हुई है क्योंकि यह ईसाई होने का दावा करती है और शक्ति के साधनों की रक्षा की इजाजत देती है, ओर इस रूप में प्रेम का नियम लागू नहीं होता है, इसके लिए किसी अपवाद की इजाजत भी नहीं है वहाँ कोई कानून नहीं है लेकिन वहाँ सबसे ताकतवर मौजुद है।

टॉलस्टॉय राज्य और उसकी मशीनरी, कानून, न्यायालयों, पुलिस, सेना, निजी संपत्ति तथा पूँजीवाद और यहाँ तक कि पाठशालाओं की निंदा करते हैं क्योंकि ये सभी प्रेम के नियम की भावनाओं को ठेस पहुंचाते हैं। शक्ति या बल के प्रयोग का, करों की अदायगी का तथा अनिवार्य सैन्य सेवा का विरोध किया। वह इस बात का समर्थन करते हैं कि संगठित समाज ओपचारिक सहयोग द्वारा बदला जाना चाहिए, हालांकि उसे आदर्श अहिंसक समाज का विवरण देते हुए कोई परेशानी नही होती है। ऐसे असहयोग को उत्पन्न करने की पद्धति के संदर्भ में टॉल्स्टॉय हिंसा के विरोध और प्रेम, अ-प्रतिरोध तथा अ-सहयोग के पक्ष में है।

वह व्यक्ति पर बहुत अधिक जोर देता है। उसने भूमि लौटाने का आग्रह किया और शारीरिक श्रम कि गरिमा का उपदेश दिया। गाँधी ने भी स्वयं को एक निष्ठावान प्रशंसक माना, जो कि उसके प्रति बहुत ऋणी है। उन्होंने लिखा है कि "स्व. राजा हरिशचन्द्र के बाद टॉलस्टॉय उन तीन आधुनिक लोगों में शुमार करते हैं जिसने मेरे जीवन पर अत्यधिक प्रभाव का प्रयास किया, तीसरा व्यक्ति जॉन रस्किन है।" गाँधी ने 15 वर्ष पूर्व दक्षिण अफ्रीका में 'किंग्डम आफ गॉड विथइन यू' का अध्ययन किया था। जब वे हिसा में विश्वास करते थे और संशयवाद के सकट से गुजर रहे थे। वे कहते हैं कि "उसका अध्ययन मुझे संशयवादी होने से रोका तथा मुझे अहिंसा के प्रति पक्का विश्वासी बनाया।" अहिंसा के इन दो महान् आधुनिक प्रतिपादकों के सिद्धान्तों के बीच ज़ोर देने योग्य समानताऐं हैं। दोनों ने ही सत्य और उसके कठोर व्यवहारों के प्रति बेमिसाल दृढ़ इच्छा के बाद हमेशा सतर्कता पर ज़ोर दिया है। दानों ने ही बल और शोषण पर आधारित गड़बड़ और अन्तर्निहित रूप से अनैतिक आधुनिक सभ्यता को नकारते हैं। दोनों ही बुराई से लड़ने के हिंसक तरीके के विरोधी हैं। दोनों ही व्यक्तिगत सुधार हेतु आन्तरिक आत्मपूर्णता पर तथा सामाजिक उत्थान की ओर प्रथम कदम के रूप में बल देते है। दोनों ही अपने को साधनों की शुद्धता से जोड़ते है ना कि आदर्श समाज के विस्तृत विवरण से। पुन: दोनो व्यक्ति के नैतिक उत्थान के लिए अनिवार्य तत्व के रूप में ब्रह्मचर्य और श्रम की रोटी पर तथा अति सादा जीवन जीने के लिए सन्यासी-नैतिकता एवं उपदेश की वकालत की है। हालांकि गाँधीजी पूर्णरुपेण टॉलस्टॉय नहीं हुए। उनके मतों में दो कारणों से विभेद रहा। प्रथम - गाँधीजी जीवन में टॉलस्टॉय से ज्यादा व्यावहारिक थे। गाँधी मूलत: गैर-महत्वपूर्ण स्थितियों में समझौता-वादी रहे हैं। वे सोचते है कि समझौते कि आवश्यकता सत्य कि सापेक्ष प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न हुई है। जैसा कि व्यक्ति के द्वारा अनुमान किया गया। हालांकि वह टॉलस्टॉय से अलग अपने सिद्धान्तों के प्रति बहुत सूक्ष्म धर्मशीलता हेतु हमेशा तैयार रहते हैं। उसके कार्यों को स्वीकारना बदलते विश्व की माँग है। अनुभूतिकरण का यह आदर्श असम्भव है और जहाँ तक सम्भव हो, हमें इसके लिए कोशिश अवश्य करनी चाहिए। द्वितीय - गाँधीजी की अहिंसा की धारणा टॉलस्टाय से हल्की सी भिन्न है। उत्तरवर्ती के लिए अहिंसा का अर्थ है - बल या शक्ति के

सभी रूपों को नकारना। पूर्ववर्ती ने अहिंसा के उद्देश्य पर जोर देते हुए अहिंसा को किसी भी जीवित प्राणी के प्रति चोट या दुःख को नकारना और स्वार्थ से बचना। हालाकि कुछ परिस्थितियों में कृत्य करना हिंसा नहीं मानी जा सकती है। जीवन में कुछ मात्रा में हिंसा तो सम्मिलित रहती है, टॉलस्टॉय इसको नजर अन्दाज कर जाते हैं। दूसरी तरफ गाँधी जीवन में उत्सुकता पूर्ण सहभागिताओं और जुड़ाव के कर्म के गीता के आदर्श का अनुसरण करते हैं। इसी मूलभूत विभेद के कारण गाँधी की अहिंसक तकनीक में टॉलस्टॉय से श्रेष्ठ है और सामाजिक बुराईयों, जिनको टॉलस्टॉय ने बुद्धिमतापूर्वक प्रकट किया और उतने ही आवेग पूर्णता से नकार दिया, को दूर करने का रास्ता खोला।

2.10 शांतिवादी विचारकों का प्रभाव

मेजर-विचमन्न, रोनॉल्ड हॉलस्ट चार्ल्स माइन, एडल्स हक्सले, गेरहार्ड हर्ड आदि ने साधन और साध्य के बीच समन्वय की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने आधुनिकता की त्रासदियों को बताया। इसका उद्देश्य मूलतः मानवतावादी है - हिंसा के सभी रूपों का निवारण और सामाजिक पुर्नउत्थान करना। लेकिन इस लक्ष्य को प्राप्त करने में युद्ध, हिसा और तानाशाही काम में ली जाती रही है। इन युक्तियों का प्रयोग विरोधी गुणों को जन्म देती है। उनको समाजवादी व्यवस्था के रूप में देखा जाता है और इस प्रकार यह उद्देश्य असफल हो जाता है।

इस आखिरी लड़ाई और इस समूहीकरण ने पश्चिम में शांतिवाद को कई बार गहरी चोट पहुँचाई। यहाँ तक कि कुछ प्रभावशाली चिन्तकों ने अपना शुद्ध शान्तिवाद में विश्वास का वापिस ले लिया और आक्रमणकर्ता राज्यों के विरूद्ध शस्त्रों से सुसज्जित राज्यों के सैन्य गठजोड़ का समर्थन किया। इस समूह से सी.ई.एम. जोड, बट्रेन्ड रसेल और रोमेन रोनाल्ड संबन्धित हैं। लेकिन वर्तमान प्रयासों ने जो शान्तिवादियों द्वारा तैयार किये जा रहे है उसने इस विश्वास को सकारात्मक और प्रावैगिक स्वरूप प्रदान किया और व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन को अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुसार ढालने का तरीका खोज लिया है।

गाँधीजी ने वर्षों पुरानी अहिंसा के दर्शन को पुनर्जीवित किया है। उनका पूरा ध्यान इन खोजों में लगा रहा कि जीवन के सभी स्तरों पर और बड़े जन आन्दोलनों में अहिंसा अनुप्रयोग कि क्या सम्भावना है। सत्याग्रह उनके अनुसार, मानवता कि समस्याओं के समाधान का एकमात्र मार्ग है, क्योंकि अहिंसा एक सार्वभौमिक कानून है जो सभी परिस्थितियों में काम करता है। इसका उल्लंघन करना विनाश को न्योता देना है। सत्याग्रह जीवन के अहिंसक दृष्टिकोण से अपृथकनीय है। एक प्रभावी सत्याग्रही होने के लिए व्यक्ति को अवश्य सत्याग्रह के आधारभूत तत्वमीमांसीय और नैतिक सिद्धान्तों को समग्रीकृत किया जाना जरूरी है।

उन्होंने जेल में रहते हुए अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उसने उन्होंने ज्यादा पुस्तकें नहीं पढ़ी। यह वास्तविकता है कि बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो ऐसा दावा करे जैसा कि उन्होंने किया। टॉलस्टॉय के सभी लेखन कार्यों को और विविध शास्त्रीय भारतीय पुस्तकों का उन्होंने ध्यानपूर्वक अध्ययन किया था। उनकी आत्मकथा में उन्होंने केवल टॉलस्टॉय की किंगडम आफ गॉड इस विथइन यू और गीता का ही उल्लेख उन कुछ पुस्तकों के बीच में किया जिनसे

उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार उन्होंने रस्किन की 'अनटु दिस लॉस्ट ' द्वारा उनके विकास में निभायी महत्त्वपूर्ण भूमिका पर जोर दिया। उनकी आत्मकथा के लेखन के पश्चात् के वर्षा में वे निरन्तर ' फोर्स कलेविगेरा ' का अध्ययन करते थे। एक समय उन्होंने कहा कि " हमने उसकी पुस्तक को कई बार पढ़ा और अब भी से उसको पढ़ते वक्त उबाऊ नहीं बल्कि तरोताजा महसूस कहता हूँ। "

उन्होंने 19वीं सदी के अन्तिम चरण के लेखकों के साथ बहुत सहज महसूस किया था जैसे अंग्रेजी नीतिकारों कार्लाइल और रस्किन, एडवर्ड, कार्पेन्टर, मॉक्स नॉर्डयू, हेनरी वॉलेस और अमेरिकी नीतिकाऐं - एमर्सन, थोरो और ललाऐड गैरीसन आदि के साथ, बजाय 20वीं सदी के फ्रॉयड जैसे चिन्तकों के साथ सन् 1907 में उनकी प्रथम नजरबन्दी के दौरान गाँधीजी बहुत खुश हुए थे क्योंकि उन्हें तब जेल पुस्तकालय में मुक्त रूप से घूमने का अवसर मिला था। उन्होंने कार्लाइल द्वारा रचित पुस्तकें व बाईबिल को पढ़ने के लिए लिया। उन्होंने एक चीनी व्याख्याकार से कार्लाइल की लाईव्स ऑफ बर्नस, जॉनसन एण्ड स्कॉट और बेकन के ' एसेज' उधार लिये। उन्होंने भगवद्गीता का, कई तमिल भाषा में रचित पुस्तकों का एक नामरहित उर्दू पुस्तक का और कुछ प्लेटों के सुकरात के साथ संवादों का भी अध्ययन किया। उसने कार्लायल और रस्किन का अनुवाद करने की योजना बनाई और बाद में पश्चाताप व्यक्त किया कि उनके समापन के उपरांत उनका विमोचन रूकवा दिया गया। प्रिन्टोरिया में तीसरी बार नजरबन्दी के दौरान उन्होंने कई संस्कृत, तमिल, हिन्दी और गुजराती में लिखी पुस्तकें पढ़ी जिसमें उपनिषद्, मनुस्मृति, रामायण, पातंजलि का योगशास्त्र, संध्या गुटिका और उसके मित्र कवि राजचन्द्र, जिसने उसके जीवन पर गहरा प्रभाव छोड़ा, की कई पुस्तकों का अध्ययन किया। उन्होंने ईमर्सन को भी पढ़ा। उन्होंने महसूस किया कि टॉलस्टॉय की लेखनी उसमें ज्यादा विश्वास पैदा करती है क्योंकि टॉलस्टॉय ने जो उपदेश दिए उनको उन्होंने व्यवहार में जीने की कोशिश की थी। गाँधी नहीं जानते थे कि टॉलस्टॉय का व्यवहार उसकी शिक्षा से बहुत छोटा रह जायेगा। आगामी जीवन में उन्होंने रेखांकित किया कि टॉलस्टॉय के विपरीत रस्किन ने कभी अपने विचारों को जीवन में जीने का प्रयास नहीं किया और विचारों की अभिव्यक्ति के साथ शेष स्तर रूप में रह गए। उसकी प्रिंटोरिया जेल में नजरबन्दी के दौरान उन्होंने फ्रांस की क्रांति पर कार्लाइल के लेखन से बहुत अधिक प्रभावित हुए और सोचा कि उन्होंने ही मैजिनी के विचारों की पुष्टि की थी।

गाँधी का अध्ययन बहुत व्यापक और मौलिक था। यह नियोजित नहीं था और वह मुख्यत: घटनाओं से निर्धारित हुआ था क्योंकि उन्होंने अपने जीवन मार्ग में जो भी पुस्तक सामने आयी उसी का अध्ययन किया न कि किसी पूर्व निर्धारित पुस्तकों का अध्ययन किया था। यहाँ तक कि एक छात्र के रूप में लन्दन में बार (Bar) के लिए उत्तीर्ण हुए जिसके तहत उनको कानून की प्रमाणित पुस्तकों जो - इक्विटी, कॉमन लॉ, रोमन लॉ, एवं सम्पत्ति कानून के बारे में ध्यानपूर्वक अध्ययन करना था इनमें उसकी बहुत रूचि थी। लेकिन वहाँ पर भी मनु के हिन्दू कानून को छोड़कर किसी भी कानून की पुस्तक के अध्ययन पर उतना जोर नहीं दिया जितना कि 'ओल्ड टेस्टामेंट' और सर एडविन अर्नोल्ड की 'लाईट ऑफ एशिया' आदि के अध्ययन पर बल दिया। उसके जीवन को प्रभावित करने वाली कुछ महत्वपूर्ण रचनाओं में

धर्मशास्त्र और हेनरी साल्ट के शाकाहारवाद के बचाव में प्रस्तुत तर्क शामिल है। जब एक मित्र ने उन पर बैथम की ' इन्ट्रोडक्शन टू द थियरी ऑफ मोरॉल्स एण्ड लेजिस्लेषन' नामक पुस्तक के विचारों को अपनाने का आग्रह किया। गाँधी उस समय 19 वर्ष के थे, उन्होंने उन विचारों का अनुसरण करना कठिन पाया। उसने सरल शब्दों में कहा कि 'ये गूढ़ बातें मेरी समझ से परे है। मैं स्वीकारता हूँ कि माँस खाना अनिवार्य है लेकिन मैं मेरे वचनों को नहीं तोड़ सकता। उसका उपयोगितावाद का जन्मजात सन्देह सम्पूर्ण जीवन उसके साथ बना रहा और उसने स्पष्ट रूप से उसकी आलोचना की जब उसने अहिंसा के मत का प्रतिपादन किया। "

उसके चुनिन्दा अध्ययनों के स्वाद से अलग रहने की और भारत में उसकी विश्वविद्यालयी शिक्षा के अपूर्ण रहने के अलावा की स्थिति के बावजूद वे निरन्तर स्वयं को शिक्षित करते रहे और जेल में आखिरी समय में कठोर अध्ययन करते रहे। सन् 1923 में यरवदा जेल में, एक आदमी हालांकि उसकी उम्र 54 वर्ष हो गई थी, वह समय का बड़ा ध्यान रखता था उसने महाभारत और गुजराती में लिखे भारतीय दर्शन के छः सम्प्रदायों के अतिरिक्त मनुस्मृति और उपनिषदों का व्यापक अध्ययन किया। उसने गीता पर टिप्पणियाँ भी पढ़ी - प्राय: उसका आरम्भिक बिन्दु नैतिक रहा और यहाँ तक कि आधुनिक भारत में राजनीतिक खोजें भी की। शंकर, ज्ञानेश्वर, तिलक एवं अरबिन्दों का अध्ययन प्लेटों के संवादों और न्यू टेस्टामेंट दोनों का काम करता था। उसने भारत में विभिन्न धर्मों के व्यवहारों के बारे में भी विस्तृत रूप से अध्ययन किया जिस तरह विलियम जेम्स ने धार्मिक अनुभवों की विविधता का किया था। उसने स्वयं को धार्मिक साहित्य की परिधि में नहीं बांधा। उसने गिब्बन, गोथे, बर्कले हेवल, गुईजोट, बैंजामिन किंडड, लक्की, गिडसन, जे.बी. शॉ, रूडयार्ड किपलिंग, वेल्स और मॉटी की ' राइज ऑफ द डच रिपब्लिक' का अध्ययन किया।

जिन पुस्तकों का गाँधीजी ने ध्यानपूर्वक अध्ययन किया उनके बीच में बटलर की ' एनालोजी ' तथा हेनरी ड्रूम्मंड की ' द नेचुरल लॉ इन दा स्प्रिचुअल वर्ल्ड' शामिल है। जब वे 30 वर्ष से कम के थे उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में सर्वप्रथम ड्रूम्मंड की पुस्तकें पढ़ी और उन्होंने महसूस किया कि यदि वह इस लेखक के समान आरामदायक जीवन जीए तो वह उससे भी बेहतर ढंग से दिखाएं कि " आध्यात्मिक दुनिया में प्राकृतिक कानून था।" 1928 में उन्होंने ड्रूम्मंड के सत्, रज, तम् सम्बन्धी जो प्रकृति के गुणों का तीन रूपीय भाग है, जो मानव के आरोहण को प्रभावित करती है, इसलिए ये पुरुषोत्तम या पूर्ण आदमी की स्थिति की अवस्थाऐं हैं, विवरण के वर्गीकरण को गीता के 14वें अध्याय में सम्पादित किया।

सन् 1934 में गाँधी ने यह भी निर्देशित किया कि वह एडम स्मिथ के " राष्ट्रों के धन" सम्बन्धी चर्चा, जो कि - " आर्थिक प्रगति में प्रकषति और मानवीय तत्वों के बीच अन्तर्सम्बन्ध से जुड़ी है, " से बहुत प्रभावित हुआ। सन् 1937 में वे आर्मस्ट्रांग की " जीवन के लिए शिक्षा" से बहुत प्रभावित हुए विशेषकर 'दस्तकारी की शिक्षा'। सन् 1938 में वे रोथ के ' सभ्यता से यहुदी योगदान के अध्ययन' से प्रभावित हुए थे।

सन् 1932 में उन्होंने ईशोपनिषद का गहन अध्ययन किया, बहुत सी टिप्पणियों के साथ और उसके छंद उसके अहिंसक समाजवाद की अवधारणा की आधारभूत विशेषताएं बन

गयी। गाँधी के तत्वमीमांसीय पूर्वमान्यताओं का व्यापक महत्व उसके राजनैतिक व नैतिक विचारों को समझना है जो उसके चिन्तन में शास्त्रीय रस या स्वाद को सम्मिलित करते हैं। वह स्टोइको की और कुछ हद तक प्लेटो की याद दिलाते हैं, लेकिन ईसाई चिन्तकों जैसे एक्वीनास तथा लार्ड एक्टन और ईसाई समाजवादियों की भी याद दिलाता है। हालांकि उसकी नैतिक सम्बन्ध, जो कि उसके चिन्तन में प्रभुत्वशाली है, उसे टॉलस्टॉय और रूसो के सद्दश्य बनाता है; यद्यपि उसने रूसो की तुलना में सरकार के कार्यों पर बहुत कम कहा लेकिन उसने टॉलस्टॉय की तुलना में नागरिकों द्वारा सामना की जा रही राजनीतिक नैतिकता की समस्या के बारे में ज्यादा कहा। इस रूप में वह मैकियावली के पूर्व के पश्चिमी चिन्तकों व लेखकों के करीबी लगते है इसलिएए उन्हें राजनीति ओर समाज के प्रति पूर्व-कोटिल्य चिंतन परम्परा युग में शामिल है और ये दोनों निष्कर्ष निश्चितत: प्रमाणित हैं। वह मौकियावली के समान धर्म और राजनीति के वियोजन का विरोध करते हैं लेकिन वह भूतकालीन अशोक है जिसने मोक्ष की बजाय धर्म पर, राजनीतिक मुक्ति द्वारा व्यक्तिगत मुक्ति की बजाय नैतिक कानून पर ज्यादा ज़ोर दिया।

चाहे हम गाँधी के धार्मिक द्रष्टिकोण पर जोर दें, लेकिन उसका उच्चस्तरीय सर्वदर्शनग्राही प्रकृति निश्चित राजनीति परिणाम रखती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उन्होंने स्वयं को एक हिन्दू बताया, लेकिन उसका हिन्दुत्व सभी धर्मों में सर्वश्रेष्ठ है। कोई भी हिन्दू राजाराम मोहन राय के बाद कुरान का उत्सुकता से जवाब देने को नहीं था और यहाँ तक कि राजाराम मोहनराय ने जैन व बुद्ध मतों पर गाँधी जितना जोर नहीं दिया था। एक हिन्दू के रूप में गाँधी अपने अतिन्द्रियक एकवाद में वेदान्ती और वैष्णव थे, अपने विश्वास में भगवान को व्यक्ति रूप में मानता। इसी प्रकार दक्षिणी अफ्रीका में वे दीक्षसीय (Esoteric) ईसाईयत के प्रभाव में आ गये, जिस रूप में मेंटलैण्ड और किंग्सफोर्ड के लेखन में व्याख्यायित किया गया था, लेकिन वह दैवी कृपा की धारणा पर प्रोटेस्टेन्ट पादरी द्वारा जोर देने से भी प्रभावित हो गये। सबसे ऊपर, उन्होंने कर्म सिद्धान्त पर जोर दिया जो कि बुद्ध दर्शन और हिन्दुत्व में ज्यादा प्रभुत्वशाली था और उन्होंने स्पष्ट रूप से जीवन के शुरू में और अन्त में थियोसोफिस्ट्स के सार्वभौतिकतावाद से जोड़ लिया। सन् 1947 में उन्होंने लुई फिशर को बताया कि " शुरूआत में कांग्रेस के बड़े नेता थियोसोफिस्ट्स ही थे, एन्नीबैसेन्ट ने मुझे बहुत आकर्षित किया। थियोसॉफी मैडम ब्लावाट्स्की को शिक्षा है, यह अपने सर्वोत्तम रूप में हिन्दुत्व ही है। थियोसॉफी भी मानव के भाईचारे की शिक्षा है। "

2.11 सारांश

यह सत्य है कि गाँधी का चिंतन मौलिकता और ताजगी भरा है लेकिन इस पर कई चिंतकों, दर्शनों, धर्म, धर्मशास्त्रों आदि का, जिनमें पूर्व और पश्चिम दोनों ही दुनिया के लोग शामिल हैं, प्रभाव पड़ा। सबसे पूर्ववर्ती प्रभावों में एक है - प्राचीन हिन्दु परम्परा का प्रभाव, जिसने उसके चिन्तन को रीढ़ की हड्डी उपलब्ध करायी है। उसका पालन-पोषण एक धार्मिक-पूजापाठ में विश्वास रखने वाले परम्परावादी हिन्दू परिवार की परम्परा में हुआ था। बहुत कम उम्र में ही उसने रामायण और महाभारत का अध्ययन कर लिया था और वैष्णव और जैन

साहित्य का भी, इनसे उसकी धार्मिक अन्तर्दृष्टि में नैतिकता व सदाचार की प्रवृत्ति और प्रखर हुई।

अपनी इंग्लैण्ड यात्रा के दौरान उसे कुछ बुद्धिजीवियों के साथ रहने का अवसर मिला उनमें से कुछ बुद्धिजीवी उसके समकालीन और ईसाई धर्म से जुड़े हुए थे। यह कहा जाता है कि जब उसने रोम में सेंट पीटर्स में ईसा मसीह की मूर्ति देखी, त्यों ही उसकी आंखों में आँसू फूट पड़े। वे ईसा मसीह के जीवन और व्यक्तित्व का बहुत सम्मान करते थे और इस प्रकार वे ईसा मसीह की कुछ मौलिक बातों को अपने चिन्तन में समाहित करने में सफल रहे। इसी क्रम में वह टॉलस्टाय का भी ऋणी हैं, जिसने अपनी पुस्तक, 'किंग्डम ऑफ गॉड विथइन यू' में ईसाईयत की लगभग नई व्याख्या प्रस्तुत की थी। टॉलस्टॉय ने गाँधी के मस्तिष्क पर कई रूपों में प्रभाव छोड़ा है, विशेषकर उसकी सहने की शक्ति और गरिमा ने गाँधी को सविनय अवज्ञा के विचार को विकसित करने के लिए प्रेरित किया। इसको बडी सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं के समाधान में तकनीक के रूप में अहिंसा के प्रयोग की सम्भावना को उद्घाटित किया। इनके अतिरिक्त वे जरथुश्ट्रियन और इस्लाम का भी आंखों देखा ज्ञान रखते थे और रस्किन के कार्यों का भी तथा साथ ही उसके समय के कुछ थियोसोपिटों का भी।

इन सभी प्रभावों का उसने जानबूझ कर और जिम्मेदारी के साथ ग्रहण किया था। गाँधी ने नैतिकता, धार्मिकता और अस्तित्ववादी मुद्दों पर आन्तरिक और बाह्य दोनों अस्तित्व में, एक के बाद एक परीक्षणों को जारी रखा। उनका चिन्तन परीक्षणों के परिणामों के उत्पाद के अलावा कुछ भी नहीं है, जो कि उसने निरन्तर जारी रखे।

2.12 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी चिन्तन पर पड़ने वाले भारतीय प्रभावों का वर्णन कीजिए।
2. गाँधी चिन्तन पर पड़ने वाले पाश्चात्य प्रभावों का वर्णन की कीजिए।
3. गाँधी चिन्तन पर पड़ने वाले भारतीय एवं पाश्चात्य प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
4. गाँधी चिन्तन पर टॉलस्टॉय के प्रभावों का तथा उनके चिन्तनों में आपसी समानता का भी वर्णन कीजिए।

2.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एण्ड्र्यू, सी. एफ., महात्मा गाँधीज् आइडियाज्, जार्ज एलन एण्ड अनविन लिमिटेड, लन्दन, 1949
2. धवन, जी. एन., द पॉलिटिकल फिलॉसॉफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1962
3. गाँधी, एम.के., सत्य के साथ मेरे प्रयोग (आत्मकथा), नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1988
4. वर्मा, वी. पी., फिलोसॉफिकल एण्ड सोशलॉजिकल फाउण्डेशन्स ऑफ गाँधीज्मू, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1981

5. वर्मा, वी. पी., द पॉलिटिकल फिलॉसॉफी ऑफ गाँधी एण्ड सर्वोदय लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1986

इकाई - 3

राजनीतिक आध्यात्मीकरण पर गाँधी के विचार

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 राजनीति का अर्थ
3.3 आध्यात्मिकता का अर्थ
3.4 राजनीति के बारे में गाँधीजी के विचार
3.5 राजनीति और धर्म में अन्तरसंबन्ध:गाँधीजी के विचार
3.6 आध्यात्मीकृत राजनीति के सिद्धान्त:गाँधीजी के विचार
3.6.1 सत्य के प्रति प्रतिबद्धता
3.6.2 अहिंसा जीवन का सिद्धान्त बने
3.6.3 आत्मिक विकास का प्रयास करना
3.6.4 साध्य और साधन की पवित्रता
3.6.5 कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वाह
3.6.6 मानव जाति की आधारभूत एकता में विश्वास
3.6.7 सभी धर्मों का समान आदर
3.6.8 निम्नतम व्यक्ति के उत्थान के प्रति समर्पित
3.6.9 अन्तरात्मा की प्रधानता
3.6.10 एकादश व्रतों की अनुपालना
3.6.11 स्वराज और वैक्तिक उन्नयन
3.6.12 वैक्तिक हित का सामाजिक हित के साथ सामन्जस्य
3.7 सारांश
3.8 अभ्यास प्रश्न
3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप निम्नलिखित विषयों पर विचार जान सकेंगे :-

- राजनीति का अर्थ।
- आध्यात्मिकता का अर्थ।
- राजनीति के बारे में गाँधीजी के विचार
- राजनीतिक आध्यात्मीकरण के बारे में गाँधीजी के विचार और आधारभूत सिद्धान्त।

3.1 प्रस्तावना

गाँधीजी परम्परागत अर्थ मे कोई राजनीतिक चिन्तक या संत नही थे। उन्होंने कहा था कि राजनीतिक चिन्तन प्रस्तुत करना उनका ध्येय नहीं है और जो कुछ विचार वह प्रस्तुत कर रहें हैं वह,हिमालय जितनी पुरानी ' हैं। व्यवस्थित तरीके से सिद्धान्तों का निर्माण करना या पूर्व में व्यक्त किए गए विचारों के प्रति संगत होकर उसी के अनुरूप आगे बढ़ने का प्रयास करना, गाँधीजी के अनुसार उनका मकसद नही है। अपितु सत्य के प्रति प्रतिबद्धता और प्राप्त सत्य के अनुरूप आवश्यकता हो तो अपने पूर्व कथन और जीवन आचरण को बदलना गाँधीजी के चिन्तन और कार्यो को गतिशीलता प्रदान करता है और प्रासंगिकता भी। अपने दर्शन का संदेश पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। उनके बारे मे कहा जाता है कि वे राजनीतिज्ञों में संत और संतों में राजनीतिज्ञ थे। दक्षिण अफ्रिका और भारत के सक्रिय राजनीतिक जीवन में गाँधीजी ने राजनीतिक जीवन में नैतिक साधन के प्रयोंग पर बल दिया। लक्ष्य के साथ-साथ उन्होंने साधने की पवित्रता पर भी बल देकर कहते थे कि पवित्र साधन ही उद्देश्यों की पवित्रता को बनाये रखते है। सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों को अपनाने पर गाँधीजी ने अत्यधिक बल दिया। राजनीति में उन्होंने सार्वजनिक कल्याण को प्राथमिक माना। उनकी सार्वजनिक राजनीति न केवल नैतिक और परोपकारी दृष्टिकोण से प्रेरित और नियन्त्रित रही है बल्कि यह व्यक्तिगत सादगी और उच्च कोटि का चरित्र भी अपरिहार्य मानता है।

गाँधीजी अपने साधा जीवन उच्च विचार और आध्यात्मिक दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध थें। उनका जीवन इस तरह एक साधू अथवा संत के जीवन के समान था। परन्तु परम्परागत तरीके से जिस तरह साधू या संत सामाजिक जीवन से प्रथक एकाकी जीवन व्यतीत करते हैं और भौतिक जगत अथवा तत्वों का त्याग करते हैं, गाँधीजी ने ऐसा नही किया। वे समाज में एक सक्रिय जीवन व्यापन करने के पक्षधर थे। परम सत्य या ईश्वर की प्राप्ति के लिए उन्होंने भौतिक जगत के सत्य को आवश्यक माना। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन की समस्याओं के प्रति वे सजग थे और सक्रिय प्रयासों से उन्होंने इन समस्याओं का निराकरण करने का प्रयास किया इसलिए वे संतों में एक राजनीतिज्ञ के रूप में स्वीकारे जाते है।

उन्होंने स्वीकार किया कि वर्तमान में राजनीति ने व्यक्ति के जीवन की सम्पूर्ण क्षेत्र में प्रविष्ट कर लिया है। भ्रष्ट होने से भले ही यह राजनीति विशैला साँप के समान मनुष्य के सामने खडा हुआ है, पर गाँधीजी इस साँप से लड़ना चाहते थे और अपने राजनीतिक गुरू गोखले के पदचिन्हों पर चलते हुए राजनीति का आध्यात्मीकरण करना चाहते हैं। गाँधी जी का निष्कर्ष है कि धर्म की नैतिक शक्ति के साथ राजनीति का संयोग होने पर ही मानव-जाति की सार्वजनिक समस्याओं का नैतिक और प्रभावी हल प्राप्त किया जा सकता है।

3.2 राजनीतिक का अर्थ

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो समाज में रहकर अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अनेक प्रकार के अन्तर वैक्तिक सम्बन्ध स्थापित करता है इन्ही अन्तर-वैक्तिक सम्बन्धों में राजनीति एक प्रमुख मानवीय गतिविधि हैं। सामान्यत: मानवीय व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक पक्षों का उल्लेख किया जाता है।

मनुष्य की राजनीतिक व्यक्तित्व के सम्बन्ध में उसकी आवश्यकतायें और इन आवश्यकतओं को पूर्ण करने के लिए उसके द्वारा प्रयुक्त साधन और सम्पन्न किए गतिविधियों को वृहत रूप में राजनीति या राजनीति से सम्बन्धित गतिविधि के नाम से पहचाना जाता है।

मनुष्यों में कुछ समान प्रवृत्तियाँ और आवश्यकतायें विद्यमान हैं। तदापि उसमे भिन्नतायें भी हैं। जहाँ समान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य एक दूसरे से सहगत होते हैं। परस्पर एक दूसरे के साथ सहयोग करते हैं, वही भिन्नताओं के कारण मतभेद और संघर्ष भी मानवीय व्यवहार का प्रमाणिक सत्य है। सामाजिक प्राणी के नाते कोई व्यक्ति कैसे अपना जीवन व्यापन करे, उसकी आवश्यकताओं के लिए उसे कौने से संसाधन उपलब्ध होंगे, वह कैसे इन संसाधनों का प्राप्त करेगा, कौन उसे यह संसाधन उपलब्ध करायेगा, इत्यादि महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनके सम्बन्ध में सहमति व असहमति और सहयोग व संघर्ष देखने को मिलता है। इन्हीं मानवीय अन्तःक्रियाओं को सामान्य अर्थ मे राजनीति कहा जाता है।

राजनीति का सबसे वृहद स्वरूप में नियम या कानून बनाने की क्रिया सम्मिलित की जाती हैं। प्राय: यह माना गया है कि मनुष्य और समाज का हित स्वच्छन्दतापूर्ण व्यवहार से आहत होता है। इसलिए मानवीय व्यवहार के कुछ नियम-कायदे होने चाहिए। इन नियमों का आधार विवेक है और उद्देश्य मनुष्य का कल्याण है। इसके निमार्ण, संशोधन और संचालन सम्बन्धी गतिविधियों नें आम सहमति और सामूहिक सहभागिता अन्य महत्वपूर्ण आधार है।

अनेक कारणों से राजनीति की सर्वमान्य परिभाषा करना या स्पष्ट रूप से उसके उद्देश्य, प्रकृति और क्षेत्र बताना हमेशा से विवादास्पद रहा है। इसके पीछे विद्वानों में एकमत का अभाव, राजनीतिक गतिविधियों की गतिशीलता, व्यावहारिक संचालन के दौरान इसका निजि स्वार्थ के लिए दुरूपयोग करना, इत्यादि अनेक कारण विद्यमान हैं। तदापि राजनीतिक चिन्तन और विश्लेषण के इतिहास के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजनीति को सामान्य: चार प्रकार के दृष्टिकोण से समझा जा सकता है।

1. सरकार की कला के रूप में।
2. सार्वजनिक कार्यो के रूप में।
3. समझौते एवं सहमति के रूप में।
4. शक्ति और स्त्रोतों के बँटवारे के में।

राजनीति को सरकार की कला के रूप में प्रस्तुत करने वाला दृष्टिकोण सर्वाधिक रूप से पुराना है। इसकी उत्पत्ति प्राचीन काल के युनान के छोटे नगर राज्य, जिन्हे पॉलिटि कहा जाता था, में हुई। इनके शासन सम्बन्धी कार्य को पॉलिटिक्स कहा जाता था। यह दृष्टिकोण राजनीति को सरकार की कला के रूप मे प्रस्तुत करता है जो समाज से राजनीतिक मूल्यों के अधिकारिक वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राजनीतिक मूल्य के वितरण सम्बन्धी विभिन्न नियम एवं नीतियाँ क्या होंगी, कौन सी संस्थायें इस कार्य को सम्पन्न करेंगी और कैसे वह लोगों की मांगों को पूरा कर उनके समस्याओं का समाधान कर अपने प्रति समर्थन जुटा कर अपने स्थयित्व या प्रगति को सुनिश्चित करेगी, यह राजनीती है।

राजनीति को सार्वजनिक कार्यों के रूप में प्रस्तुत करने वाला दृष्टिकोण सम्पूर्ण मानव जीवन को दो वृहद वर्गो मे बाँटता है - सार्वजनिक और निजि। सार्वजनिक क्षेत्र से जुडे कार्य और सम्पन्न कार्य को राजनीति कहते हैं। ये संस्था में सामुदायिक जीवन को सामूहिक संगठनात्मक स्वरूप प्रदान करने और उद्देश्यपूर्ति के लिए उत्तरदायी है और इसके लिए जनता द्वारा किए गए कर अदायगी से इन कार्यों को सम्पन्न करने के खर्च को वहन किया जाता है। निजि क्षेत्र के कार्य वे हैं जो व्यक्ति या समूह विशेष अपने व्यक्तिगत या समूह के स्तर से सम्बन्धित संगठित होकर कार्य करने और उद्देश्यों को पूरा करने का प्रयास करते हैं। इनके लिए आवश्यक धन भी निजि स्तर पर प्रबन्ध किया जाता है।

राजनीति को समझौते एवं सहमति के रूप में प्रस्तुत करने वाला दृष्टिकोण राजनीतिक निर्णय, विशेषत: राजनीतिक संघर्षों का समाधान करने वाले एक विशेष प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करती है। यह दृष्टिकोण राजनीति को हिंसा और शक्ति के आधार पर संघर्षों के समाधान ढूँढने की प्रक्रिया न मानकर, कैसे वार्ताओं और समझौतों के आधार पर संघर्ष समाप्त किए जा सकते हैं, इसे प्रयासों की प्रक्रियाओं को राजनीति मानता है।

राजनीति को शक्ति एवं स्त्रोतों के बँटवारे के रूप में प्रस्तुत करने वाला दृष्टिकोण राजनीति को समस्त मानवीय क्रियाकलापों में शक्ति सम्बन्धी गतिविधि के रूप में स्वीकारा है। शक्ति को व्यक्ति या समूह में विद्यमान ऐसे सामर्थ्य के रूप में स्वीकारा गया है जिससे वह अपनी इच्छानुसार दूसरे व्यक्ति या समूह को आचरण करने के लिए प्रभावित करता है। इस शक्ति के प्रयोग से स्त्रोतों का बंटवारा समाज में किया जाता है जिसका महत्वपूर्ण पक्ष है किसे क्या कब और कैसे मिलेगा।

जिस तरह मानवीय इतिहास में राजनीति का दुरूपयोग किया गया है, उसके परिणामस्वरूप इसे एक बुरे कृत्य के रूप समझा जाता है। सार्वजनिक हित के प्रतिकुल होने के कारण इसे अवान्छनीय माना जाता है। इसे नकारात्मक अर्थ में अनैतिक और तर्क या विवेक विरोधी माना जाता है। ऐसा दृष्टिकोण अपनाते हुए शक्ति, जो कि राजनीति का एक महत्वपूर्ण घटक है, के बारे में लार्ड एकटन ने तो यहाँ तुक कहा है कि "शक्ति या सत्ता भ्रष्ट होती है और अमर्यादित शक्ति या सत्ता पूर्णत: भ्रष्ट करती है।"

3.3 आध्यात्मिकता का अर्थ

सम्पूर्ण सृष्टि और मानवीय अस्तित्व से जुडे हुए अनेक जटिल प्रश्न हैं जिनके उत्तर ढूँढने का गहन प्रयास आदिकाल से मानव सभ्यता ने किया है। सम्पूर्ण सृष्टि का अस्तित्व कैसे हुआ, यह किस शक्ति द्वारा नियन्त्रित और मर्यादित है, मनुष्य जीवन इस सम्पूर्ण सृष्टि के साथ कैसे जुडा हुआ है, उसके जीवन का उद्देश्य क्या होना चाहिए, जैसे अनेक प्रश्नों पर गहन चिन्तन मनन हर समाज में किया गया हैं। आध्यत्मिकता को सम्पूर्ण सृष्टि में निहित मौलिक पराभौतिक सत्य या वास्तविकता कहा जा सकता है। यह सम्पूर्ण सृष्टि और मानव जीवन का सार समझाने वाला ज्ञान है। सभ्य समाज में आस्तिक लोगों के लिए आध्यात्मिकता धर्म का रूप लेती है। आध्यत्मिकता भौतिक तत्व को महत्वपूर्ण न मानकर सभी भौतिक अस्तित्व के पीछे एक पराभौतिक सर्वशक्तिशाली सत्य को स्वीकार करती है। मानव जीवन के लक्ष्य, इसके

अनुसार, इस परम सत्य या पराभौतिक शक्ति को पहचानना और स्वयं के जीवन में अंगीकृत करना है। इसलिए आध्यात्मिकता चेतना की एक उत्कृष्ट अवस्था है। यह सम्बन्धित व्यक्ति के आन्तरिक विकास की ओर इंगित करता है जिससे वह उत्कृष्ट नैतिक जीवन व्यापन करता है और ज्ञानी होने का परिचय देता है। आध्यत्मिक होना मानवीय अस्तित्व की पूर्णता की अवस्था को दर्शाता है। आध्यात्मिक व्यक्ति ने केवल ईश्वर के साथ एकत्व रखता है बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि के साथ भी वह एकत्व की भावना रखता है। मनुष्य द्वारा आध्यात्मिकता की और अग्रसर होने या उसके द्वारा यह प्राप्त करना सम्भव माना गया है। ऐसा इसलिए माना गया है क्योंकि उसमें अन्तरात्मा का तत्व है जो स्वयं परम सत्य या ईश्वर का ही अंश है। इस अन्तरात्मा को पहचानने के लिए मनुष्य को विशेष प्रयास करना होता है। ऐसा माना गया है कि पूजा, प्रार्थना, ध्यान धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन से भी आध्यात्मिकता को प्राप्त किया जा सकता है। आध्यात्मिक जीवन को अधिक सार्थक जीवन माना गया है। ऐसा इसलिए माना गया है क्योंकि यह जीवन वास्तविक सत्य या मानव जीवन और सृष्टि में निहित मूल सत्य के अनुकूल है। ऐसे आध्यात्मिक अस्तित्व में मनुष्य को सम्पूर्ण मानव समुदाय, प्रकृति एवं सम्पूर्ण सृष्टि के साथ एकता रखने की बात की गई है।

यदि परम्परागत रूप से देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि विभिन्न धर्मों के द्वारा मनुष्यों को जो नैतिक जीवन जीने का उपदेश दिया गया है ताकि वे परम सत्य, जिसे ईश्वर भी कहा जाता है, को प्राप्त कर सकें, उसे आध्यत्मिकता कहा जा सकता है। विभिन्न धर्म कुछ धार्मिक नियम और कार्यों को मानवीय जीवन में अंगीकृत- करने के लिए प्रभावित करते हैं। इनके द्वारा अनुसरण करने वाले व्यक्ति के लिए मोक्ष या ईश्वर प्राप्ति की ओर अग्रसर होने की बात की जाति है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक साधनों का भी वर्णन किया गया है जैसे प्रार्थना, ध्यान, धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन, इत्यादि। व्यक्ति का नैतिक विकास और उसके द्वारा ईश्वर से या परम शक्ति से विशेष आध्यात्मिक सम्प्रेशन की भी बात की जाती है।

आधुनिक समय में जैसे-जैसे धर्मनिर्पेक्ष सोच का विकास हुआ है, आध्यत्मिकता का बल मानवीय मूल्यों की ओर बढ़ रहा है। आध्यत्मिकता इस संदर्भ में, मानवीय गुण जैसे प्यार, धैर्य, सहिष्णुता, दया, परोपकार, आपसी सौहार्द, और सामन्जस्य, कर्तव्यों के प्रति जागरूक, आत्म संतुष्टि, इत्यादि के रूप में स्वीकारा जाने लगा है। परम्परागत धार्मिक दृष्टिकोण की तरह यह किसी ईश्वरीय अस्तित्व में गहन विश्वास नहीं रखता है, परन्तु यह इस बात पर बल देता है कि भौतिकता ही जीवन का एकमात्र पक्ष नहीं है। यह दृष्टिकोण आध्यात्मिक प्रयास जैसे एकाग्रता या ध्यान को भी मानव जीवन की सार्थकता के लिए सहायक मानता है। यह एकाग्रता और ध्यान किसी ईश्वर या परा-भौतिक शक्ति को केन्द्र पर रख कर नहीं किया गया कार्य है अपितु यह ऐसे विचारों संवेदनाओं, शब्दों और व्यवहारों को पोषित करने का प्रयास है जो मानता है कि सृष्टि में निहित सम्पूर्ण-तत्व एक दूसरे से गहन रूप से सम्बन्धित हैं और प्रभावित भी करती हैं और इनके बारे में ज्ञान अर्जित करना चाहिए और अर्जित ज्ञान को जीवन

में नित्य रूप से अनुसरण भी किया जाना चाहिए। यही मनुष्य जीवन, व्यक्तिगत और समुदायिक, के सर्वांगीन विकास और श्रेष्ठता के लिए हितकारी होगा।

3.4 राजनीति के बारे में गाँधीजी के विचार

जैसे सामान्यत: राजनीतिक चिन्तन में मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी माना गया है वैसे ही गाँधीजी भी मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति को स्वीकार करते हैं। परन्तु गाँधीजी द्‌वारा प्रस्तुत मनुष्य को सामाजिक प्रकृति व्यापक दृष्टिकोण लिए हुए है। मात्र अपनी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए उसे समाज की आवश्यकता पड़ने और इस कारण उसे सामाजिक कहने से भिन्न गाँधीजी मनुष्य को सामाजिक इसलिए मानते हैं कि मूलत: मानव प्रकृति अच्छा होने के कारण वह सभी को साथ लेकर चलता है और मानता है कि जो नियम समाज ने बनायें हैं वह उसके और समाज के हित में है और इसलिए इन्हें स्वीकार करना चाहिए। वह समाज के हित में अपना हित निहित मानकर इन नियमों को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। मनुष्य की विवेकशीलता, दैवीयता ओर सामाजिकता गाँधीजी के अनुसार मनुष्य को सृष्टि के अन्य जीवों से भिन्न बनाता है। यही उसकी तुलनात्मक श्रेष्टता का भी परिचय है। मानव प्रकृति में निहित कमियों के कारण गाँधीजी स्वीकार करते हे कि कभी-कभी मनुष्य अपने श्रेष्ट अस्तित्व के गुणों से प्रथक हो जाता है। परन्तु वह निराशावादी नही हैं। मनुष्य की असीम प्रगति की क्षमता और उसकी प्रकृति की परिवर्तनशीलता में विश्वास के कारण गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य अपने आदर्श और श्रेष्ट अस्तित्व की ओर बड़ सकता है। मनुष्य में विद्‌यमान दैवीय तत्व को पहचानने और उसके अनुरूप जीवन व्यापन करना गाँधीजी के अनुसार मनुष्य जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। मानव व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को गाँधीजी भी स्वीकार करते है।

वह यह भी मानते हैं कि मनुष्य व्यक्तित्व के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक पक्ष एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है, किसी का भी प्रथक अस्तित्व नहीं है। जहाँ तक राजनीति का सम्बन्ध है, गाँधीजी इसे सभी को प्रभावित करने वाली सर्वत्र अस्तित्व रखने वाली एक शक्ति के रूप मे स्वीकार करते हैं। इसलिए गाँधीजी के अनुसार राजनीति, मनुष्य के लिए एक अपरिहार्य क्रिया है। गाँधीजी के अनुसार राजनीति स्वतन्त्रता प्रदान करने, बन्धुत्व विकसित करने और समानता और न्याय स्थापित करने के लिए सम्पन्न क्रियायें हैं। गाँधीजी ने राजनीति को शक्ति और सम्पति प्राप्त करने के लिए संघर्ष नही माना अपितु इसे एक निःस्वार्थ लोक सेवा माना। उनके अनुसार राजनीति एक ऐसी परोपकारी सेवा है जो निःशक्तजनों अथवा पद्दलितों को बेहतर और सुखी जीवन-व्यापान करने में मदद करने वाली क्रिया है। आध्यात्मिकता की प्रधानता के कारण गाँधीजी राजनीति को शक्ति और सम्पत्ति प्राप्त करने का संघर्ष नहीं मानते थे अपितु उनके स्वराज और सर्वोदय अवधारणाओं के विश्लेषण से निष्कर्षात्मक रूप में कहा जाता है सकता है कि उनके लिए राजनीति सभी को सशक्त बनाने और सभी का अधिकाधिक कल्याण करने की क्रिया है। अहिंसा और शान्ति के पुजारी के रूप में ख्याति प्राप्त करने वाले गाँधीजी राजनीति को संघर्ष भी नहीं मानते बल्कि सौहार्द और सामन्जस्य करने के लिए सम्पन्न महत्वपूर्ण गतिविधि मानते हैं। यद्‌यपि आदर्श के तौर पर उन्होंने एक राज्य विहीन समुदायिक समाज की कल्पना की परन्तु वास्तविकता को

ध्यान में रखते हुए उन्होंने राज्य और सरकार के अस्तित्व को व्यवहारिक तौर पर स्वीकार किया है। इनके द्वारा सम्पन्न गतिविधियाँ, जो परम्परागत रूप से राजनीतिक गतिविधि के रूप में स्वीकारा जाता है, को गाँधीजी भी उपादर्श के रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार से स्वीकृत राजनीतिक गतिविधियों को गाँधीजी ने ऐसी परिस्थितियों का निमार्ण करने या प्रबन्ध के रूप में स्वीकार किया जो अधिकतम लोगों का अधिकतमक हित पूरा करता हो और आदरूग़ेन्नमुख हो।

3.5 राजनीति और धर्म में अन्तरसंबन्ध:गाँधीजी के विचार

मानव जीवन और समस्त मानव-कृत संस्थाओं के सम्बन्ध में गाँधीजी के विचार आध्यात्मिक सोच से प्रभावित है। इस कारण गाँधीजी के लिए राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पक्ष आपस मे एक दूसरे से और सब आध्यात्मिकता या नैतिकता के साथ घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं। और धर्म के बीच गहन सम्बन्ध को उन्होंने स्वीकार किया। धर्म को राजनीतिक जीवन की धुरी माना। गाँधी ने कहा है कि जो लोग धर्म को राजनीति से अलग करने की बात करते है, वास्तव में वे न तो धर्म और न ही अपने कर्तव्य को जानते हैं। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को आपने समस्त क्रियाकलापों में धर्म को केन्द्रीय स्थान प्रदान करना चाहिए। वे प्राचीन भारत मे विद्यामान उस राजनीतिक चिन्तन के समर्थक के रूप मे प्रतीत होते हैं जो राज्य का काम धर्म का प्रचार और समाज में धर्म की स्थापना करना मानता है। परन्तु गाँधीजी ने धर्म को किसी मत या सम्प्रदाय विशेष या उसकी पूजा, पाठ, अर्चना आदि के रूप में महत्व न देकर इसे परम सत्य तुल्य ईश्वर और उसकी सम्पूर्ण सृष्टि से नैतिक मूल्यों के आधार पर सम्बन्ध संचालित करने के रूप में स्वीकार किया है।

गाँधीजी के राजनीतिक गुरू गोखले भी राजनीति और आध्यात्म में गहरे सम्बन्ध को स्वीकार करते थे। ‘ राजनीति का आध्यात्मीकरण ’ की अवधारणा गाँधीजी ने विरासत मे गोखले से ही प्राप्त किया। गोखले ने जब ‘ राजनीति का आध्यात्मीकरण ’ की बात की तो उनका आशय था कि राजनीति संचालन में नैतिक नियमों का अनुसरण करना और इसका उद्देश्य भी नैतिकता और परोपकार से प्रेरित होना चाहिए। गोखले ने पवित्र उद्देश्य और इनकी प्राप्ति के लिए पवित्र साधनों के प्रयोग पर बल दिया।

गाँधीजी के मतानुसार धर्म समाज के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित है और मानव-प्रवृतियाँ का सारा सप्तक एक अविभाज्य वस्तु है, इसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और विशुद्ध धार्मिक काम के प्रथक खानों में विभाजित नहीं किया जा सकता। इसलिए उनका मानना था कि राजनीति को धर्म से पृथक नही किया जा सकता। वे कहते थे कि उनके लिए धर्मविहीन राजनीति जैसे कोई चीज नही है और नीतिशून्य राजनीति सर्वथा अन्याय है। उन्होंने यहाँ तक कहा कि राजनीति धर्म की अनुगामिनी हैं। धर्म से शून्य राजनीति, मृत्यु का एक जाल है क्योंकि उससे आत्मा का हनन होता है। राजनीति में मौकियावलीय सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए छल-छदमयुक्त राजनीति का गाँधीजी ने विरोध किया। उन्होंने स्वीकारा कि राजनीति में नैतिकता विहीनता और कुटिलता ने राजनीति को बहुत विशैला बना दिया है और इस विशैले साँप रूपी राजनीति ने मानव सभ्यता को चारों तरफ से लपेट लिया है। इस कारण इसके चुंगल से बचना असम्भव है। प्रचलित राजनीति को 'साँप' के रूप में पहचानना उसी सामान्य दृष्टिकोण

को प्रतिबिंबित करता है जो राजनीति को एक बुरा और अवांछनीय कृत्य के रूप मे स्वीकार करता है। परन्तु गाँधीजी पलायनवादी नहीं थे और न ही नैतिक मूल्यों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का समझौता करने के लिए तैयार थे। अत: वे इस ' साँप' रूपी राजनीति से झूझना चाहते थे और इसके बुरे पक्षों को समाप्त कर इसे एक सकारात्मक लोक-कल्याणकारी कृत्य के रूप मे परिवर्तित करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कहा "मैं इस साँप से द्वन्द-युद्ध करना चाहता हूँ, मैं राजनीति में धर्म का समावेश चाहता हूँ।" धर्म और राजनीति में विद्यमान अन्तर-सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए गाँधीजी ने कहा कि "मैं आज तक जितने धार्मिक पुरूषों से मिला हूँ वे अन्दर ही अन्दर राजनीतिक रहे हैं किन्तु मैं जो का राजनीतिज्ञ का बाना पहने घूमता हूँ, हृदय से सम्पूर्णत: धार्मिक मनुष्य हूँ।" गाँधीजी के अनुसार सच्चा धर्म कत्तर्व्य होता है और राजनीतिक क्रियाशीलता इसमें सम्मिलित है। उनके अनुसार धर्म समाज के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित है, इसलिए इसे राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता। राजनीति के सकारात्मक और लोक-कल्याणकारी उद्देश्यों को पूरा करने के लिए गाँधीजी इनको सम्पन्न करने वाले व्यक्तियों के लिए धार्मिक होना जरूरी मानते थे। एक बार तिलक ने कहा कि "राजनीति कोई साधुओं का खेल नहीं है।" उत्तर मे गाँधीजी ने कहा कि "राजनीति साधुओं और केवल साधुओं का काम है।" साधुओं से उनका अभिप्राय लोक-कल्याण के प्रति समर्पित नैतिक पुरूषों से था। राजनीति और धर्म के मध्य गहरे संबंध स्थापित करने के प्रयासों से गाँधीजी को सावचेत करते हुए टेगोर ने कहा कि "धर्म को राजनीति के कमजोर नौका में मत रखो जो दलबंधी की कुछ लहरों से टकराती रहती हैं।" उत्तर में गाँधीजी ने कहा कि "बिना धर्म के राजनीति एक मुर्दा है जिसको सिवा जला देने के और कोई उपयोग नहीं हो सकता।"

राजनीति को धर्म आधारित करने से गाँधीजी का यह अभिप्राय नहीं था कि राजसत्ता धर्माधिकारियों द्वारा संचालित होगी या राज्य किसी धर्म विशेष या सम्प्रदाय विशेष का प्रचारक बनेगा। धर्मनिरपेक्ष राज्य किसी धर्म विशेष या सम्प्रदाय विशेष के प्रचार में संलग्न न हो, ऐसे विचार से तो गाँधीजी पाश्चात्य जगत द्वारा प्रतिपादित धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त का समर्थन करते दिखते हैं जो यह मानता है कि राज्य में रहने वाले प्रत्येक नागरिक को बिना किसी बाधा के अपना धर्मपालन करने का पूर्ण अधिकार होगा राज्य न तो किसी धर्म को विशेष संरक्षण प्रदान करेगा और न ही किसी धर्म के विकास में बाधा बनेगा। सभी धर्मों के प्रति राज्य और राजनीति संचालन करने वाले लोग समान आदर भाव रखेंगे। पश्चिम में प्रचलित धर्मनिरपेक्ष राज्य की धारणा भौतिकता को प्रधानता देते हुए लौकिक राज्य की धारणा प्रस्तुत करता है। तर्क को अत्यधिक महत्व देकर ज्ञान की विधा में केवल अनुभवजन्य सत्य को सम्मिलित करता है और समस्त शासन का आधार इसी को मानता है। यह राज्य को आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों से मुक्त रखने का समर्थन करता है। राजनीति के क्षेत्र में यह स्वच्छ उद्धेश्यों को तो स्वीकार करता है, किन्तु कैसे या किन नैतिक साधनों से यह प्राप्त किए जाने चाहिए इस पर मौन है या उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण अपनाता है।

परन्तु पश्चिम में प्रचलित धर्म-निरपेक्ष राज्य की धारणा से गाँधीजी आगे बढ़ते हैं। यह उल्लेखनीय है कि गाँधी जी राजनीति के आध्यात्मीकरण एवं नैतिकीकरण की धारणा के समर्थक

हैं और इसलिए वे धर्मनिरपेक्ष राज्य, अर्थात् लौकिक राज्य के विचार से असहमत है। वे धर्म ओर नैतिकता में कोई भेद नही मानते थे और सर्वधर्मसमभाव-राज्य के विचार का समर्थन करते थे जिसकी प्रकृति सभी धर्मों के सार पर आधारित आध्यात्मिक मूल्यों को प्राथमिकता देना है। यह सभी धर्मों में निहित शाश्वत नैतिक नियमों के अनुसार अपनी नीतियों को नैतिक आधार प्रदान करने वाला राज्य है।

3.6 आध्यात्मीकृत राजनीति के सिद्धान्त :गाँधीजी के विचार

गाँधीजी धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त से ज्यादा महत्वपूर्ण इस बात को मानते हैं कि राज्य प्रत्येक धर्म द्वारा आधारभूत माने जाने वाले सिद्धान्त, जिन्हें नैतिकता के नाम से भी जाना जाता है, को अनिवार्य रूप से अंगीकृत करे। इस सम्बन्ध में राजनीति सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित है जिसमें सत्य, अहिंसा, परोपकार, नि:स्वार्थ, इमान्दारी, इत्यादि सम्मिलित हैं। गाँधीजी के विचार अनुसार आध्यात्मीकृत राजनीति के निम्नलिखित सैद्धान्तिक आधार हैं -

3.6.1 सत्य के प्रति प्रतिबद्धता

गाँधीजी की 'सत्' की धारणा यह थी कि इस जगत में सत्य के अतिरिक्त और कुछ भी वास्तविकता में अस्तित्व नहीं रखता, सत्य के अतिरिक्त अन्य सब कुछ मिथ्या है। 'सत्य' सम्बन्धी गाँधीजी के विचारों से इसके अनेक अन्य अर्थ भी निकलते हैं। जैसे शुद्धता, वास्तविकता, ज्ञान, उचित, स्वयं विद्यमान सार, वैध, अमोध इमानदारी, जैसा होना चाहिए, इत्यादि। 'सत्' को सम्पूर्ण सृष्टि को संचालित करने वाली परम शक्ति के रूप में भी स्वीकारा गया है और गाँधीजी परम शक्ति को ईश्वर के रूप में भी मानते हैं। 'सत्' उनके लिए सर्वोच्च और सर्वसमाहित करने वाला सिद्धान्त भी है जो निगमनान्मक तर्क के आधार पर अन्य सभी मानवीय मूल्यों और श्रेष्ठताओं से प्राथमिक भी है। गाँधीजी का तर्क है कि क्योंकि सृष्टि परम सत् को प्रतिबिंबित करता है इसलिए यह लौकिक व्यवस्थाओं और मनुष्यों को भी अपना सम्पूर्ण अस्तित्व और क्रियाओं को इसी के अनुसरण में ढालना चाहिए। गाँधीजी के लिए सत्य का साथ देना मनुष्य का कर्तव्य है और यह उसका ढाल भी है। गाँधीजी का मानना था कि सत्य का साथ देना उस परम शक्ति अथवा ईश्वर का साथ देना भी है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को सुनियोजित तरीके से नियन्त्रित करती है। उनके लिए सत्य स्वीकारोक्ति व प्रगति का अपरिहार्य भाग है। इसके प्रति प्रतिबद्धता केवल नैतिक प्रश्नों पर मात्र गहन दृष्टि द्वारा विचार व्यक्त करना ही नहीं है बल्कि इन सिद्धान्तों को मूर्त रूप देने में अन्तर्निहित परेशानियों को स्वीकारने की इच्छा शक्ति दिखाना भी महत्वपूर्ण है। गाँधीजी के अनुसार सत्य ही उद्देश्यों को औचित्यता प्रद्वान करता है और सत्य ही अन्तरात्मा की आवाज को प्रतिबिंबित करता है। यह व्यक्ति को अपने कर्तव्यों की अनुपालना करने पर जोर देता है। यह असत्य और बुराइयों को समाप्त करने का दायित्व निर्धारित करता है। सकारात्मक रूप में यह व्यक्ति को समाज सेवा के दायित्व का स्मरण कराती है। जिस से ऐसी परिस्थितियों का निर्माण हो सके ताकि समाज का नैतिक व आध्यात्मिक प्रगति हो सके सभी का अधिकतम कल्याण हो सके। इस प्रकार यह अपने आप में

सभी व्यक्तियों और समाज, राष्ट्र व दुनिया के कल्याण का सर्वाधिक महत्व रखने वाला सिद्धान्त है।

3.6.2 अहिंसा जीवन का सिद्धान्त बने

गाँधीजी के लिए परम सत्य की ओर अग्रसर होने के लिए अहिंसा का मार्ग जरूरी है। गाँधीजी के अनुसार ईश्वर परम सत्य है जो सम्पूर्ण सृष्टि में निहित है, इस परम सत्य का आदर करना हिंसा को त्याग कर अहिंसक बनना है। गाँधीजी के अनुसार अहिंसा में पक्का विश्वास किए बिना सत्य के मार्ग पर नहीं चला जा सकता है। अहिंसा का अर्थ सभी प्रकार की हिंसा से दूर रहने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि से प्रेम भाव रखना और सामन्जस्य स्थापित करना भी है। संकीर्ण अर्थ में अहिंसा का मतलब है मन, वचन एवं कर्म से किसी को हानि नहीं पहुँचाना है परन्तु गाँधीजी की अहिंसा की धारणा यहाँ तक समिति नही है। अपितु वह इस बात पर बल देते हैं कि अहिंसा का अर्थ विरोधियों से प्रेम करना भी है ताकि उसे यह आभास हो कि जो प्रयास किया जा रहा है वह उसके और सभी के कल्याण के लिए भी किया जा रहा है। यह ऐसा प्रेम का प्रदर्शन है जो सभी घृणाओं के त्याग पर बल देता है और हिंसा करने की इच्छा का परित्याग करना आवश्यक मानता है। सत्य, अहिंसा, प्रेम तथा स्व-पीड़ा जैसे सिद्धान्तों के साथ जुड़ाव व्यक्ति में साहस और आत्म-निर्भरता को बढ़ावा देता है। इस प्रकार गाँधी के लिए अहिंसा साहसी व्यक्तियों का साधन है। उनके अनुसार यह असहाय लोगों का साधन कभी नहीं हो सकता है। इसमें कायरता के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि कोई अन्य विकल्प नहीं रहे और सत्य की रक्षा में कायरता और हिंसा के मध्य चयन करना जरूरी हो जाए तो ऐसी अवस्था में गाँधीजी हिंसा को वरीयता देते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गाँधीजी ने अहिंसा को व्यापक अर्थ में व्यक्त करते हुए इसे व्यक्ति के जीवन मे मात्र औपचारिकता या व्यवहारिकता का विषय नही माना, अपितु व्यक्ति को अहिंसा में दृढ़ विश्वास के साथ जीवन का सिद्धान्त मानकर अपनाने पर बल दिया।

3.6.3 आत्मिक विकास का प्रयास करना

अपने कई पूर्ववर्तियों के समान गाँधीजी का विचार था कि एक व्यक्ति का सम्पूर्ण ‘स्व’ बाह्य-स्व और आन्तरिक-स्व से मिलकर बना है। उनके मतानुसार मनुष्य की दो विरासतें होती है - जीव वैज्ञानिक और सामाजिक आध्यात्मिक। दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य जानवरों का विकसित स्वरूप होने के साथ-साथ उसके जैविक और सामाजिक अस्तित्व के अंदर दैवीय गुण विद्यमान है। चूंकि गाँधीजी का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था अत: उनका मानना था कि जैविक और सामाजिक प्रभाव मानव अस्तित्व के नैतिक आचरण के अधीन होते हैं। यद्यपि गाँधीजी वैज्ञानिकों के इस तर्क से सहमत थे कि मनुष्य जानवर का ही स्वरूप है, वे इस बात से सहमत नहीं थे कि मनुष्य मात्र विकसित जानवर है क्योंकि यह स्वरूप मनुष्य के आत्मिक गुणों एवं दैवीय स्वरूप को प्रकट नहीं करता। गाँधीजी का विचार था मनुष्य जानवरों से भिन्न है क्योंकि उसके पास आत्मिक शक्ति है जो उसे सही मार्ग एवं सामाजिक जीवन की ओर ले जाती है। गाँधीजी मानते थे कि यही आत्मिक शक्ति वह परम दैवीय शक्ति है जो सम्पूर्ण

ब्रह्माण्ड में स्थित है एवं जो सभी वस्तुओं और जीवों के अस्तित्व का कारण है। इस प्रकार गाँधी जी के अनुसार मनुष्य का दैवीय स्वरूप उसे एक विशिष्टता प्रदान करता है। गाँधीजी के अनुसार " खाने, सोने और अन्य शारीरिक क्रियाओं में मनुष्य पशु से भिन्न नहीं है नैतिक स्तरों पर पशुओं से ऊपर स्थान प्राप्त करने का अथक संघर्ष ही एसे पशुओं से मनुष्य को भिन्नता प्रदान करता है।"

ईश्वर के प्रति गाँधीजी की आस्था ने मानव जीवन के प्रति उनके विचारों का निर्धारण किया। दैवीयता और आत्मा की श्रेष्ठता पर विश्वास के कारण ही उनके मानव एवं मानव जीवन के बारे में विचारों को आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त हुआ। चूंकि गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य का देवत्व ही उसे अन्य प्राणियों से अलग करता है अत: वे इस बात पर हमेशा बल देते थे कि मनुष्य अपने देवत्व को समझने का प्रयास करें। गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य में दैवीयता उसकी आत्मा के रूप में निवास करती है। वे इस बात पर जोर देते थे कि मनुष्य अपने आत्मिक स्वरूप को पहचाने एवं उसी के अनुसार अपने कार्यों एवं विचारों का निर्धारण करें।

गाँधीजी चाहते थे कि मनुष्य स्वयं कि शक्तियों को पहचान कर आध्यात्मिक रूप से स्वतंत्रता का अनुभव करें। बाह्य स्वतंत्रता एवं आंतरिक स्वतंत्रता के अंतर को स्पष्ट करते हुए गाँधीजी का विचार था कि वास्तविक स्वतंत्रता वह स्वतंत्रता है जिसमें मनुष्य स्वयं पर शासन करे। उन्होंने इसे 'स्वराज' कहा। उनका मानना था कि इस प्रकार की स्वतन्त्रता किसी बाह्य माध्यम या परिस्थिति से प्राप्त नहीं की जा सकती। इसके लिये मनुष्य को अपने भीतर ईश्वरीय अस्तित्व को पहचानना होगा और प्रार्थना एवं नैतिक गुणों के विकास के द्वारा इस स्वतंत्रता का अनुभव करना होगा। गाँधीजी का मानना था कि जितना शुद्ध और पवित्र व्यक्ति होगा उसके द्वारा उतनी ही मात्रा में स्वतंत्रता का अनुभव किया जा सकता है। इसी संदर्भ में गाँधीजी ने एकादश महावृत अपनाने पर बल दिया। इन वृतों के अतिरिक्त प्रार्थना, उपवास और प्रायश्चित के द्वारा भी गाँधीजी ने व्यक्ति को आत्मिक विकास करने की सीख दी। ऐसा विकास गाँधीजी के अनुसार कोई भी व्यक्ति कर सकता है, भले वह बूढ़ा, नारी, गरीब, निःशक्तजन, इत्यादि क्यों न हो।

3.6.4 साध्य और साधन की पवित्रता

केवल जो पवित्र हो या सत्य के साथ संगत हो, उन्हीं उद्देश्यों को गाँधीजी ने जीवन में अपनाने योग्य माना है। उन्होंने साथ में इस बात पर भी बल दिया गया है कि जो साधन प्रयोग में लाए जा रहे हैं वह भी पवित्र हों। गाँधीजी मानते थे कि साध्य ओर साधन में घनिष्ट सम्बन्ध हैं। साधन निमार्ण अधीन साध्य है। जैसा साधन प्रयोग किया जाएगा वैसा ही साध्य निर्मित होगा। इसलिए मानवीय जीवन में पवित्र उद्देश्यों के लिए गाँधीजी ने अहिंसक और नैतिक साधनों का प्रयोग अपरिहार्य माना है।

3.6.5 कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वाह

गाँधीजी के चिन्तन में व्यक्ति का केन्द्रीय स्थान है। उनके अनुसार सम्पूर्ण राजनीतिक संस्थाओं और गतिविधियों के पीछे जो उद्देश्य है वह सभी मानव का अधिकतम कल्याण करना है। परन्तु व्यक्ति के अधिकारों और कर्तव्यों के सम्बन्ध में जब गाँधीजी विचार व्यक्त करते हैं

तो वे कर्तव्यों को महत्वपूर्ण मानते है। गाँधीजी निष्ठापूर्वक कर्तव्यों का निर्वाह करने पर बल देते थे। उनका मानना था यदि व्यक्ति अपने कर्तव्यों का निर्वाह नियमित रूप से करे तो अधिकार स्वत: ही प्राप्त हो जायेंगे। गाँधीजी निषकाम-कर्मयोगी भी थे जिन्होंने कर्म के बदले फल प्राप्ति की कामना की पर्वाह किए बिना कर्तव्यों को नियमित रूप से पूरा करने पर जोर देते थे।

3.6.6 मानव जाति कि आधारभूत एकता मे विश्वास

गाँधीजी के अनुसार ईश्वर सम्पूर्ण सृष्टि में विद्‌यमान है और निष्कर्षात्मक रूप से वह सभी मनुष्यों में भी विद्‌यमान है। परम सत्य रूपी ईश्वर सभी व्यक्तियों में अन्तरात्मा के रूप में विद्‌यमान है। इसलिए सभी व्यक्ति मूल रूप से न केवल समान हैं अपितु सभी एक दूसरे से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित भी हैं। समस्त मानव जाति की एकता और समानता में विश्वास के कारण गाँधीजी ने मनुष्यों के मध्य भाईचारा की भावना, प्रेम एवं अहिंसात्मक सम्बन्धों पर बल दिया। वे व्यक्ति को एक प्रथक अस्थित्व रखने वाले जीव नही मानते हैं अपितु समाज का एक अहम और अभिन्न अंग मानते है।

3.6.7 सभी धर्मों का समान आदर

गाँधीजी सांप्रदायिक एकता को भी बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने ‘ सर्वधर्म समभाव’ के विचार एवं नीति का समर्थन किया और सांप्रदायिक एकता व सद्भाव को अपने सार्वजनिक जीवन का सर्वाधिक प्रमुख लक्ष्य घोषित किया। धर्म उनके लिए वह सब कुछ प्रदान करने वाली आस्था है जो व्यक्ति के आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है। सभी धर्म को समान रूप में सच्चाई अथवा एक ही शाश्वत सत्य की आस्था पर आधारित मानते हुए उन्होंने भारत के विभिन्न संप्रदायों- हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी आदि के बीच सांप्रदायिक एकता एवं सद्भाव की स्थापना के लिए अथक प्रयत्न किए।

3.6.8 निम्नतम व्यक्ति के उत्थान के प्रति समर्पित

गांधीजी बेंथम जैसे विचारको द्‌वारा प्रतिपादित 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख' सिद्धान्त की जगह पर ‘ सभी का अधिकतम सुख' सिद्धान्त' स्वीकार करते थे। यह विचार उन्होनें सर्वोदय सिद्धान्त के नाम से प्रस्तुत किया। गाँधीजी ने मानव सेवा करते वक्त किसी प्रकार की दुविधा या संशय उत्पन्न होने की स्थिति से उभरने का तालिसमान दिया जो इस प्रकार है :

“ मैं तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे तो यह कसौटी आजमाओ :- जो सबसे गारीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो, जो कदम तुम उठाने का विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा? क्या वह अपने ही जीवन और भाग्य पर काबू रख लेगा? यानि क्या उससे उन कारोडों लोगों को स्वराज मिल सकेगा जिनके पेठ भूखे हैं आत्मा अतृप्त है?"

3.6.9 अन्तरात्मा की प्रधानता

ईश्वर के प्रति गाँधीजी की आस्था ने मानव जीवन के प्रति उनके विचारों को प्रभावित किया। दैवीयता और आत्मा की श्रेष्ठता पर विश्वास के कारण ही मनुष्य और मानव जीवन के बारे में उनके विचारों को आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त हुआ है। चूंकि गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य का देवत्व ही उसे अन्य प्राणियों से अलग करता है अत: वे इस बात पर बल देते थे कि मनुष्य अपने देवत्व को समझने का प्रयास करे। गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य की दिव्य प्रकृति उसकी आत्मा के रूप में निवास करती है। वे इस बात पर जोर देते थे कि मनुष्य अपने आत्मिक स्वरूप को पहचाने एवं उसी के अनुसार अपने कार्यों एवं विचारों का निर्धारण करें। यही उसका धर्म है। गाँधीजी के अनुसार यदि लौकिक स्तर पर कोई भी व्यक्ति या संस्था सत्य के विरुद्ध कोई नियम बनाती है या आचरण करने के लिए आदेशित करती है और व्यक्ति की अन्तरात्मा उसे समझाती है कि यह आदेश नैतिकता और सत्य के विरुद्ध है, तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति को अन्तरात्मा की आवाज के आधार पर ऐसे अनैतिक आदेशों की अवज्ञा करना व्यक्ति का धर्म है।

3.6.10 एकादश व्रतों कि अनुपालना

वृत का सीधा-सादा अर्थ है आत्म-नियन्त्रण या 'स्वयं द्वारा निर्धारित नियमों पालन करना'। अनेक धर्म जैसे हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि प्राय: सभी धर्मों में, ऐसे यम-नियम बताये गये हैं जिन्हें धार्मिक जीवन व्यापन का अभिन्न अंग माना गया है। स्वतंत्रता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए गाँधीजी ने बताया कि आध्यात्मिक सत्ता के साथ एकात्म्य स्थापित करना ही नैतिक स्वतंत्रता है। अर्थात् आत्म-साक्षात्कार हेतु इंद्रियों व 'वासनाओं (कामनाओं) की भौतिक मांगों पर विजय प्राप्त करना ही स्वतंत्रता है। इसलिए अपने आश्रम में उन्होंने एकादश व्रतों का कठोरता से पालन करने पर जोर दिया। गाँधीजी ने निम्नलिखित वृतों का उल्लेख किया है :-

3.6.10.1 सत्य

गाँधीजी ने अपने व्रतों में सत्य को सर्वोच्च स्थान दिया है। गाँधी का यह दृढ मत था कि सत्य का पालन किसी भी परिस्थिति में वांछनीय है। ऐसा इसलिए जरूरी है क्योंकि सत्य के अलावा बाकी सब कुछ असत्य या मिथ्या है। ऐसा मानते हुए गाँधीजी ने उतकृष्ट मानव जीवन के लिए सत्य के अलावा बाकी सब कुछ को अनुपयोगी माना है। उन्होंने सत्य की सर्वोच्च अवस्था को ईश्वर माना और मानव जीवन का लक्ष्य इस सर्वोच्च सत्य या ईश्वर की प्राप्ति माना।

3.6.10.2 अहिंसा

गाँधीजी के अनुसार सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। गाँधीजी के अनुसार सत्य या ईश्वर को स्वीकार करने वाले व्यक्ति के लिए यह अपरिहार्य बन जाता है कि वह हर उस तत्व को स्वीकार करे जिसमें सत्य या ईश्वर निहित है। उनके अनुसार यह केवल अहिंसा से ही संभव है क्योंकि हिंसा विघटनकारी और विनाशकारी शक्ति है। इसलिए गाँधीजी अहिंसा को जीवन सिद्धान्त के रूप मे स्वीकार करने पर बल देते थे। उनकी अहिंसा वीरों की

अहिंसा थी कायरों अथवा अवसरवादियों की नहीं। परन्तु उनका यह भी मानना था कि यदि कायरता और हिंसा के बीच चयन करने की मजबूरी हो तो वे हिंसा को अपनाना पसन्द करेंगे अहिंसा की गाँधीजी ने व्यापक अर्थ में व्याख्या की है। उन्होंने अहिंसा को मन, वचन और कर्म से चोट पहुँचाने तक सीमित नहीं किया अपितु अपने विरोधियों के प्रति अपार स्नेह प्रदर्शित करते हुए उसके हर सितम को सहकर उसका हृदय परिवर्तन करने के रूप में भी स्वीकारा है।

3.6.10.3 अस्तेय

अस्तेय का अर्थ है 'चोरी नही करना' अर्थात जो कुछ भी दुसरे व्यक्ति का है उसे अधिग्रहण करने का प्रयास नहीं करना। अस्तेय में निहित 'चोरी न करने' का भाव न केवल वस्तु तक सीमित है अपितु इसमें इस प्रकार का सोच रखना, किसी दुसरे का हक छीनना या ऐसा सोचना भी सम्मिलित है। गाँधीजी के लिए 'चोरी करना' दूसरों को कष्ट पहुँचाना है और यह सत्य और अहिंसा के खिलाफ है। अस्तेय व्रत की व्यापक व्याख्या करते हुए गाँधीजी ने यह भी माना कि अनावश्यक रूप से कोई वस्तु लेना या रखना भी चोरी है और इसलिए अनावश्क कोई भी वस्तु नहीं रखनी चाहिए।

3.6.10.4 अपरिग्रह

अपरिग्रह अस्तेय अवधारणा से घनिष्ट रूप से संबंधित है। इसमे ऐसे परित्याग का भाव है जो स्वयं की जरूरतों से ज्यादा रखने की सोच और प्रयास को अस्वीकार करता है। अपरिग्रह में यह भाव निहित है कि मनुष्य को उतना ही रखना चाहिए जितना कि उसके लिए आवश्यक या महत्वपूर्ण हो। गाँधीजी ने कहा कि इस व्रंत का आदर्श दैनिक उपयोग की वस्तुओं का अनुचित संग्रह रोकना है। उनके अनुसार परमात्मा कभी परिग्रह नहीं करता बल्कि उसमें विश्वास रखने वाले व्यक्ति की हर विकट परिस्थिति में मदद करता है। उनके मतानुसार परिग्रह हिंसा है और पूर्ण अहिंसा सर्वस्व, यहाँ तक कि शरीर का भी त्याग करने (मरने) के लिए तैयार रहने की बात करता है। पूर्ण अपरिग्रह भले ही अदर्श के रूप में व्यक्ति के जीवित रहते प्राप्त करना असंभव हो, परन्तु गाँधीजी के अनुसार हमें उसकी साधना में सचेष्ट रहना चाहिए। गाँधीजी ने नैतिकता विहीन, भौतिक सुखों का अधिकाधिक वृद्धि का प्रयास, स्व-केन्द्रित चिन्ता और अन्यों की उपेक्षा अथवा शोषण आधारित मानवीय गतिविधियों की कटु आलोचना की है। वे चाहते थे कि प्रत्येक नागरिक अपरिग्रह भाव धारण कर अनावश्क प्रतिस्पर्धा और प्रकृति का अंधाधुन्ध धोहन से बचे। वे सादा जीवन और उच्च विचार, परोपकार और सर्वोदय की कामना करते थे।

3.6.10.5 ब्रहमचर्य

ब्रहमचर्य का सामान्य अर्थ इन्द्रिय-निग्रह है। प्रचलित अर्थ में लोग इसे जननेन्द्रिय संयम के अर्थ में समझते हैं। गाँधीजी ने कहा कि ब्रहमचर्य का मूल अर्थ है ब्रहम की या ईश्वर या सत्य की साधना में संलग्न रहना, अर्थात तत्सम्बन्धी आचरण करना। गाँधीजी केवल जननेन्द्रिय संयम की बात नहीं, करते बल्कि सभी शारीरिक ओर मानसिक संयम को आवश्यक

मानते हैं। उनके अनुसार केवल ऐसा संयम ही मनुष्य को भौतिक संसार की चकाचौंध से बचकर जीवन के नेक और आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रतिबद्ध रहने में मदद करता है।

3.6.10.6 अवसाद

गाँधीजी की ब्रह्मचर्य सम्बन्धी सोच केवल जननेन्द्रिय संयम तक सीमित नहीं है, यह सभी शारीरिक और मानसिक संयम को भी आवश्यक मानता है। उनके अनुसार मनुष्य की इन्द्रियाँ दूसरे से घनिष्ट रूप से संबन्धित है। आहार का भी विचारों पर प्रभाव पडता है और इसलिए स्वादेन्द्रिय पर नियंत्रण जरूरी है। स्वादेन्द्रिय पर नियंत्रण ही अवसाद का व्रत है। उनका कहना था कि भोजन केवल शरीर, जीवित रखने के उद्देश्य से ही ग्रहण किया जाना चाहिए इसलिए उसे औषधि समझकर ग्रहण किया जाना चाहिए। गाँधीजी शरीर को ईश्वर अर्थात् सत्य की खोज का साधन मानते थे। इसलिये उन्होंने इस बात पर बल दिया कि आत्मा के विकास के लिए सादा भोजन आवश्यक है

3.6.10.7 निडरता

अभय से गाँधीजी का तात्पर्य सभी प्रकार के भय से मुक्ति है - मौत, धन-दौलत लुटने, अप्रतिष्ठा, शस्त्र-प्रहार, दण्ड, इत्यादि। गाँधीजी का मानना था कि सत्य की खोज और अहिंसा की पालना के लिए व्यक्ति का निडर होना जरूरी है। गाँधीजी के अनुसार निडर व्यक्ति ही नैतिकता का पालन कर सकता है। सदाचरण और सद्‌गुण के लिए अभय अपरिहार्य है। गाँधीजी शारीरिक और मानसिक बहादुरी की तुलना में नैतिक बहादुरी को प्राथमिकता देते थे। इसीलिए वे कहते थे कि साधारण मनुष्य, शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्ति, बूढ़े, नारी, इत्यादि भी सच्चे सत्याग्रही बन सकते हैं यदि वे निडरता से नैतिकता का पालन करें। गाँधीजी के अनुसार निडरतापूर्वक अहिंसा को अपना जीवन धर्म मानना ही अहिंसा के सच्चे पूजारी की पहचान है।

3.6.10.8 अस्पृष्यता उन्मूलन

गाँधीजी ने भारत में वर्षों से विद्‌यमान वर्ण व्यवस्था को स्वीकारा परन्तु उसमें कालान्तर में आए विकृतियाँ जैसे अस्पृश्यता को सामाजिक कलंक तथा न्याय की स्थापना में बाधक माना। उन्होंने इसे अनैतिक मानकर पाप की संज्ञा दी और कहा कि यह मानवता के विरूद्ध क्रूरतम अपराध है। उन्होंने कहा कि अस्पृश्यता उन्मूलन का कार्य बलपूर्वक और केवल कानून पर आश्रित रहकर नहीं किया जाना चाहिए बल्कि सत्य और अहिंसा को अपनाते हुए इस उद्देश्य की प्राप्ति करनी चाहिए। अस्पृश्यता निवारण का कार्य प्रायश्चित का काम मानकर पूर्ण निष्ठा से सम्पन्न करना चाहिए। गाँधीजी ने अस्पृश्यता पर सभी दिशाओं से आक्रमण करने वाले रचनात्मक कार्यक्रम की आवश्यकता पर भी बल दिया। इस काम के लिए गाँधीजी ने हजारों स्त्री-पुरूषों, लड़के-लड़कियों की समग्र ऊर्जा, जो कि श्रेष्ठ धार्मिक प्ररेणा से प्रेरित हो, की आवश्यकता पर बल दिया। गाँधीजी ने ऐसे नि:शक्तजन सेवकों को उनके लिए अनेक कार्य करने और अपना पूरा ध्यान केन्द्रित करने को कहा जैसे - स्वास्थ्य तथा स्वच्छता की शिक्षा व विकास, अस्वच्छ व्यवसायों में उन्नत विधियों का प्रयोग, मादक द्रव्यों के सेवन का परित्याग

करने की सीख, विद्यालयों की व्यवस्था, स्वयं कार्यकत्ताओं के मध्य छूआछूत का परित्याग, इत्यादि।

3.6.10.9 शारीरिक श्रम

गाँधीजी 'श्रम की रोटी ' सिद्धान्त का समर्थन करते हुए योग्यता अनुसार समाज के लिए योगदान देना और आवश्यकता अनुसार समाज से प्राप्त करने पर बल देते थे। उन्होंने कहा कि सभी को कुछ न कुछ रूप में शारीरिक श्रम अवश्य करना चाहिए। उनके मतानुसार प्रत्येक श्रम का समाज में समान महत्व है, इस आधार पर न ही उँच-नीच की धारणा का कोई औचित्य है और न ही किसी तरह के अन्तरनिहित द्वन्द और संघर्ष का। उनका मानना था कि व्यक्ति जो भी अपनी परिश्रम से प्राप्त करता है वह समाज से ही प्राप्त करता और इसलिए उसे समाज को किसी न किसी प्रकार से वापस लौटाने का प्रयास भी करना चाहिए। गाँधीजी के लिए शारीरिक श्रम आत्मनिर्भरता और शेषण-मुक्त समाज की प्राप्ति का महत्वपूर्ण साधन है। उनके अनुसार यह शरीर को स्वस्थ, चुस्त तथा रोग-मुक्त रखने का भी उपयुक्त साधन है।

3.6.10.10 सभी धर्मों का समान आदर

गाँधीजी ने ' सर्वधर्म समभाव' के विचार एवं नीति का समर्थन किया और साम्प्रदायिक एकता व सद्भाव को अपने सार्वजनिक जीवन का सर्वाधिक प्रमुख लक्ष्य घोषित किया। गाँधीजी की इच्छा थी कि प्रत्येक समुदाय के लोग अपने सीमित तथा संकीर्ण हित को त्याग कर राष्ट्रीय हित के बारे में सोचें एवं कार्य करें। उनके अनुसार सभी को यह स्वीकार करना चाहिए कि सभी धर्म मूल रूप से एक है। यद्यपि साधन के सम्बन्ध में वे अलग-अलग सोच रखते हों पर सभी का लक्ष्य एक है। उन्होंने व्यक्ति द्वारा धार्मिक सहिश्णुता के गुण को विकसित करते हुए सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाए रखने पर बल किया। उन्होंने यह संदेश दिया कि प्रत्येक व्यक्ति को सभी धर्म उतने ही प्रिय होने चाहिए जितना कि उसे अपने धर्म से प्रेम हो तथा वे अन्य मतों को उतना ही आदर प्रदान करे जितना कि वे अपने मत को आदर करते हों।

3.6.10.11 स्वदेशी

स्वदेशी से अभिप्राय आर्थिक स्वावलंबन और देशप्रेम था। स्वदेशी का सकारात्मक अर्थ अपने देश में निर्मित वस्तु के प्रयोग को प्राथमिकता देना और नकारात्मक रूप में इसका अर्थ है दूर स्थित इलाके या विदेश में उत्पादित वस्तुओं का बहिषकार। स्वदेशी का सकारात्मक अर्थ अपने देश की सभ्यता और संस्कृति के प्रति अनन्य प्रेम रखना भी है। अत: यह स्वाभिमान का भी प्रतीक है। स्वदेशी मे अनावश्यक मशीनीकरण और ओद्योगीकरण के आधार पर किए जाने वाले बडे पैमाने पर उत्पादन का विरोध भी निहित है। गाँधीजी के अनुसार बडे पैमाने पर उत्पादन और तकनीकी नवाचार के द्वारा आर्थिक समृद्धता का अन्धानुकरण, उनके अनुसार समाज में आर्थिक आक्रमण, शोषण और हिंसा को बढ़ावा मिलता है। इसलिए विकल्प के तौर पर गाँधीजी स्वदेशी के माध्यम से विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था और आम जनता की आवश्यकता पर आधारित उत्पादन का समर्थन करते थे।

आम जनता की आवश्यकता पर आधारित उत्पादन के लिए गाँधीजी व्यापक स्तर पर कुटिर उद्योग का विस्तार करना चाहते थे। कुटिर उद्योग को गाँधीजी ने विशाल जनसंख्या, ग्रामीन जीवन की प्राधान्यता, गरीबी, इत्यादि जैसे विशेष भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल भी माना। इन्हे गाँधीजी ने आम व्यक्ति के स्वावलम्बन और सशक्तिकरण के उद्देश्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक माना।

कुटिर उद्योग को बढ़ावा देने के लिए गाँधीजी ने स्वदेशी सिद्धान्त को अपनाने पर बल दिया। वे चाहते थे कि स्वदेशी अपनाते हुए लोग अपने आस-पास के क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं का प्रयोग करें। राष्ट्र के स्तर पर इसे अपनाने का आशय यह था कि भारतीय विदेशों में उत्पादित वस्तुओं को त्याग कर अपने देश में उत्पादित वस्तुओं का प्रयोग करें। राष्ट्रीय एकता, समृद्धि और स्वावलम्बन के लिए गाँधीजी ने इसे जरूरी बताया।

3.6.11 स्वराज और वैक्तिक उन्नयन

गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक आध्यात्मीकरण की अवधारणा का एक महत्वपूर्ण पक्ष स्वराज और वैक्तिक उन्नयन भी है। गाँधीजी चाहते थे कि मनुष्य स्वयं की शक्तियों को पहचान कर आध्यात्मिक रूप से स्वतंत्रता का अनुभव करें। गाँधीजी का विचार था कि वास्तविक स्वतंत्रता वह स्वतन्त्रता है जिसमें मनुष्य स्वयं पर शासन करे। उन्होंने इसे "स्वराज" कहा। उनका मानना था कि इस प्रकार स्वतंत्रता किसी बाह्य माध्यम या परिस्थिति से प्राप्त नहीं की जा सकती। इसके लिये मनुष्य को अपने ईश्वरीय अस्तित्व को पहचानना होगा और प्रार्थना एवं नैतिक गुणों के विकास के द्वारा इस स्वतंत्रता का अनुभव करना होगा। आत्मिक जीवन जीना और भौतिक समाज का हिस्सा बनना ये दोनों बातें परस्पर प्रतीत होती हैं। लेकिन गाँधीजी ऐसा नहीं मानते थे। उनका विचार था कि इन दोनों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है यदि मनुष्य अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखना सीख ले। इस नियंत्रण का प्रभाव उनके अनुसार यह होगा कि मनुष्य भौतिक वस्तुओं के आकर्षण में बंध कर आध्यात्मिकता के मार्ग से प्रथक नहीं होगा। इस संदर्भ में गाँधीजी ने कुछ सिद्धान्तों और मूल्यों का प्रतिपादन किया। गाँधीजी चाहते थे कि लोग अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में इन सिद्धान्तों का अनुसरण करें। उनका मत था कि सत्य, अहिंसा, अस्तेय, और ब्रह्मचर्य का पालन करने पर मनुष्य स्वयं को आध्यात्मिक रूप से उन्नत कर सकेंगे।

3.6.12 वैक्तिक हित का सामाजिक हित के साथ सामन्जस्य

गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक आध्यात्मीकरण की अवधारणा का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह व्यक्ति और समाज के हित में उचित सामंजस्य स्थापित करने पर बल देता है। वस्तुतः गाँधी ने सत्य, अहिंसा के आधार पर जिस अहिंसक विश्व की कल्पना की है, उसमें स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व, आपसी सहयोग, प्रेम, समन्वय को नींव के पत्थरों के रूप में स्थापित किया गया है। अपने समुद्रीय तरंग सिद्धान्त के माध्यम से एक तरफ तो उन्होंने व्यक्ति को समाज के लिए, समाज को राष्ट्र के लिए और राष्ट्र को विश्व के लिए तत्पर रहने का संदेश दिया और दूसरी तरफ विश्व को राष्ट्र से प्रारम्भ करके अन्तिम स्तर पर स्थित सभी

व्यक्तियों के अधिकतम विकास के प्रति समर्पित रहने की बात कही है। इस तरह गाँधीजी वैक्तिक और सामाजिक हित में सामन्जस्य स्थापित करने में सफल हुए हैं।

3.7 सारांश

गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक आध्यात्मीकरण की अवधारणा एक लोक-कल्याणकारी एवं मानवतावादी अवधारणा है और इसलिए सम्पूर्ण विश्व के लिए उसकी विशिष्ट उपादेयता है। राजनीति आज सम्पूर्ण समाज का अपरिहार्य हिस्सा है, कोई इससे अछूता नहीं रह गया है। दुर्भाग्यवश राजनीति जिन उद्देश्यों के लिए संचालित की जा रही है उससे उसे एक निन्दनीय कृत्य के रूप में देखा जा रहा है। ऐसी स्थिति में गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक आध्यात्मीकरण राजनीति को आदर्शोन्मुख बनाने का रास्ता है। दूशित राजनीतिक वातावरण में अन्तरात्मा को ठेस पहुँचाने वाले आदेशों अथवा व्यवहारों का सामना कैसे कोई व्यक्ति करे, इसके बारे में गाँधीजी सत्याग्रह दर्शन और तकनीक के माध्यम से राह प्रशस्त करते हैं। जन चेतना जाग्रत कर सशक्त विरोध से राजनीति में व्याप्त अन्याय और विभिन्न रूप मे विद्‌यमान अनैतिक आचरण को खत्म करने का मार्ग गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत मानवता को एक अनमोल देन है। आज न केवल भारत के संदर्भ में अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए यह अवधारणा बहुत व्यावहारिक है। यदि हम एक कल्याणकारी समाज की परिकल्पना करते हैं और विभिन्न समस्याओं का समाधान चाहते हैं तो ऐसा केवल संवैधानिक, नैतिक तथा अहिंसक साधनों से ही प्राप्त किया जाना सर्वोचित होगा। गाँधीजी का ध्येय था विश्व-शान्ति को स्थापित करना और औचित्य बढ़ाना। इसलिए हिंसा और अशान्ति से ग्रस्त विश्व के लिए राजनीतिक आध्यात्मीकरण एक व्यावहारिक सिद्धान्त है जिसके अनुसार यथासम्भव आचरण करना निश्चित रूप में मनुष्य के लिए श्रेयस्कर होगा।

3.8 अभ्यास प्रश्न

1. आध्यात्मिकता एवं राजनीति का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. राजनीतिक के बारे में गाँधीजी के विचारों की विवेचना कीजिए।
3. राजनीतिक आध्यात्मीकरण के बारे में गाँधीजी के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
4. आध्यात्मीकृत राजनीति के विभिन्न गाँधीवादी सिद्धान्त कौन से हैं?

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम.के. गाँधी, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. माथुर डी, बी., गाँधी एण्ड द लिबरेल बिक्वेस्ट, आलेख पब्लिशर्स, जयपुर, 1988
3. सिंह, रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986
4. धवन गोपीनाथ, दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
5. अय्यर, राघवन, द मॉरल एण्ड पॉलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973

6. पटेल एम. एस., दी एजुकेशनल फिलॉसफ़ी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन पब्लिषिंग हाउस, अहमदाबाद,1958
7. भट्टाचार्य. बुद्धदेव, एवोल्यूशन ऑफ द पोलिटिकल फिलॉसफी ऑफ गाँधी, कलकत्ता बुक हाऊस, कलकत्ता, 1969

इकाई - 4

राज्य एवं राजनीतिक शक्ति पर गाँधी के विचार

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 गाँधी का नवीन समाज विचार : सर्वोदय

4.3 गाँधी का राज्य एवं राजनीतिक शक्ति संबन्धित विचार

4.3.1 गाँधी:दार्शनिक अराजकतावादी

4.3.2 ग्राम-गणराज्य

4.3.3 मानव प्रकृति संबंधी विचार

4.3.4 अहिंसात्मक लोकतंत्र

4.3.5 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण

4.4 गाँधी की राज्यविहीन समाज की समीक्षा

4.5 सारांश

4.6 अभ्यास प्रश्न

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को गाँधी के समाज, राज्य एवं राजनीतिक शक्ति संबंधी विचारों से अवगत कराना है। गाँधी को दार्शनिक अराजकतावादी क्यों कहते है? गाँधी ने राज्य की सत्ता का विरोध क्यों किया? गाँधी का लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का प्रतिमान क्या है तथा इसमें ग्राम गणराज्य का क्या स्थान है? आदि प्रश्नों का उत्तर विद्यार्थियों इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् दे सकेंगे !

4.1 प्रस्तावना

गाँधी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में राज्य संबंधी विचार प्रस्तुत किया है और साथ ही राजनीतिक शक्ति के अपने दृष्टिकोण को भी निर्दिष्ट किया है। लेकिन उन्होंने पश्चिमी राजनीतिक विचारकों के समान राज्य के संबंध में कोई स्पष्ट सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया है बल्कि उनके द्वारा समय-समय पर किये गये भाषणों और लेखों को संकलित कर के उनके राज्य संबंधी विचारों को जाना जा सकता है। उन्होंने राज्य सत्ता का विरोध किया है इसलिए वे अराजकतावादियों के करीब चले जाते है उन्हें दार्शनिक अराजकतावादी भी कहा जाता है। गाँधी एक आध्यात्मिक और नैतिक दार्शनिक थे जो जीवन के आयामों का अलग-अलग नहीं देख करके उन्हें आपस में अपृथक रूप से अंतरसंबंधित मानते थे। उन्होंने मनुष्य के और साथ ही समाज के बेहतर विकास के लिए एक नये प्रकार के समाज की कल्पना की जिसे ' सर्वोदय

समाज' के नाम से जाना जाता है, जिसमें सभी मनुष्यों का सभी प्रकार से सभी के द्वारा कल्याण होना और करना अन्तरनिहित हैं। गाँधी जी का यह नवीन समाज सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहयोग, करूणा, अपरिग्रह, वर्ण व्यवस्था (जन्म आधारित), श्रम की रोटी व न्यासिता के मूल्यों पर आधारित है, जिसमें अमीर और गरीब तथा स्त्री और पुरूष में कोई भेद नहीं किया जाता है। इसमें हिंसा पर आधारित और मनुष्य की स्वतंत्रता के विरोधी राज्य की कोई आवश्यकता नहीं माना गया है। गाँधी जी मनुष्य को स्वभाव से अच्छा मानते थे, अहिंसा और प्रेम उसके प्रमुख सदगुण हैं जो कि बिना राज्य की बाध्यकारी सत्ता के स्वत: ही व्यक्ति के कल्याण और सुरक्षा को बढ़ावा देते है। गाँधीजी ने सीमित राज्य की अवधारणा को स्वीकार किया जिसमें लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के अनुरूप सत्ता स्थानीय स्तर के लोगों तक विकेन्द्रित किया गया है और स्थानीय स्तर के लोग उसमें सहभागिता करते हैं। गाँधीजी के अनुसार ऐसे ग्राम गणराज्य की स्थापना होगी और अंततः स्वराज का लक्ष्य पूरा होगा।

4.2 गाँधी का नवीन समाज विचार : सर्वोदय

गहरी आध्यात्मिक और धार्मिक चेतना से वशीभूत गाँधीजी ने एक नवीन समाज की कल्पना की जिसे 'सर्वोदय समाज' के नाम से जाना जाता हैं। 'सर्वोदय' का शाब्दिक अर्थ है 'सबका उदय'। यह समाज अपने से पूर्ववर्ती समाजों से भिन्न है क्योंकि इसमें सभी का, सभी और से, सभी के द्वारा, सभी प्रकार का कल्याण और विकास की संभावना को स्वीकारा गया है। यह समाज सभी प्रकार की असमानताओं और भेदभावों से मुक्त है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, करूणा, दया, न्यासिता आदि मूल्यों पर आधारित है, जिसमें सभी का पूर्ण विकास होगा।

गाँधी का सर्वोदय समाज 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा पर आधारित है। यह पूँजीवादी समाज से भिन्न हैं, क्योंकि जहां पूँजीवादी समाज में प्रतियोगिता, लाभ व पूँजी पर अधिक बल दिया जाता है वहीं सर्वोदय समाज में प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग पर, लाभ के स्थान पर सेवा पर तथा निजी सम्पति के बजाय सार्वजनिक सम्पति की धारणा पर बल दिया गया है। ऐसे समाज में पूँजीवाद के दुशपरिणाम जैसे शोषण, असमानता, बेरोजगारी आदि की सम्भावनाऐं समाप्त हो जाती है और सभी मनुष्य एक-दूसरे के सहयोग और सेवा पर तत्पर रहते हैं। गाँधीजी का सर्वोदय समाज साम्यवादी समाज से भी भिन्न है, क्योंकि गाँधीजी साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर बल देते हैं वही साम्यवादी समाज की स्थापना साध्य की पवित्रता पर बल देती है साधनों की पवित्रता पर नहीं। इसलिए जहाँ साम्यवयादी समाज की स्थापना हेतु हिंसा अनिवार्य है वहीं सर्वोदय समाज की स्थापना के अहिंसा अनिवार्य है साथ ही साम्यवादी समाज भौतिकवादी समाज है, जबकि सर्वोदय समाज नैतिक और आध्यात्मिक समाज है। सर्वोदय समाज साम्यवादी समाज की इस अच्छाई को ग्रहण करता है कि सभी मनुष्यों के मध्य समानता और सहयोग आदर्श स्थापित हो। विशेषकर के मनुष्य के भौतिक विकास के लिए आवश्यक न्यूनतम संसाधन सभी को प्राप्त हो। ऐसा प्रयास सर्वोदय समाज में सभी लोगों और वर्गों के आपसी सहयोग के द्वारा सम्भव हो सकता है।

गाँधी का सर्वोदय समाज उपयोगितावादी समाज से भी भिन्न है क्योंकि सर्वोदय समाज में जहाँ सभी मनुष्यों का सभी प्रकार से सभी के द्वारा कल्याण और विकास पर बल दिया

जाता है वहीं उपयोगितावादी समाज में अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख पर ही बल दिया जाता है। गाँधी और जॉन रॉल्स की दृष्टि में उपयोगितावादी समाज अनैतिक समाज है क्योंकि इसमें न्यूनतम व्यक्तियों के हितों को अधिकतम व्यक्तियों के हितों की कीमत पर नजरअंदाज कर किया जाता है। दूसरी और जहाँ उपयोगितावादी समाज मनुष्य के भौतिक विकास पर अधिक बल देता है वहीं सर्वोदय समाज मनुष्य के आध्यात्मिक और नैतिक उत्थान पर अधिक बल देता है, लेकिन भौतिक उत्थान को नजर अंदाज भी नहीं करता हैं क्योंकि जीवन विभिन्न पहलु पूर्ण रूप से एकीकृत और अंतर संबन्धित है। 11 फरवरी, 1939 हरिजन में उन्होंने लिखा कि -

"अहिंसा के ऊपर आधारित एक समाज में सरकार की रूप-रेखा क्या होगी, उसकी में जान-बूझकर चर्चा नहीं कर रहा हूँ......................जब समाज का निर्माण अहिंसा के नियम के अनुसार किया जाएगा तो उसका रूप आज के समाज से मूल रूप से भिन्न होगा। में पहले से ही यह नहीं कह सकता हूँ कि पूर्ण रूप से अहिंसा पर आधारित सरकार कैसी होगी।" गाँधी जी ने नवीन समाज में सरकार की रूपरेखा को अपने मानसिक, नैतिक तथा अध्यात्मिक विकास की अवस्था के अनुसार जनता द्वारा निर्धारित होने के लिए छोड दिया।

4.3 गाँधी का राज्य एवं राजनीतिक शक्ति संबन्धित विचार

गाँधी ने अहिंसा पर आधारित जिस नवीन समाज की कल्पना की थी, उसमें आदर्श के तौर पर राज्य के लिए कोई स्थान नहीं है, परन्तु उपादर्श के तौर पर राज्य होगा तो बहुत सीमित और विकेन्द्रीकृत स्वरूप में होगा, जिसमें सत्ता का मूल आधार व्यक्ति होगा। उनका यह विचार राज्य की अराजकतावादी विचार के समीप लगता है इसलिए उन्हें टॉल्सटॉय की भाँति दार्शनिक अराजकतावादी कहते है।

4.4.1 गाँधी: दार्शनिक अराजकतावादी

गाँधी ने राज्य का खण्डन किया और कहा कि राज्य संगठित हिंसा पर आधारित मानव स्वतंत्रता का विरोधी है। उनका विश्वास था कि राज्य का आधार हिंसा है क्योंकि वह अंततोगत्वा अपनी इच्छा को नागरिकों पर पुलिस, न्यायालय और सेना की शक्ति द्वारा थोपता है। गाँधीजी राज्य का विरोध इसलिए भी करते है क्योंकि इसकी बाध्यकारी शक्ति व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए घातक है। व्यक्ति को अपने आध्यात्मिक विकास के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की आवश्यकता है, परन्तु राज्य द्वारा इसे सीमित कर दी जाती है। एक बार गाँधीजी ने कहा कि, "राज्य की शक्ति में वृद्धि को में सबसे अधिक भय की दृष्टि से देखता हूँ क्योंकि यद्यपि वह शोषण को कम करके भलाई करते हुए कि खाई पड़ता है तथापि व्यक्तित्व का विनाश करके जो कि समस्त प्रगति का मूल है, वह मानव जाति को सबसे क्षति पहुँचाता है। राज्य हिंसा का संघटित और संगठित रूप है। व्यक्ति की आत्मा होती है, परन्तु राज्य एक आत्महीन यंत्र है, इसे हिंसा से कभी भी अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसके कारण ही इसका जन्म हुआ है।"

जहाँ तक की गाँधीजी राज्य का तिरस्कार व्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर करते हैं, उनकी स्थिति प्राय: वैसी ही जैसी की पूर्धों, बाकुनीन और क्रॉपॉट्किन जैसे पश्चिमी अराजकतावादियों की है। परन्तु गाँधी जी पूँजीवाद के विरोधी हैं व राज्य का विरोध इसलिए नहीं करते हैं क्योंकि उसका पूँजीवाद से घनिष्ठ संबंध है। उनके विचार राज्य के विरोधी होने के कारण मूल रूप से नैतिक है, ऐतिहासिक या आर्थिक नहीं, जैसा कि कुछ लेखकों की धारणा है। उनके लिए सबसे अधिक मूल्य व्यक्ति का हैं, जो भी चीज उसके विकास में बाधक हो उसे हटाना चाहते हैं। गाँधीजी मानते है कि राज्य में शीर्ष स्तर पर कुछ मुट्ठीभर लोगों के हाथ में शक्ति केन्द्रीत हो जाती हैं, जो बहुत खतरनाक है क्योंकि उसका दुरूपयोग हो सकता है और उससे व्यक्ति की स्वतंत्रता सीमित हो जाती है।

गाँधीजी ने अहिंसा पर आधारित जिस आदर्श समाज व्यवस्था की कल्पना की उसमें राज्य सर्वथा अनावश्यक है, व्यर्थ है। बाकुनीन, क्रॉपॉट्किन और अन्य अराजकतावादी भी राज्य जो अनावश्यक समझते है और उसका खण्डन करते हैं। किन्तु उनके द्वारा ऐसा करने के जो कारण हैं वे गाँधीजी की सोच से बहुत भिन्न हैं। इसमें गाँधीजी की नैतिक युक्ति प्रधान हैं। क्रॉपॉट्किन के अनुसार राज्य इसलिए अनावश्यक है क्योंकि आज राज्य जो कार्य करता है, उनमें से एक भी ऐसा नहीं जिसे स्वैच्छिक संगठन या समुदाय न कर सकते हों, लेकिन गाँधीजी का ऐसा तर्क नहीं है। गाँधी जी ने 2 जुलाई 1931 के यंग इण्डिया में लिखा है कि-

"मेरे लिए राजनीतिक सत्ता एक साध्य नहीं है बल्कि मनुष्य के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उन्नति करने का साधन हैं। राजनीतिक सत्ता का अर्थ है - राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय जीवन को नियमित करने की शक्ति। यदि राष्ट्रीय जीवन इतना पूर्ण हो जाता है कि वह आत्म अनुशासित बन सकें तो किसी प्रतिनिधित्व की कोई आवश्यकता नहीं है। वह एक ज्ञानमयी अराजकता की स्थिति होगी। ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक है, वह अपने ऊपर इस प्रकार शासन करता है, जिससे कि वह अपने पड़ौसी के लिए कोई बाधा न बन सके। इसलिए एक आदर्श व्यवस्था में कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होगी क्योंकि उसमें कोई राज्य नहीं होगा।" इस अवतरण से स्पष्ट हो जाता है कि वे व्यक्ति जो अपने जीवन का संचालन अहिंसा के सिद्धांत से करते है वे व्यक्तिगत स्वराज या आंतरिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेते है, उनमें इतना आत्म संयम आ जाता है कि अपने सामाजिक कर्तव्यों के पालन करने का उनका स्वत: स्वभाव बन जाता है और इसलिए उनके सामाजिक आचरण को अनुशासित करने के किसी बाह्य शक्ति की आवश्यकता नहीं होती। राजनीतिक सत्ता का प्रधान कार्य सामाजिक आचरण का विनियमन करना है इसलिए पूर्ण अहिंसा के ऊपर आधारित एक आदर्श समाज में वह अनावश्यक हो जाती है।

4.4.2 ग्राम-गणराज्य

अब हम पूर्ण अहिंसा पर आधारित संगठित एक आदर्श राज्यविहिन समाज की रूप-रेखा पर दृष्टिपात कर सकते हैं। इसमें ग्रामों में बसे हुये समूह होंगे जिनमें गौरवपूर्ण और शांतिमय जीवन का आधार स्वैच्छापूर्ण सहयोग होगा। प्रत्येक ग्राम एक गणराज्य अथवा एक ग्राम पंचायत होगा, जिसके पास अपनी प्राय: समस्त मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने, यहाँ तक

की अपनी रक्षा करने तक की पूर्ण सामर्थ्य होगी। इस अहिंसात्मक समाज में जीवन का ढाँचा पिरामिड जैसा नहीं होगा, जैसाकि आधुनिक राज्य में होता जिसमें एक छोटा-सा शिखर चौड़े आधार पर टिका होता है। गाँधीजी ने अपने समाज ढाँचे की सरंचना को सामुद्रिक वृतों के ढांचे के आधार पर समझाने का प्रयास किया, जिसका केन्द्र एक व्यक्ति होगा जो कि ग्राम के लिए अपने आपको बलिदान करने के लिए तैयार रहेगा और ग्राम, ग्राम-वृत के लिए मिटने के लिए तैयार रहेगा जैसे कि तालाब के स्थिर पानी में पत्थर फैकने से बने वृतों की श्रृंखला में एक छोटा वृत बड़े वृत में समाहित कर लेता हैं। इस प्रकार वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श की प्राप्ति हो जायेगी। इसमें सबसे बाहर की परिधि आंतरिक वृत को कुचलने के लिऐ अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगी, बल्कि अपने अंतर्गत सबको शक्ति प्रदान करेगी और उससे अपनी शक्ति प्रदान करेगी। इस सामाजिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता होगी - व्यक्तिगत स्वतंत्रता, इसलिए इसे लोकतंत्र का आदर्श रूप कहा जा सकता हैं।

ग्राम स्वायतशासी, स्वतंत्र तथा न्यूनाधिक आत्मनिर्भर होंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे एक दूसरे से अलग-अलग होंगे, अपितु वे एक प्रकार के ढीले-ढाले संघ में संगठित होंगे। संघ का आधार शक्ति न होकर नैतिकता होगी, संघ के पास कोई पुलिस या सेना नहीं होगी। एक अहिंसात्मक समाज का जो सामाजिक आर्थिक ढाँचा होगा वह आज के राज्यों से बहुत भिन्न होगा और उसमें बड़े-बड़े नगरों, पुलिस, न्यायालय, जेल, भारी उद्योग और परिवहन के लिए कोई स्थान न होगा। नवीन समाज में जीवन बहुत सरल होगा और सभ्यता ग्रामीण होगी, नगरीय या शहरी नहीं। ऐसे समाज की आर्थिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषता होगी- आर्थिक विकेन्द्रीकरण। अहिंसात्मक समाज में सरकार की कोई आवश्यकता नहीं होगी। अहिंसा के पूर्ण पालन करने से प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक स्वयं बन जाऐगा और स्वत: अपने सामाजिक कर्तव्यों का पालन करेगा और ऐसे समाज में सामाजिक अनुशासन की समस्या भी नहीं होगी।

4.4.3 मानव प्रकृति संबंधी विचार

गाँधीजी द्वारा राज्य को अनावश्यक बुराई समझ कर उसका तिरस्कार करने का तार्किक आधार है उनका यह सोच कि मनुष्य मूलत: एक आध्यात्मिक प्राणी है, जिसका वास्तविक स्वभाव स्वतंत्रता है। टी.एच.ग्रीन की भाँति गाँधीजी भी यह मानते है कि मानव आत्मा स्वतंत्रता चाहती है, परन्तु जहाँ ग्रीन स्वतंत्रता के लिए अधिकार को आवश्यक मानते हैं और अधिकारों के लिए राज्य को वहीं गाँधी जी स्वतंत्रता के लिए अधिकार या राज्य की बजाय कर्तव्य और आत्मानुशासन पर बल देते है, क्योंकि उनके अनुसार सच्ची स्वतंत्रता का अर्थ पूर्ण आत्मानुशासन तथा आत्म-संयम या आंतरिक स्वराज पर बल देते है। आंतरिक स्वराज केवल ज्ञानमय अराजकता की स्थिति में प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार राज्य के संबंध में गाँधीवादी विचार आदर्शवादियों के विरूद्ध है और मार्क्स के ज्यादा करीब है क्योंकि मार्क्स द्वारा प्रतिपादित साम्यवादी समाज में राज्य रूपी सत्ता का अभाव होगा और साथ ही उसमें शोषण और वर्गभेद समाप्त होगा, जिससे मनुष्य अपनी सच्ची स्वतंत्रता और सच्चे लोकतंत्र को प्राप्त

कर सकेंगे। गाँधीजी का सर्वोदय समाज भी मनुष्य को उसकी सच्ची स्वतंत्रता और सच्चा लोकतंत्र सुनिश्चित करने पर बल देता है।

4.4.4 अहिंसात्मक लोकतंत्र

हालाँकि गाँधीजी ने अहिंसा पर आधारित ऐसी आदर्श समाज की कल्पना की जिसमें ज्ञानमयी अराजकता के वातावरण में सभी मनुष्य नैतिकतामयी जीवन जी सकेंगे, लेकिन गाँधीजी यह जानते थे कि इस वसुंधरा पर एक समाज के समस्त घटकों से आदर्श नैतिकता को प्राप्त कर लेना यथार्थवादी नहीं लगता है। मानव विकास के वर्तमान स्तर पर पूर्ण अहिंसा का आदर्श अत्यन्त दुष्कर है यद्यपि मनुष्य मूल रूप से अच्छा होता है, तथापि उसमें बहुत-सी कमजोरियाँ होती है ओर उसकी बहुत-सी सीमायें होती हैं, जिनके कारण सरकार अस्थायी रूप से आवश्यक हो जाती है। जिस प्रकार की प्लेटों ने मानव-दुर्बलता को ध्यान में रखते हुए अपने द्वितीय आदर्श राज्य (लॉज में) में लिखित कानूनों को फिर से प्रतिष्ठित कर दिया, उसी प्रकार गाँधीजी ने भी यह स्वीकार कर लिया की अपूर्ण संसार में एक प्रधान रूप से अहिंसात्मक राज्य सम्भव हो सकता हैं किन्तु पूर्णरूपेण अहिंसात्मक समाज नहीं। जिस समाज की स्थापना करने के लिए वह उत्सुक थे और जिसे व्यावहारिक भी समझते थे, वह एक अहिंसात्मक लोकतंत्र है। ऐसे समाज में मनुष्य के सामाजिक आचरण कों विमियमित करने के लिए एक प्रकार की सरकार, एक राजनैतिक सत्ता तो अवश्य होगी किन्तु वह शासन कम से कम करेगी। गाँधीजी थोरो के इस विचार से सहमत थे कि "वह सरकार सर्वोत्तम होती है जो सबसे कम शासन करती है।" इस प्रकार उनका अहिंसात्मक लोकतंत्र एक पूर्णरूपेण अहिंसात्मक तथा राज्यविहीन समाज के अप्राप्त आदर्श तथा हिंसा से पूर्ण व्यक्ति का दमन करने वाले वर्तमान राज्य के बीच एक समझौता है। एक अहिंसात्मक़ लोकतंत्र से गाँधीजी का अभिप्राय: एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था से है, जिसमें जन इच्छा से स्वतंत्र संसद की कोई शक्ति नहीं होती हैं और जिसमें जनता में दुरूपयोग की जाने वाली शक्ति का विरोध करने की सामर्थ्य आ जाती है। उनके मतानुसार एक समाज में स्वराज या लोकतंत्र आया हुआ तभी समझा जा सकता है जबकि उनके सदस्यों में सत्ता को नियंत्रित करने की सामर्थ्य की भावना आ जाती है।

इस प्रकार गाँधीजी अपने अहिंसात्मक लोकतंत्र में सरकार की सत्ता की अनुमति देते हैं, उनका यह अहिंसात्मक लोकतंत्र राज्यविहीन समाज के आदर्श के सबसे अधिक निकट हैं, इसमें सरकार विभिन्न सामाजिक समस्याओं का अहिंसात्मक ढंग से निराकरण करेंगी। यह अपना कार्य समझा-बुझाकर करेगी, शक्ति का प्रयोग करके नहीं। यह एक सशस्त्र पुलिस रख सकती हैं, किन्तु यह आज की पुलिस से, सर्वथा भिन्न होगी। गाँधी के शब्दों में "इसके विश्वास घटक अहिंसा में विश्वास रखने वाले होंगे, वें जनता के सेवक होंगे स्वामी नहीं। जनता स्वत: उनकी प्रत्यक्ष सहायता करेगी और परस्पर सहयोग के द्वारा वे उत्तरोत्तर घटती हुई अव्यवस्था का सरलता से सामना कर सकेंगे। पुलिस के पास किसी प्रकार के शस्त्र तो होंगे, किन्तु उसका प्रयोग बहुत ही कम किया जाऐगा, यदि कभी किया भी गया तो। वास्तव में पुलिस दण्डात्मक नहीं सुधारात्मक होगी। जेल होगी लेकिन वे आज के जेलखानों से भिन्न होगी

क्योंकि वहाँ कैदी को सजा देने के लिए नहीं बल्कि उसका चरित्र सुधारने के लिए रखा जायेगा। क्योंकि अपराध का मूल कारण गाँधीजी मानसिक रोग या सामाजिक दुर्व्यवस्था को मानते थे इसलिए उन्होंने जेलखानों को सुधार-ग्रह, पाठशाला तथा अस्पताल के साथ समिश्रित करने पर बल किया। इसका उद्देश्य अपराधी को अहिंसावादी जीवन की शिक्षा देकर उसका सुधार करना था। गाँधीजी व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सामाजिक अनुशासन के सामंजस्य पर बल दिया।

4.4.5 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण

गाँधीजी ने जिस अहिंसा आधारित आदर्श समाज को राज्यविहिन बनाने पर बल किया, उसमें सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया गया है क्योंकि केन्द्रीयकृत व्यवस्था और अहिंसात्मक समाज साथ-साथ नहीं चल सकते। जो चीज आज राज्य को इतना शक्तिशाली बनाती है, वह उसका अत्यधिक केन्द्रीयकृत होना है। केन्द्रीकरण को बिना पर्याप्त शक्ति के कायम नहीं रखा जा सकता। इसके अतिरिक्त यह जीवन को अत्यंत जटिल बनाता, पहल की भावना को कुचलता है और स्वशासन के अवसरों को कम करता है। साथ ही यह व्यक्तित्व का हनन करता हैं और मनुष्य की नैतिक भावनाओं के कुंठित कर देता हैं।

गाँधीजी ने विकेन्द्रीकरण के कई और फायदे भी स्वीकार किए हैं। उन्होने कहा, " राजनीतिक तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण एक ऐसे लोकतंत्र के लिए आधार प्रस्तुत करता हैं, जिसमें व्यक्ति को स्वतन्त्रा रहते हैं तथा पहल करने का अधिकार भी होता है और देश के शासन में व्यक्तियों को भाग लेने का अधिकार रहता हैं। इससे मानव जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण का विनियमन भी स्वत: ही हो जागेगा, और इनका उत्पादन और उपभोग दोनो एक ही क्षेत्र में होंगे, इनमें धन के वितरण संबंधी उन नियमों की आवश्यकता न रहेगी, जो कि उत्पादन के एक क्षेत्र में केन्द्रित हो जाने के फलस्वरूप बनाने पड़ते हैं। विकेन्द्रीकरण से मशीनों के प्रयोग भी विनियमित हो जायेंगे। स्वार्थ के लिए मशीनों के अनियंत्रित प्रयोग के फलस्वरूप बहुत से मनुष्यों का जीवन नीरस और श्रमसाध्य बन गया हैं।"

विकेन्द्रीकरण पर राजनीतिक क्षेत्र में बहुलवादियों विशेषकर के लॉस्की, जी.एच.कॉल, हक्सले, मैंकायवर, फॉलेट आदि ने महत्वपूर्ण बल दिया। इनके अनुसार सम्प्रभुता केवल राज्य में ही अविभाजित रूप से संकेन्द्रित नहीं होती हैं बल्कि समाज के अन्य महत्वपूर्ण समाज-उपयोगी संगठनों में विभाजित होती हैं। इसी बात का समर्थन गाँधीजी ने किया और सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। उनके अनुसार ग्रामों को अपना प्रबन्ध स्वयं करने का अधिकतम अधिकार दिया जाना चाहिए, राष्ट्रीय अथवा संधीय सरकार का उन पर नियंत्रण कम से कम होना चाहिए, यदि इसको पूर्ण रूप से नैतिक ही बनाया जा सकें और उसके बाध्यकारी स्वरूप को सर्वथा नष्ट किया जा सकें तो वह एक आदर्श स्थिति होगी। राष्ट्रीय निकायों के लिए चुनाव यदि अप्रत्यक्ष बना दिया जाए तो उससे विकेन्द्रीकरण लाने में सहायता मिलेगी। एक प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित संसद में अत्यधिक शक्ति अपने हाथ में लेने की प्रवृति रहती है।

शक्ति के केन्द्रीयकरण फलस्वरूप व्यक्ति की स्वतंत्रता कम हो जाती है और जनता को उत्तरोत्तर एक शिकंजे में जकड़ किया जाता हैं। इस दुष्परिणामों को मध्यनजर रखते हुए गाँधीजी ने संविधान निर्माण के समय पंचायतों को सत्ता की मूल इकाई बनाने पर बल दिया।

परिणाम स्वरूप संविधान के भाग-चार के अनुच्छेद-40 में पंचायतों का उपबंध किया गया, जिसको सही अर्थों में संवैधानिक स्वरूप 73वें संविधान संशोधन - 1993 के तहत प्राप्त हुआ।

गाँधीजी ने राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ आर्थिक विकेन्द्रीकरण पर भी बल दिया। जिसके तहत उन्होंने बड़े पैमाने के उद्योगों के स्थान पर लघु एवं कुटीर उद्योग-धंधों की स्थापना बल दिया, जिसमें उत्पादन के साधनों और उत्पादित वस्तु का स्वामी स्वयं श्रमिक होता है। आर्थिक क्षेत्र में सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को प्रतिष्ठित करने तथा मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त करने का सर्वोतम साधन कुटीर उद्योग ही है। खादी कुटीर उद्योगों का ही प्रतीक हैं। चरखे का पुनुरूत्थान महात्मा गाँधी की सबसे बडी देन हैं।

विकेन्द्रीकरण का सबसे बडा लाभ यह होगा की इससे अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षो और तनाव का अंत हो जाऐगा। विश्व-शांति केवल सत्य और अहिंसा के आधार पर ही स्थायी हो सकती हैं, उसके लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है। अहिंसा और विकेन्द्रीकरण के ऊपर आधारित एक सरल समाज इसी प्रकार के अन्य समाजों के लिए कोई संकट उत्पन्न नहीं कर सकता और न ही उसे दूसरों से कोई भय होगा। परन्तु अब प्रश्न यह है कि क्या आज बड़े पैमाने के उद्योगों का सर्वथा अंत कर देना सम्भव होगा? व्यवहारिक गाँधीजी न केवल यही जानते थे कि एक राज्यविहीन समाज एक सुदूर दैवीय घटना है, बल्कि यह भी मानते थे कि रेलगाड़ियों, जहाजों, इस्पात के कारखानों तथा भारी रसायनिक पदार्थो को एकदम समाप्त नहीं किया जा सकता। अपने अहिंसा-प्रधान राज्य में वह वाष्प शक्ति तथा बिजली के प्रयोग की अनुमति देते है और न्यूनतम केन्द्रीकृत उद्योग को भी स्वीकारते हैं, बशर्ते कि नागरिकरण उद्योगवाद के दोशों से बचें। सिद्धांत यह है कि बड़े पैमाने के उद्योग कुटीर उद्योग का प्रतिद्वद्वी नहीं होना चाहिऐ, बल्कि उसका यहायक होनी चाहिए।

4.4 गाँधी की राज्यविहीन समाज की समीक्षा

गाँधीजी की अहिंसा आधारित राज्यविहिन आदर्श समाज व्यवस्था अराजकतावादियों के राज्य संबंधी विचारों से भिन्न हैं। राज्य के विरूद्ध गाँधी जी के विरोध का कारण उनका यह विश्वास है कि राज्य का मूल हिंसा है और इसलिए वह व्यक्ति के विश्वास का शत्रु है। जहाँ तक यथार्थ राज्य एक संगठित रूप से हिंसा के प्रतीक हैं, गाँधीजी द्वारा राज्य की निंदा सही हैं। हिंसा पर आधारित और उसी के द्वारा जीवित कोई समुदाय सत्य, अहिंसा तथा प्रेम की दशा में मनुष्य के विकास का यंत्र नहीं बन सकता, उसका अंत कर देना चाहिए। इसलिए यदि हम गाँधी के इस तर्क को स्वीकार करते है तो हमें यह बात माननी पड़ेगी कि राज्य मानव विकास का शत्रु है। अत: हमें इसका तिरस्कार कर देना चाहिए। यह विश्वास उस आदर्शवादी विचार के एकदम विरोधी हैं। जिसका प्रतिपादन अतीत में प्लेटो और अरस्तु तथा आधुनिक काल में रूसों, ग्रीन तथा बोसांके जैसे विचारकों ने किया हैं। हमें यथार्थ राज्यों तथा राज्य के आदर्श में भेद करना चाहिए। अपने मूल रूप में राज्य एक नैतिक समुदाय है, जिसका उद्देश्य नैतिक कल्याण है, उसका ध्येय मानव के विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण करना हैं न कि उनमें बाधा डालना हैं। राज्य में बन्दी वाला पिंजड़ा नहीं हैं, वह तो हमारी रक्षा

करने वाल और शरण देने वाला नीव हैं। रूसो की यह धारणा राज्य में रह कर ही मनुष्य अपनी पाशविक वृत्तियों से ऊपर उठता है और सच्चा मानव और दिव्य बनता है गाँधी जी के विचार से कई अधिक मान्य है कि राज्य का मूल हिंसा हैं। मार्क्स के विश्लेषण की भाँति यह यथार्थ राज्यों पर तो लाग होता है, किन्तु राज्य के सच्चे और मूल स्वरूप की सहीं व्याख्या नहीं करता।

परन्तु हम गाँधीजी की इस बात को स्वीकार करते हैं कि राज्य का संगठन अहिंसा के आधार पर होना चाहिए। यह विषय संगठन का इतना नहीं हैं जितना कि शिक्षा का हैं। नागरिकों को शिक्षा दी जानी चाहिए, जिसमें इस बात पर बल दिया जाऐ कि अहिंसा, प्रेम, सत्य, साधनों की शुद्धता, तथा आत्म-बलिदान जीवन के मुख्य सिद्वांत है और उन्हें सरल जीवन व्यतीत करने का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, दोश हमारी वर्तमान सभ्यता का हैं, राज्य के स्वरूप का इतना दोष नहीं हैं। गाँधीजी एक अहिंसात्मक राज्य की मांग तत्त्वतः आजके मूल्यों में संशोधन की मांग हैं, एक नवीन सभ्यता की मांग हैं, जिसमें लोभ तथा शक्ति की तृष्णा के लिए कोई स्थान नहीं होगा। ऐसा ही दृष्टिकोण रखने वालों में सुविख्यात पश्चिमी अराजकतावादी दार्शनिक लियो टॉल्स्टॉय हैं।

4.5 सारांश

सर्वोदय समाज धारणा के प्रतिपादक गाँधीजी ने राज्य की पश्चिमी धारणा खण्डन और तिरस्कार किया क्योंकि पश्चिमी राज्य की धारणा संगठित हिंसा पर आधारित हैं, जो कि मानव स्वतन्त्रता के विरूद्ध हैं। संगठित हिंसा मानव आत्मा का हनन करती हैं। इससे मानव का स्वतन्त्र विकास नहीं हो पाता है। राज्य व्यक्ति पर अपनी बाध्यकारी शक्ति के द्वारा अपनी इच्छाऐं थोपता है और शक्ति भी कुछ व्यक्तियों के हाथों में संकेन्द्रित हो जाती है, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों का नैतिक विकास व कल्याण नहीं हो पाता है। इसलिए गाँधीजी ने राज्यविहिन आदर्श समाज व्यवस्था पर बल दिया ताकि मनुष्य सच्ची आजादी और सच्चा लोकतंत्र हासिल कर सके और अपने जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

व्यावहारिक दृष्टि रखने वाले गांधीजी ने मनुष्यों में निहित कमियों को स्वीकारा पर नैतिक मूल्यों से समझौता करना अस्वीकार किया। नैतिकता युक्त समाज को सुदूर की देवीय प्रघटना मानते हुए उन्होंने थोरो के विचार का समर्थना किया कि वही सरकार सर्वोत्तम होती है, जो सबसे कम शासन करती है। इस क्रम में गाँधीजी ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा शासन संचालन करते हुए ग्राम गणराज्यों की स्थापना पर बल ताकि स्वराज के लक्ष्य को हासिल किया जा सके।

4.6 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी की नवीन समाज परिकल्पना का वर्णन कीजिए।
2. गाँधी को दार्शनिक अराजकतावादी क्यों कहा जाता है?
3. गाँधी के राज्य विचार और पाश्चात्य आदर्शवादियों के राज्य विचार की तुलना कीजिए।
4. गाँधी जी की राज्य विहीन समाज धारणा की समीक्षा कीजिए।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोपीनाथ धवन :दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. अय्यर, राधवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
3. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986
4. पटेल एम. एस., दी एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी, नवजीवन पब्लिषिंग हाउस, अहमदाबाद, 1958
5. ऑस्टरगार्ड, जेफरी, नानवायलेन्ट रेवल्यूशन इन इण्डिया, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 1985
6. शंकधीर, एम.एम., अण्डरस्टेंडिंग गाँधी टुडे, दीप एण्ड दीप पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1996
7. दाधीच, नरेश, " अस्तित्ववाद एवं गाँधी, रावत पब्लिकेशन, जयपुर 1996

इकाई -5

गाँधी चिंतन में स्वराज एवं रामराज्य

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्वराज का अर्थ

5.3 स्वराज का विकास

5.4 स्वदेशी

5.5 ग्राम स्वराज्य

5.6 गाँधी चिन्तन में रामराज्य (आदर्श राज्य)

5.7 सारांश

5.8 अभ्यास

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.0 उद्देश्य

इस इकाई से हमारा उद्देश्य है कि आपको स्वराज एवं रामराज्य से करवाना। इस इकाई का अध्ययन कर लेने पर आपको निम्नलिखित बातों का ज्ञान हो जाएगा।

- स्वराज के विचारों को समझना, जानना।
- रामराज्य या गाँधीजी के आदर्श राज्य को समझना।

5.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन में स्वराज की अवधारणा का विशिष्ट महत्व है। दासता-पीड़ित भारत की मुक्ति के लिए स्वराज राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रबुद्धता का संदेश वाहक रहा है।

5.2 स्वराज का अर्थ

'स्वराज' एक राजनीतिक शब्द मात्र नहीं, अपितु यह एक पवित्र वैदिक शब्द है। स्वराज का अभिप्राय 'स्वशासन' से ध्वनित होने वाले अर्थ से कहीं अधिक व्यापक है। यह अंग्रेजी शब्द स्वतन्त्रता की अपेक्षा व्यापक है। स्वतन्त्रता मूलत: एक नकारात्मक सिद्धान्त है जबकि 'स्वराज' भावात्मक सिद्धान्त है। वेदान्त में इसका प्रयोग उच्चत्तम आध्यात्मिक अवस्था का संकेत देने हेतु किया जाता है, जिसमें ब्रहमा से तदात्मय की अनुभूति होने के पश्चात् व्यक्ति न केवल सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है वरन् विश्व में अन्य सभी से उसकी पूर्ण संगति स्थापित हो जाती है। स्वराज का अर्थ है - सभी संघर्षों का अन्त। ' स्वराज' में स्व का अर्थ है 'राष्ट्र का आत्म' अर्थात् प्रत्येक राष्ट्र की अपनी आत्मा की पहचान होनी चाहिए।

स्वराज की अवधारणा का उद्गम और विकास उन्नीसवीं सदी के बौद्धिक पुनर्जागरण तथा आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद से उद्गामित हुआ है। जिस प्रकार इटली के पुनर्जागरण तथा जर्मनी के धर्म सुधार आन्दोलनों ने यूरोपीय राष्ट्रवाद के उदय के लिए बौद्धिक आधार पर कार्य किया था उसी प्रकार भारतीय आत्मा के जागरण की सृजनात्मक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम दर्शन, धर्म, संस्कृति के क्षेत्रों में हुई और राजनीतिक आत्म चेतना का उदय उसके अपरिहार्य परिणाम के रूप में हुआ। भारतीय चिन्तन में अतीत को पुनर्जीवित करने की प्रवृत्ति अधिक बलवती थी। कतिपय विद्वानों ने वेदों, उपनिषदों, गीता, पुराणों आदि प्राचीन धर्म शास्त्रों के आधार पर वर्तमान के अनुकूलन पर बल दिया।

पश्चिम की यांत्रिक सभ्यता के परिणामस्वरूप राजनीतिक स्वाधीनता की विलुप्ति के साथ ही भारत ऐसी जड़िम से ग्रस्त हो गया कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ' स्व' को भूलकर यूरोप के अंधानुकरण की प्रवृति उसमें प्रबल हो चली। यह प्रवृति राष्ट्र की पहचान समाप्त करने में समक्ष थी। अत: पश्चिम की यांत्रिक सभ्यता तथा भारत की धार्मिक तथा पुण्योन्मुखी संस्कृतियों के बीच संघर्ष से नये भारत का उदय हुआ। विदेशी राजनीति शक्ति के आधात के विरूद्ध बचाव की व्यवस्था के रूप में देश की प्राचीन संस्कृतियों को पुन: सचेत किया गया। चूंकि विदेशी साम्राज्य ने अत्यंत क्रूर और विनाशकारी तरीकों से कार्य किया। ऐसी स्थिति देशवासियों के सामने धार्मिक तथा आध्यात्मिक सांत्वना के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं था। जिस प्रकार मध्य युग में इस्लाम तथा हिन्दू शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष की प्रक्रिया में भक्ति मार्ग को जन्म दिया, उसी प्रकार ब्रिटेन की प्रचण्ड राजनीतिक शक्ति तथा सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप बौद्धिक जागरण की भावना के आधार पर सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन चलाये गये जिन्होंने स्वराज प्राप्ति के लिए निर्देश दिया। ये आन्दोलन व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सामाजिक समानता तथा राष्ट्रीयता के लिये जोर देते थे और उन्ही के लिए लड़ते थे।

धर्मगत रूढ़ियों, मान्यताओं और कुरितियों को समाप्त करने के लिये चलाये गये इन आन्दोलनों ने विचार एवं कार्यों के माध्यम से भारत को नवीन जीवन प्रदान किया।

स्वराज की महती आवश्यकता :- आत्म विश्वास की भावना तथा अपनी अलग पहचान का बोध। यह जनजागषति से ही सम्भव था। 19वीं शताब्दी में कुछ सुधारवादी आन्दोलन चलाये गये। इनका लक्ष्य था स्वराज प्राप्ति के लिये सामाजिक सुधारों की पृष्ठभूमि तैयार करना। सर्वप्रथम, राजा राम मोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना कर इस कार्य का सूत्रपात किया। उन्होंने समाज सुधार के कार्य को राजनीतिक जागृति से जोडा। उनकी मान्यता थी कि जाति व्यवस्था ने हिन्दू समाज को खोखला बना दिया है। धार्मिक विधियों एवं धार्मिक संस्कारों की संकीर्णता ने उसकी एकता भंग कर दी है। आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दू समाज में सुधार इस प्रकार किये जायें कि वे अपने राजनीतिक महत्व को भी समझ सके।

उन्होंने यूरोप के ज्ञात और उसकी पद्धति को अपनाकर प्रगतिशील विश्व में भारत के खोये हुए प्रभुत्व को पुन: प्राप्त करना अपना लक्ष्य बनाया। इसके अतिरिक्त भारत की आध्यात्मिक उन्नति हेतु उन्होंने वेदों तथा उपनिशदों में सिखाये गये विशुद्ध प्राचीन धर्म को पुन: अपनाने के लिए प्रेरित किया। ब्रह्म समाज की स्थापना कर व्यक्ति के नैतिक व्यवहार की पवित्रता को सर्वाधिक महत्व दिया। आत्म साधना तथा आन्तरिक जागृति पर उनका विशेष रूप

से ध्यान केन्द्रित रहा। उनकी मान्यता थी कि जब तक मनुष्य के विचारों और कार्यों की शुद्धता नहीं होंगी तब तक व्यक्ति का नैतिक परिष्कार नहीं हो सकता।

गाँधी चिन्तन में स्वराज्य - गाँधी का स्वराज एक पूर्ण विचार है जिसमें आध्यत्मिक, नैतिक आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी पहलू निहित हैं। गाँधी ने अपनी प्रसिद्ध कृति हिन्द स्वराज में स्वराज को राष्ट्र का सर्वोत्कृष्ट गन्तव्य माना है, जिसके माध्यम से वे भारतीय संस्कृति को पुन:जीवित करना चाहते है। हिन्द स्वराज में गाँधी ने पश्चिमी सभ्यता की तीखी आलोचना की और कहा कि पाश्चात्य सभ्यता को अपनाने से मानव व्यक्तित्व का विघटन एवं आधारभूत मानवीय मूल्यों का स्खलन होता है। साथ ही, आत्मभिव्यक्ति की स्थिति से भी मानव वंचित रहता है। इसलिये उनके स्वराज का लक्ष्य था - पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से मुक्ति। गाँधी के अनुसार भारत इसलिये परतन्त्र नहीं है कि उस पर अंग्रेजों का शासन है, बल्कि इसलिए परतन्त्र है कि उसने पश्चिमी सभ्यता को अपना लिया है जिसके कारण हम धर्म भ्रष्ट और ईश्वर-विमुख होते जा रहे है, मानवीय पक्ष का अवमूल्यन हूआ है। नीति के स्थान पर अनीति को अपनाया जा रहा है। अत: गाँधी से पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण का विरोध किया।

गाँधी भारत में ऐसा स्वराज स्थापित करना चाहते थे जिसमें धर्म, नैतिकता, आध्यात्मिकता का सम्मिश्रण हो तथा सत्य और अहिंसा आधार हो। गाँधी ने माना कि व्यक्ति के सद्‌गुणों पर अतिक्रमण नहीं होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति एवं व्यक्ति के सम्बन्धों में किसी प्रकार की विसंगतियां उचित नहीं। समता, सहिष्णुता एवं समन्वय के आग्रहों के फलस्वरूप स्वराज सरंचना सनातन कल्याण की पोषक बनेगी।

गाँधी का स्वराज विचार सर्वोदय आदर्श के निकट है जब तक व्यक्ति आध्यात्मिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में विकास नहीं होगा तब तक स्वराज सम्भव नहीं। गाँधी जब राष्ट्र के लिये स्वराज का विचार प्रस्तुत करते हैं तो इसका तात्पर्य यही है कि व्यक्ति को हिंसा पाप, भय, आलस्य, ईर्श्या आदि से मुक्ति मिले और पृथ्वी पर साधुता का शासन हो। इसकी व्याख्या गाँधी ने इन शब्दों मे की है : 'उच्च नैतिक शक्ति पर आधारित व्यक्ति की सम्प्रभुता। वह आत्मशासन एवं आत्म नियन्त्रण से ही सम्भव है। गाँधी व्यक्ति का नैतिक परिश्कार चाहते हैं। इसके लिए गांधी ने एकादश महाव्रत (सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अपरिग्रह, अस्तेय, अभय, शारीरिक श्रम, अस्पृश्यता निवारण, सर्वधर्म स्वभाव एवं स्वदेशी) के पालन का मार्ग सुझाया। गाँधी की मान्यता थी कि यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होगा तो हिन्दुस्तान अपने आप स्वतंत्र हो जायेगा।

गाँधी ने अपने सम्पूर्ण दर्शन में मानव को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया उनके विचारों का क्षेत्र चाहे आध्यात्मिक रहा हो या नैतिक, राजनीतिक हो या आर्थिक, राष्ट्रीय हो या अंतर्राष्ट्रीय - उनका केन्द्र बिन्दु मानव ही रहा है। वे मानव क्रिया के अतिरिक्त किसी धर्म को स्वीकार नहीं करते। इसीलिए वे अपने स्वराज विचारों में मानव सम्बन्धों को सुधारने के पक्षधर है। उनका लक्ष्य था - 'प्रत्येक आंख को पौंछना ' । यही कारण है कि गाँधी के राष्ट्रवाद मे विश्वत्व का विचार सन्निहित है। उनका राष्ट्रवाद जीवन की साधना का एक अंग है, स्वत: कोई ध्येय नहीं।

लेकिन गाँधी का मानव प्रेम, सामाजिक दायित्वों की उपेक्षा नहीं करता, बल्कि सामाजिक दायित्व में ही व्यक्ति का कल्याण देखता है। परतन्त्रता से जकड़े भारत के लिये गाँधी का यही संदेश है कि जब तक भारत के लोग कर्तव्यों की पहचान नहीं करेंगे, देश स्वतन्त्र नहीं हो सकता। धन धान्य से परिपूर्ण देश का पराभाव क्यों हुआ? इसका कारण यही है कि हम भारतवासी अपने नैतिक दायित्वों को भूलकर कर्तव्य विमुख हो गये थे। साथ ही गाँधी ने उन सभी प्रणालियों का विरोध किया जो शक्ति, वर्ग, संघर्ष, शोषण, और साम्राज्यवाद को पोषण देती है। वर्तमान शासन तत्रों की बुराइयों और अव्यवस्था को देखते हुए अंततोगत्वा उन्होंने राज्यविहीन सर्वोदय समाज को उचित विकल्प माना।

गाँधी ने स्वराज के लिये आर्थिक स्वतन्त्रता को आवश्यक माना, जिसका आधार था - 'स्वदेशी'। स्वदेशी का अर्थ है - राष्ट्र आत्म निर्भर हो, अपने देश में बने माल का उपयोग करे। स्वदेशी धर्म घृणा का धर्म नहीं, निःस्वार्थ सेवा का धर्म है, जिसकी जड़ें शुद्धत्तम अहिंसा अर्थात् प्रेम में है। उनके मत में स्वदेशी एवं स्वराज दोनों परिपूरक एवं अन्योयाश्रित है एवं स्वराज की व्यावहारिकता उसी समय एवं उसी स्थिति में प्रयोजनशील होगी जब स्वावलम्बन प्राथमिक बने एवं जीवन के विभिन्न प्रश्नों के उत्तर ढूंढने का प्रयास शाशकीय कर्तव्य न बन जाये। स्वदेशी के सिद्धान्त को समाज पर लागू करने पर सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम उन्होंने खादी को चुना। उनके अनुसार खादी-मनोवृति का अर्थ है - जीवन के आवश्यक पदार्थों के उत्पादन और वितरण का विकेन्द्रीकरण। नैतिक दृष्टि से खादी शान्तिपूर्ण और अहिंसक व्यवस्था का प्रतीक है। वह परिश्रमशीलता, शरीरश्रम, अशोषण और आत्मभिव्यक्ति का सूचक है। गाँधी ने चरखे को राष्ट्र की समृद्धि और उसकी आजादी का चिह्न माना। उनके लिये चरखा न केवल आर्थिक उत्पादन, आर्थिक उपलब्धि का साधन है, वरन् यह एक राष्ट्रीय कर्त्तव्य भी है, जिसमें स्वराज की झलक मिलती है। गाँधी के विचारों में कायिक श्रम की अनिवार्यता के संदर्भ में भी चरखे की विशेष महत्ता है।

गाँधी की मान्यता थी कि स्वस्थ समाज के अभाव में न तो राजनीतिक चेतना की कल्पना की जा सकती है और न स्वावलम्बन की। इसलिये वे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की सरंचना करना चाहते थे, जिसमें संकीर्णता, एकाधिकार, अन्याय तथा अन्धानुकरण की बुराइयां न हों। गाँधी के सम्मुख प्रमुख चुनौतियां थीं - जातिप्रथा, रूढ़िवादिता, साम्प्रदायिकता, अज्ञानता एवं अस्पृश्यता। यद्यपि गाँधी ने पूर्व राममोहन राय, दयानन्द, विवेकानन्द, रानाडे, गोखले आदि ने भी सुधारों के प्रयास किये, किन्तु गाँधी से सर्वप्रथम राष्ट्रीय स्तर पर स्वावलम्बन, न्याय, स्वतन्त्रता, समानता को स्वराज का समानार्थक माना।

अत: स्वराज-प्राप्ति के लिये गाँधी ने राष्ट्र की सावयवी एकता, अस्पृश्यता निवारण, हिन्दू मुस्लिम-एकता को बुनियादी आधार माना। गाँधी के लिये अस्पृश्यता निवारण भारत की स्वाधीनता प्राप्ति की समस्या से भी बड़ी समस्या थी। उन्होंने कहा कि अस्पृश्यता न केवल सामाजिक बुराई है, बल्कि एक राजनीतिक रूकावट भी है। 1915 में गाँधी ने 'कोचरब आश्रम' तथा बाद में 'हरिजन आश्रम' की स्थापना की तथा इस समस्या को राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जोड़ा। इसी प्रकार गाँधी की मान्यता थी कि भारत का हर पक्ष साम्प्रदायिकता से प्रभावित है।

इसका कारण गाँधी से भय, अविश्वास, प्रतिरोध एवं असम्भव आकांक्षाओं के टकराव को माना। उन्होंने माना कि हिन्दू-मुस्लिम एवं अन्य सम्प्रदायों के प्रयोजन, हित एवं संगठन में समग्र राष्ट्रीय हितवृद्धि सम्भव है। इसलिये उन्होंने कहा हिन्दू-मुस्लिम एकता ही स्वराज है।

गाँधी के स्वराज का लक्ष्य था - सर्वोदयी समाज की स्थापना। अत: गाँधी ने पश्चिमी लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं को अपनी स्वराज की योजना में स्थान नहीं दिया। उनकी मान्यता थी कि जब सभी राजनीतिक संस्थाओं पर व्यक्ति का नियंत्रण होगा, सरकार का संचालन लोक सम्पति से ही होगा, लोक सहमति का निश्चय देश के वयस्क स्त्री-पुरूष के द्वारा किया जायेगा, राजनीतिक सत्ता इस प्रकार से विकेन्द्रकीरण किया जायेगा कि प्रत्येक छोटे से छोटा व्यक्ति बिना किसी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक भेदभाव के पूर्ण स्वतन्त्रता, समानता और सामाजिक न्याय का उपयोग करेगा, राष्ट्रिय आत्म शासन का समाज के सभी वर्ग बिना किसी बाधा के उपभोग करेंगे, तभी सार्थक स्वराज आयेगा।

गाँधी ने 'स्वराज' को सर्वाधिक बुनिएयादी रूप में ' साधन' एवं ' साध्य' दोनों ही स्तरों पर प्रतिपादित किया। इसलिये गाँधी दर्शन में 'स्वराज' का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितना 'सर्वोदय' का। गाँधी का स्वराज एक 'सम्पूर्ण विचार ' है, मात्र राजनीतिक स्वाधीतना नहीं है। गाँधी ने इसके अन्तर्गत आध्यात्मिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी पहलुओं को समाविष्ट किया।

गाँधी ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'हिन्द-स्वराज' में जिस स्वराज की कल्पना की है, उससे परिलक्षित होता है कि गाँधी ने स्वराज को राष्ट्र का सर्वोत्कृष्ट गन्तव्य माना है, भारतीय दर्शन में 'मोक्ष का सिद्धान्त' इसाई जगत में ' साल्वेशन का सिद्धान्त' है ये व्यक्तियों को पाप, दुख, कष्ट से मुक्ति के सिद्धान्त है। गाँधी का स्वराज का विचार प्रस्तुत करतें है तो उनका तात्पर्य भी यही है कि व्यक्ति को हिंसा पाप, भय, आलस्य, ईर्ष्या, आदि से मुक्ति मिले, तथा ' साधुता का शासन' हो। इसीलिये गाँधी दर्शन में स्वराज की धारणा सर्वोदय के आदर्श से अभिन्न रूप में संलग्न है। यहाँ कारण है कि गाँधी ने अन्त तक अपने हिन्द स्वराज में वर्णित ' स्वराज' के विचार में कोई परिवर्तन नहीं किया, यद्यपि गाँधी के ' स्वराज' सम्बन्धी विचारों को स्थिर नहीं माना जा सकता।

गाँधी के स्वराज सम्बन्धी विचारों का प्रारम्भिक निरूपण दक्षिण अफ्रीका में हुआ, जहां उन्होंने एक सफल सत्याग्रही की भूमिका निभाई। गाँधी ने 1917 में गुजरात में राजनीतिक कॉन्फ्रेंस के अध्यक्षीय भाषण मे कहा 'उनके स्वराज के विचार आज या कल में निर्मित नहीं हुए वरन् कई वर्ष पूर्व में निर्मित हो चुके थे। दक्षिणी अफ्रीका में इंडियन ओपिनियन में 'सर्वोदय शीर्षक' में जुलाई 1908 में गाँधी ने स्वराज सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये। "भारत जिस स्वराज की कामना कर रहा है वह वास्तविक स्वराज नहीं है। वास्तविक स्वराज 'आत्म-नियंत्रण' में है। इसका उपयोग वही कर सकते हैं जो नैतिक जीवन द्वारा अनुप्राणित है।" गाँधी के स्वराज का तात्पर्य था 'आत्म-शासन एवं आत्म-नियंत्रण'। इसी के आधार पर गाँधी ने स्वराज विचार निरूपित किये एवं व्यक्ति तथा समाज का पुनर्निर्माण इसी आधार पर चाहते थे।

गाँधी के विचार निर्माण के प्रारम्भिक स्तर पर विभिन्न धर्मों, पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव परिलक्षित है। दक्षिणी अफ्रीका के राजनीतिक संघर्ष ने गाँधी को सृजनात्मक प्रयोग करने के अवसर प्रदान किए। गाँधी को दक्षिण अफ्रीका में श्वेत प्रजातिवाद, रंगभेद, अनुबंधित मजदूरों एवं व्यापारियों के प्रति शासन का दुर्व्यव्हार भारतीयों को मताधिकार से वंचित रखा जाना आदि अनेक समस्याओं का सामना करना पडा। मैरिट्जवर्ग में गाँधी को स्वयं अपमानित होना पड़ा। अत: गाँधी के अनुभवों ने एक नवीन अहिंसात्मक पद्धति की वहां सष्जना की तथा सफलता प्राप्त की।

गाँधी की स्वराज अवधारणा के निर्माण में भारतीय मितवादी एवं अमितवादी चिन्तकों एवं नेताओं के विचारों का प्रभाव भी स्पष्ट दिखता है। भारत के आगमन के पश्चात् प्रारम्भिक वर्षा में गाँधी ने विश्वसनीयता तथा अनुसरणवादी शैली का क्रियान्वयन किया। गाँधी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को प्रक्रिया एवं प्रयोजन की दृष्टि से सृजनात्मक एवं सक्रिय संस्था माना। दादाभाई नौरोजी एवं गोखले को उन्होंने भारत के स्वराज का स्तम्भ बताया। कांग्रेस के संस्थापकों एवं प्रमुख अग्रजनों के त्याग, निःस्वार्थ व्यक्तित्व एवं विश्वास को गाँधी ने सर्वोच्च योगदान माना। गाँधी ने भी संवैधानिक नीतियों एवं क्रमषः विकास के सिद्धान्त के प्रति सहिश्णुता का दृष्टिकोण अपनाने का समर्थन किया। गाँधी की मान्यता थी कि भारतीय अग्रजनों के राष्ट्रवाद की अवहेलना नही की जा सकती, क्योंकि जो राष्ट्र स्वराज की उपलब्धियों की आकांक्षा करता है, अपने पूर्वगामियों की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसी संदर्भ में गाँधी ने स्पष्ट किया कि प्रत्येक ब्रिटेन निवासी भारतीय स्वराज की मांग का विरोधी नहीं। यदि हम न्याय की अपेक्षा करते हैं तो हमें अन्यों के प्रति भी न्याय बरतना चाहिए। राष्ट्रीय प्रतिनिधि संस्था के रूप में उन्होंने भी कांग्रेस को निरन्तर सषक्त एवं प्रयोजनषील बनाने का समर्थन किया। यद्‌यपि गाँधी मितवादियों के अनुभवों के समर्थक थे, किन्तु गांधी ने माना कि किसी भी अंग्रेज का अन्धानुकरण एवं समर्थन उचित नहीं है।

भारत में साम्राज्यवादी प्रवंचनाओं से निरन्तर प्रताड़ित होने के अमितवादी विचारकों द्‌वारा शासन का प्रारम्भ हो चुका था। 1906 के कांग्रेस अधिवेषन में स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा के साधनों को स्वीकार कर लिया गया। तिलक के नेतृत्व में अमितवादियों द्‌वारा 'निष्क्रिय-प्रतिरोध' की शैली का विकास भी किया गया । अमितवादी नेताओं की ओर से उठी 'स्वराज' एवं ' स्वदेशी' की मांग और उनके प्रयासों का गाँधी पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। गाँधी ने उनका समर्थन ही नहीं किया अपितु प्रेरणावर्द्धक माना। गाँधी ने असहयोग, बहिष्कार, स्वदेशी तथा स्वराज्य विशयक राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को क्रियान्वित कर जनाधारित विरोध शैली का निरूपण किया, किन्तु गाँधी का स्वराज अमितवादियों से भिन्न था।

'जीवन की एकता' के वेदान्ती सिद्धान्त में गाँधी का विश्वास था। तिलक एवं गोखले के लिए स्वराज का तात्पर्य राजनैतिक क्षेत्र तक सीमित रहा हो लेकिन गाँधी के लिए स्वराज, व्यक्ति के अन्तःकरण एवं आत्मा की शुद्धि था। जब तक व्यक्ति स्वार्थ, लालच, घृणा एवं इसी प्रकार की अन्य बुराइयों से मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता तब तक स्वराज सम्भव नहीं। अत: गाँधी व्यक्ति को आध्यात्मिक एवं नैतिकता से परिपूरित करना चाहते थे। इसके माध्यम से ही

स्वस्थ समाज सम्भव था। उनकी मान्यता थी कि स्वस्थ समाज के अभाव में राजनीतिक चेतना एवं आर्थिक स्वावलम्बन की कल्पना नहीं की जा सकती, इसीलिये अपने स्वराज के लक्ष्य में उन्होंने संकीर्णता, एकाधिकार, अन्याय तथा अन्धानुकरण से मुक्त समाज की रचना पर बल दिया। गाँधी के अतिरिक्त राम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, एनीबेसेन्ट, रानाडे, गोखले, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस ने भी समाज के पुन: निर्माण को स्वाधीनता का समानार्थक माना। गाँधी की मौलिकता इस बात में है कि उन्होंने व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की प्रगति के संयत्र में आध्यात्मिक मूल्यों के प्रावधान को वरीयता प्रदान की। उनका सम्पूर्ण जीवन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक पक्षों में आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत रहा। साम्राज्यवाद, जातिप्रथा, रूढ़िवादिता, अज्ञानता, अन्याय से त्रस्त भारतीय समाज में उनका प्रयोजन भारत में आध्यात्मिक संदर्भ की उन्नति हेतु ईश्वर, सत्य, नैतिकता, साधन की श्रेष्ठता एवं अहिंसा को विशिष्ट स्थान प्रदान करता था। गाँधी के स्वराज दर्शन में ये विभिन्न पहलू बिखरी हुई कड़िया नहीं है बल्कि सूत्रबद्ध योजना की अनिवार्य स्थितियां है।

गाँधी ने ' स्वराज' के साथ 'आदर्श समाज' 'आदर्श राज्य' आदि शब्दों का प्रयोग भी किया है। उनके लिये ' रामराज्य' का तात्पर्य हिन्दू राज्य नहीं वरन् बुराई पर भलाई की विजय है। गाँधी के स्वराज सम्बन्धी विचारों को तब तक, भली-भांति नहीं समझा जा सकता, जब तब स्वराज के आधारभूत मूल्यों का अवलोकन नहीं कर लिया जाता।

गाँधी के अनुसार स्वराज का अर्थ है 'ईश्वर का राज्य' उनके लिये ईश्वर का अर्थ है 'सत्य'। स्वराज सत्य का ही अंग है और 'सत्य ही ईश्वर है' का तात्पर्य है प्रत्येक को अपने विचार और कर्म में सत्य से परिपूरित होना चाहिए। सत्य के अतिरिक्त कुछ भी स्थाई नहीं है। सत्य में सच्चे ज्ञान का भाव निहित है, सत्य का सिद्धान्त केवल मात्र भाषण के सत्य तक ही सीमित नहीं है, उसमें क्रिया का सत्य भी निहित है। विचार या चिन्तन का सभ्य भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।

5.3 स्वराज का विकास

'स्वराज्य' एक पवित्र शब्द है, यह वैदिक शब्द है। जिसका अर्थ आत्मशासन और आत्म संयम है। अंग्रेजी शब्द 'इंडिपेंडेंस' अक्सर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निरंकुश आजादी का अर्थ देता है, वह अर्थ गाँधीजी के स्वराज्य का नहीं है।

'स्वराज्य' से मेरा अभिप्राय है, लोक-सम्मति के अनुसार होने वाला भारतवर्ष का शासन। लोक-सम्मति का निष्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी-से-बड़ी तादाद के मत के जरिये हो, फिर वे चाहे स्त्रियां हो या पुरूष, इसी देश के हों या देश में आकर बस गये हों। वे लोग ऐसे हों, जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा लिया हो। सच्चा स्वराज्य थोडे लोगों के द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नहीं, बल्कि जब सत्ता का दुरूपयोग होता हो तब, सब लोगों के द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता प्राप्त करके हासिल किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में

स्वराज्य जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर कब्जा करने और उसका नियमन करने की क्षमता उसमें है।

गाँधी दर्शन में स्वराज्य तात्विक व प्रासंगिक दोनों अर्थ और महत्व है। गाँधी का स्वराज्य केवल संवैधानिक स्वराज्य ही नहीं था बल्कि वह एक आंगिक एकता पर आधारित समाज था। ये एक प्रकार का विशिष्ट आन्तरिक विकास और विस्तार था जो अनवरत रूप से व्यक्ति आत्मिक दृष्टि से परिशुद्ध करता था और इस परिशुद्धता की स्थिति में दुराग्रह, हिंसा, विद्वेश तथा क्षुद्रता कि सभी दीवारें अपने आप ढह जाती है। गाँधी का स्वराज एक कठिन यात्रा थी, जिसकी चढ़ाई बहुत कष्टकारी और पीड़ाजनक थी, आत्म विकास की दिशा में प्रवृत व्यक्ति को अनिवार्यत: इस पीड़ा और कष्ट को झेलना ही था।

पारम्परिक राजनीति का भाव स्वराज पर ही निर्भर रहा है, इसलिए स्वराज को ब्रिटिश शासन के विरूद्ध संयोजित किसी वैचारिक अस्त्र के रूप में देखना वस्तुत: स्वराज के आदर्श को परिसीमित करना है।

भारतीय आदर्श के रूप में स्वराज को सदैव आत्म संयम पर आधारित माना गया है। गाँधीजी का स्वराज कुछ लोगों द्वारा सत्ता प्राप्ति द्वारा नहीं माना जाएगा बल्कि उसका आधार साधारण जनता की वह क्षमता है, जिसके द्वारा सत्ता के दुरूपयोग का सफल प्रतिकार कर सकेंगे।

गाँधी का स्वराज से अभिप्राय लोक सम्मति के अनुसार होने वाला शासन है। लोक सम्मति का निश्चय वयस्क मताधिकार के द्वारा हो मताधिकार सबको प्राप्त हो वह चाहे स्त्री-पुरुष भारतीय हो या यहां आकर बसे हो और उन्होंने श्रम के द्वारा राज्य की सेवा की हो तथा अपना नाम मतदाता सूची में लिखवाया हो। स्वराज जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि उसमें प्राप्त करने व उसका उपयोग करने की क्षमता उसमें निहित है। स्वराज की निर्भरता हमारी आन्तरिक शक्ति पर बड़ी से बड़ी कठिनाइयों का सामना करने की ताकत पर। स्वराज को पाने के लिए अनवरत प्रयत्न की आवश्यकता होती है। वहीं इसे बचाने के लिए सतत जागृति भी अनिवार्य है। स्त्री-पुरूषों के विशाल समूह का राजनीतिक स्वराज्य एक-एक शख्स के अलग-अलग स्वराज्य से कोई अच्छी या भिन्न चीज नहीं है। और आत्म स्वराज्य या आत्म संयम का है।

गाँधी का स्वराज्य तभी आयोग, जब सत्य और अहिंसा के शुद्ध साधनों द्वारा ही हासिल किया जाये, उसका संचालन भी उन्हीं के द्वारा हो तथा कायम भी अहिंसा द्वारा ही हो। सच्ची लोक सत्ता या जनता का स्वराज्य कभी भी असत्य और अहिंसक साधनों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आधार विशुद्ध अहिंसा पर आधारित शासन में ही मिल सकता है।

अहिंसा पर आधारित स्वराज्य में लोगों को अपने अधिकारों का ज्ञान के साथ-साथ ही उन्हें अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। अधिकार व कर्त्तव्य एक-दूसरे के पूरक है, सच्चे अधिकार तो वे है, जो अपने कर्त्तव्यों को योग्य पालन करके प्राप्त किये गये हो। स्वराज्य में नागरिकों के अधिकार उन्हीं को प्राप्त होते है जो राज्य की सेवा करते है और इन अधिकारों के साथ पूरा न्याय करते हो। हर एक आदमी को झूठ बोलने और गुंडागिरी करने का

अधिकार है किन्तु इस अधिकार का प्रयोग उस आदमी और समाज दोनों के लिए ही हानिकारक है। लेकिन जो व्यक्ति सत्य और अहिंसा का पालन करता है, उसे प्रतिष्ठा मिलती है। और इसके फलस्वरूप उसे अधिकार मिल जाते है और जिन लोगों को अधिकार मिलते है, उसका कारण कर्तव्यों का पालन है। गाँधी के अनुसार स्वराज्य व्यक्तियों के अपने कर्तव्यों के पालन से आता है। स्वराज्य अहिंसा पर आधारित होता है इसलिए कोई किसी का शत्रु नहीं होता, सारी जनता की भलाई में सब व्यक्ति अपना अभीट योगदान देता है। स्वराज्य में सब लोग लिख-पढ़- सकते है, और उनका ज्ञान दिन-दिन बढता रहता है। उसमें कोई कंगाल नहीं होता है, और मजदूरी करने वाले को काम अवष्य मिल जाता है। गाँधी का स्वराज में लोग अपनी शान-शौकत बढाने में शारीरिक सुखों की वृद्धि में अपव्यय नहीं करते है। उसमें ऐसा नहीं होता है कि कुछ अमीर तो रत्न जडित महलों में रहे और लाखों करोड़ों ऐसी मनहूस झौंपड़ियों में, जिसमे हवा और प्रकाश का प्रवेश न हो। अहिंसक स्वराज में न्यायपूर्ण अधिकारों का किसी के द्वारा अतिक्रमण नहीं हो सकता और इसी तरह किसी को कोई अन्यायपूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते।

सुसंगठित राज्य में किसी के न्याय के अधिकार को किसी दूसरे के द्वारा अन्यायपूर्वक छीना जाना असंभव होना चाहिए और कभी ऐसा हो जाए तो अपहर्ता को अपदस्थ करने के लिए हिंसा को आश्रय लेने की जरूरत नहीं होनी चाहिए।

गाँधी के सपनों के स्वराज में जाति या धर्म के भेदों को कोई स्थान नहीं होगा न ही उसका अधिपत्य धनवानों व शिक्षितों के हाथों में होगा। वह स्वराज सबके लिए सबके कल्याण के लिए होगा। सबकी गिनती में किसान तो आते ही है, साथ ही साथ लूले-लंगड़े, अंधे और भूख से मरने वाले लाखों करोड़ों मेहनतकश, मजदूर भी अवश्य होते है। गाँधी का स्वराज्य ज्यादा संख्या वाले समाज का नहीं बल्कि सब लोगों का राज्य, न्याय का राज्य है सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जायेगी। स्वराज्य का अर्थ है विदेशी नियन्त्रण से मुक्ति और पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता है। उसके दो उद्देश्य भी है, एक छोर पर है नैतिक और सामाजिक उद्देश्य और दूसरे छोर पर इसी कक्षा का दूसरा उद्देश्य धर्म आदि सबका समावेश होता है। इसे गाँधी ने स्वराज्य का समचतुर्भुज कहा है, यदि उसका एक भी कोण विषम हुआ तो उसका रूप विकृत हो जाएगा।

स्वराज्य का उद्देश्य हमें सभ्य बनाना और हमारी सभ्यता को अधिक शुद्ध तथा मजबूत बनाना है। सभ्यता का मूल तत्व ही यह है कि हम सब कामों में फिर वे चाहें निजी हों या सार्वजनिक नीति के पालन को सर्वोच्च स्थान दें।

5.4 स्वदेशी

गाँधी के अनुसार स्वदेशी हमारे भीतर का वह भाव है जो हमें हमारे निकटस्थ परिवेश का प्रयोग करने व उसकी सेवा करने के लिए प्रतिबंधित करता है और जिससे बंधकर हम अधिक दूरस्थ परिवेश से स्वत: कटते है। धर्म के मामले में मुझे अपने आपको अनिवार्यत: अपने पैतृक धर्म तक परिसीमित करना चाहिए अर्थात् धर्म को दोषपूर्ण पाता हूँ तो मुझे उसके दोषों को परिशुद्ध करने के लिए उसकी सेवा करनी चाहिए।

राजनीति के क्षेत्र में मुझे अपनी स्वंय की देशी संस्थाओं का प्रयोग करना चाहिए और उनके सिद्ध दोषों को दूर करके उनकी सेवा करनी चाहिए तथा अर्थशास्त्र के मामले में मुझे केवल उन्हीं विषयक उद्योगों की सेवा करते हुए उनकी कमियों को दूर करते हुए उन्हें कार्य-सक्षम व पूर्ण बनाना चाहिए।

स्वदेशी को गाँधी एक सार्वभौम धर्म मानते हुए उन्होंने इसकी व्यापक व्याख्या करते हुए कहा कि 'विदेशी वस्तुओं को छोड़कर देश में बनी हुई वस्तुएं इस्तेमाल की जाए।' देशी वस्तुओं का उपयोग देश के उद्योगों की रक्षा के लिए, जिनके बिना भारत दरिद्र हो जाएगा। इसलिए मेरी राय में जो स्वदेशी धर्म प्रत्येक विदेशी वस्तु का भले ही वह कितनी ही अच्छी क्यो न हो और किसी को दरिद्र भी क्यों न बनाती हो, बहिष्कार करती है, वह संकुचित स्वदेशी धर्म है। गाँधी स्वदेशी के संकुचित व संकीर्ण अर्थ को स्वीकार नहीं करते।

उनके अनुसार स्वदेशी में स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं है अपने विशुद्ध रूप में स्वदेशी सबकी सेवा का सर्वोत्तम रूप है स्वदेशी का सच्चा समर्थक किसी के प्रति विरोधी भावनाओं से प्रेरित नहीं होगा। स्वदेशी घृणा का सिद्धान्त नहीं है। यह निःस्वार्थ सेवा का सिद्धान्त है जिसकी जड़ें विशुद्ध अहिंसा या प्रेम में है। भारत या कोई भी दूसरा देश, दूसरे के लिए अपनी शक्ति और साधनों का उपयोग तभी कर सकता है, जबकि वह अपना लालन स्वंय करने लगे अपने आवश्यकताओं की सारी वस्तुएं अपनी ही सीमा की भीतर पैदा करने लगे। ऐसा होने पर उसे विनाशक प्रतिस्पर्धा में पड़ने की जरूरत नहीं होगी। स्वदेशी सिद्धान्त ग्राम केन्द्रित अर्थ सरंचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है। स्वदेशी हमारे भीतर की वह भावना है जो हम पर अपने पास के क्षेत्र की वस्तुओं का उपयोग करने और वहां के लोगों की सेवा करने की बात कहती है। और अधिक दूर की वस्तुओं और लोगों को छोडने की प्रेरणा देती है।

उनके अनुसार स्वदेशी विदेशी के विरूद्ध नहीं है फिर भी स्वदेशी सर्वदेशी नहीं है। नहीं इसलिए है कि ऐसा होना असम्भव है। सबका करने जाये तो वह जाता नहीं और अपना भी चला जाता है। अपना करते रहने में सबका होता ही रहता है। सबका करने का यह एक उपाय है। मेरे लिए सब बराबर है यह करने का अधिकार उसी को है जिसने पडौसी के प्रति अपना धर्म पाला हो। मेरे लिए सब बराबर है, यह कहकर जो पडौसी का तिरस्कार करता है, और अपने नैतिक शौक पूरे करता है वह स्वेच्छाकारी है, वह अपने लिए ही जीता है। उनके अनुसार स्वदेशी में निःस्वार्थ सेवा का भाव परिलक्षित है। जो वस्तु करोड़ों भारतीयों के हित का संवर्धन करती हो। भले उसमें लगी पूंजी और कौशल विदेशी हो, वह स्वदेशी ही है। अलबता यह पूंजी और तकनीक भारतीय नियन्त्रण के अधीन होना चाहिए।

स्वदेशी के अन्तर्गत सभी प्रकार के विदेशी सामानों का त्याग न करके उन्हीं वस्तुओं का त्याग किया जाता है। जिनका उत्पादन अपने देश में होता है तथा जिनके उपयोग के बिना हमारे समाज के कुछ अंग अपनी आजीविका खो देते है। हम आवश्यकता की चीजों को विदेशी पूंजी और प्रतिभा का प्रयोग कर सकते है, शर्त केवल इतनी है कि उससे अपने देश के नागरिकों की प्रगति अवरूद्ध न हो और नियन्त्रण भारत के द्वारा होगा। स्वदेशी की इस आलोचना का कि यह अत्यन्त स्वार्थपूर्ण एवं संकीर्ण राष्ट्रवाद की पोशक है, का खण्डन करते हुए गाँधी कहते है कि यदि में अपने परिवार की भी यथोचित सेवा नहीं कर पाता हूं तो उस हालात में मेरा

सम्पूर्ण भारत की सेवा का विचार करना भी दूरभिमान ही कहा जाएगा। उस स्थिति में तो यही अच्छा होगा कि मैं अपना प्रयत्न परिवार की सेवा पर ही केन्द्रित करके और ऐसा समझूं कि परिवार की सेवा द्वारा ही पूरी देश की सेवा की। गाँधी किसी देश की हानि नहीं करना चाहते थे। उनके अनुसार मेरी देशभक्ति वर्जनषील भी है और ग्रहणषील भी है। वह वर्जनशील इस अर्थ में है कि मेरी सेवा अत्यन्त नम्रतापूर्वक अपना ध्यान अपनी जन्मभूमि पर ही केन्द्रित करता हूँ और ग्रहणशील इस अर्थ में है कि मेरी सेवा में प्रतिस्पर्धा विरोधी की भावना बिल्कुल नहीं है।

आर्थिक चिन्तन को स्वदेशी की अवधारणा गाँधी की एक मौलिक देन है। उनके अनुसार भारतीयों की गरीबी का कारण यह है कि आर्थिक एवं औद्योगिक जीवन में स्वदेशी का पालन नहीं किया। अगर भारत में व्यापार की कोई वस्तु विदेशी नहीं लाई गई होती, तो हमारी भूमि में दूध और की नदियां बहती होती।

5.5 ग्राम स्वराज्य

महात्मा गाँधी ने राजनीतिक क्षेत्र में सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि सबसे अच्छी सरकार वह है जो कम से कम शासन करती है। विकेन्द्रित सत्ता से उनका तात्पर्य है कि ग्राम पंचायतों को अपने गावों का प्रबन्धन और प्रशासन करने के सब अधिकार दे दिये जाएं।

गाँधीजी के अनुसार अगर भारत को सच्ची आजादी प्राप्त करना है और भारत के जरिए संसार को भी तो आगे या पीछे हमें यह समझना होगा कि लोगों को गावों में ही रहना है, शहरों में नहीं झोंपड़ियों में रहना है, महलों में नहीं। करोड़ों लोग शहरों या महलों में कभी एक-दूसरे के साथ नहीं रह सकते। उस परिस्थिति में उनके पास सिवा इसके कोई चारा नहीं होगा कि वे हिंसा और असत्य, दोनों का सहारा लें।

सत्य और अहिंसा के बिना मनुष्य जाति का विनाश हो जाएगा। सत्य और अहिंसा को हम ग्रामीण जीवन की सादगी में ही प्राप्त कर सकते है। उनके अनुसार आजादी नीचे से शुरू होनी चीहिए। हर एक गांव में लोगों की हुकूमत या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब है कि हर एक गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा। अपनी आवश्यकता खुद पूरी करनी होगी। इसका मतलब नहीं कि पड़ोसियों ताकि वह अपना सारा कारोबार चला सके। यहां तक कि सारी दुनिया के खिलाफ अपनी सुरक्षा खुद कर सके। उसे तालीम देकर इस हद तक तैयार करना होगा कि वह बाहरी हमले के मुकाबले में अपनी रक्षा करते हुए मर मिटने के लायक बन जाए। इस तरह आखिर हमारी बुनियाद व्यक्ति पर होगी। इसका मतलब नहीं कि पड़ौसियों पर या दुनिया पर भरोसा न रखा जाए या उनकी राजी-खुशी से दी हुई मदद न ली जाए। कल्पना यह है कि सब लोग आजाद होंगे। और सब एक दूसरे पर अपना असर डाल सकेंगे जिस समाज का हर एक आदमी यह जानता है कि उसे क्या करना चाहिए और इससे भी बढ़कर जिसमें यह माना जाता है कि बराबरी की मेहनत करके ही दूसरों को जो चीज नहीं मिलती वह खुद भी किसी भी किसी को नहीं लेनी चाहिए वह समाज जरूर ही बहुत ऊंचे दर्जे की सभ्यता वाला होना चाहिए। ऐसा समाज अनगिनत गावों का बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक ही शक्ल में होगा। जिन्दगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के

चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहाँ तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्य बिन्दु होगा। वह व्यक्ति हमेशा अपने गांव के खातिर मिटने को तैयार रहेगा। गांव अपने इर्दगिर्द के गावों के लिए मिटने को तैयार होगा। इस तरह आखिर सारा समाज ऐसे लोगों का बन, जो उद्धत बनकर कभी किसी पर हमला नहीं करते बल्कि हमेशा नम्र रहते है, और अपने में समुद्र की उस शान को महसूस करते हैं जिसके वे एक जरूरी अंग है।

इसलिए सबसे बाहर का घेरा या दायरा अपनी ताकत का उपयोग भीतरवालों को कुचलने में नहीं करेगा बल्कि उन सबको ताकत देगा और उनसे ताकत पाएगा। जब पंचायत राज स्थापित हो जाएगा, तब लोकमत ऐसे भी अनेक काम कर दिखाएगा जो हिंसा कभी नहीं कर सकती। जमींदारों, पूंजीपतियों और राजाओं की मौजूदा सत्ता तभी तक चल सकती है, जब तक कि सामान्य जनता को अपनी शक्ति का भान नहीं होता। अगर लोग जमींदार और पूंजीवाद की बुराई का असहयोग कर दें तो वह पोषण के अभाव में खुद ही मर जाएगी।

पंचायती राज में केवल पंचायत की आज्ञा मानी जाएगी और पंचायत अपने बनाए हुए कानून के द्वारा ही अपना कार्य करेगी। भारत चन्द शहरों में नहीं बल्कि सात लाख गावों में बसता है, इसलिए ग्रामों के विकास एंव सुधार की ओर ध्यान देना चाहिए। गाँधी के अनुसार लोकतांत्रिक स्वराज्य में किसानों के पास राजनीतिक सत्ता के साथ हर किस्म की सत्ता होनी चाहिए। किसानों को उनकी योग्य स्थिति मिलनी चाहिए और देश में उनकी आवाज ही सबसे ऊपर होनी चाहिए। अगर हम चाहते हैं और मानते हैं कि गावों को न केवल जीवित रहना चाहिए, बल्कि उन्हें बलवान और समृद्ध बनना चाहिए, तो गावों को प्रधानता देनी चाहिए।

गाँधी के अनुसार अगर हमें स्वराज्य की रचना अहिंसा पर करनी है तो गांवों को उचित स्थान देना पड़ेगा। अगर गावों का नाश होता है तो भारत का भी नाश हो जाएगा। उस हालत में भारत, भारत नहीं रहेगा। दुनिया को उसे जो संदेश देना है, उस संदेश को वह खो देगा।

गाँधी ने ग्राम स्वराज्य की कल्पना यह भी कि ऐसा पूर्ण स्वराज्य होगा, जो अपनी अहम् जरूरतो के लिए अपने पड़ौसी पर ही निर्भर नहीं करेगा। और फिर भी बहुत सी दूसरी जरूरतों के लिए जिनमें दूसरो का अनिवार्य सहयोग होगा, वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। इसके अलावा उसके पास सुरक्षित जमीन होनी चाहिए, जिसमें ढोर चर सकें और गांव के बडों व बच्चों के लिए मनबहलाव के साधन और खेल-कूद के मैदान वगैरह का आयोजन हो सके। इसके बाद भी जमीन बची हो तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोएगा जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके, लेकिन वह गांजा, तम्बाकू एवं अफीम वगैरह की खेती से बेचेगा।

हर एक गांव में गांव की अपनी एक नाट्यशाला, पाठशाला और सभा भवन होगा। पानी के लिए उसका अपना इन्तजाम होगा। वाटर वर्क्स होंगे जिससे गांव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। कुओं तथा तालाबों पर गांव का पूरा नियन्त्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगी। जहां तक हो

सकेगा, गांव के सारे काम सहयोग के आधार पर किया जाएगा। जात-पांत और अस्पृश्यता जैसे भेद इस ग्राम-समाज में नहीं होंगे।

सत्याग्रह और असहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज की शासन-बल होगी। गांव की रक्षा के लिए ग्राम सैनिकों का ही एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजिमी तौर पर बारी-बारी गांव की चौकी पर पहरे का काम करना होगा।

गाँधी के अनुसार गांव का शासन चलाने के लिए हर गांव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जाएगी। इसके लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यता वाले गांव के बालिग स्त्री-पुरूषों को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें। इन पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे। चूंकि इस पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे। चूंकि इस ग्राम स्वराज्य में आज के प्रचलित अपने एक साल के कार्यकाल में ही स्वंय ही विधानसभा, न्यायसभा और कार्यकारिणी सभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी। इस ग्राम शासन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधार रखने वाला सम्पूर्ण प्रजातंत्र काम करेगा। व्यक्ति ही अपनी इस सरकार का निर्माता होगा। यथासम्भव प्रत्येक कार्य सहकारिता के आधार पर किया जाएगा।

महात्मा गाँधी की यह हार्दिक इच्छा थी कि गांव स्वतंत्र भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास का केंद्र बिन्दु बने। वे अपने अनुयायियों और भारत के भावी नेताओं तथा योजनाकारों को निरन्तर याद दिलाते रहते थे कि भारत का वास्तविक निवास स्थल गावों में है और यही भी कि अगर गांव नष्ट हो गया तो भारत भी नष्ट हो जाएगा। वे चाहते थे कि भारत प्रमुख रूप से ग्राम-आधारित समाज का आदर्श रूप है, “ग्राम स्वराज्य” है।

अत: यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि स्वतंत्र भारत के पचास वर्ष पूर्ण होने पर हम यह परखें कि गाँधीजी का ग्राम स्वराज्य का सपना या सबसे निचले स्तर पर लोकतंत्रीकरण तथा लोगों को अधिकार सम्पन्न बनाने का कार्य किस हद तक पूरा हुआ है, विशेष रूप से ग्रामीण भारत में।

गाँधीजी के पंचायती राज या ग्राम-स्वराज्य के आदर्श को पूरा करने का प्रयास करते हुए संविधान निर्माताओं ने संविधान के अनुच्छेद 40 शामिल किया, जिसमें कहा गया था कि ‘राज्य ग्राम पंचायतों को गठित करने के उपाय करेगा और ये पंचायतें आत्मनिर्भर सरकार के रूप में कार्य कर सकें इसके लिए उन्हें अधिकार सम्पन्न बनाया जाएगा।' वास्तविकता यह है कि संविधान सभाओं में यह बात स्पष्ट की गई थी कि संविधान का यह अनुच्छेद संभवत: पंचायतों के वास्तविक परिसंघों का निर्माण करेगा। जैसा कि इस अनुच्छेद में व्यवस्था है और उससे स्वशासी परिसंघों की व्यवस्था विकसित होगी जो एक ऐसी नींव साबित होगी जिस पर 'गाँधीजी के सपनों का भावी संविधान निर्मित हो सकेगा।'

इसी पृष्ठभूमि में 1957-58 में बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशों के अनुरूप तीन चरणों वाले पंचायतीराज संस्थाओं का गठन किया गया। इन संस्थाओं का उद्देश्य ग्रामीण विकास तथा उनके पुनर्निमाण कार्य में लोगों की पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करना था। रोचक बात यह है कि मेहता समिति ने यह भी सिफारिश की कि ग्रामीण विकास योजनाओं को लागू करने

की जिम्मेदारी उन्हीं को सौंप दी जाए। केन्द्र सरकार द्वारा इस पहल के बाद अनेक राज्यों में तुरंत पंचायत कानून लागू किए। इस प्रकार, जैसा कि भारत में पंचायती राज संस्थानों की एक सर्वेक्षण रिपोर्ट से पता चलता है, 'भारत के विकास के प्रशासनिक कार्यों में पंचायतीराज संस्थान लगभग एक दशक तक (साठ के दशक के अंत तक) खूब फले-फूले तथा सुदृढ़ हुए। लेकिन बाद में सत्तार के दशक के पूर्वाद्ध में ढांचागत कमजोरियों और प्रशासनिक बाधाओं के कारण उनका पतन आरम्भ हो गया और दशक के अंत तक ग्रामीण स्तर पर कार्य करने वाली संस्थांए ज्यादातर निष्क्रिय हो गई। उन्हें पुन: सक्रिय बनाने के प्रयासों को कोई खास सफलता नहीं मिली।'

1992 में जब सरकार ने इस प्रश्न पर विचार किया और संसद में 73वा संविधान संशोधन विधेयक पेश किया, तब पंचायतीराज संस्थाओं के स्वरूप को कारगर ढंग से लागू करने की दिशा में नई पहल हुई। यह गौरतलब है कि ग्रामीण विकास राज्यमंत्री ने (1 दिसम्बर 1992 को) इस विधेयक को संसद में पेश करते हुए कहा कि इस संशोधन की पृष्ठभूमि में जो दार्शनिक धारणा निहित है, वह है 'ग्राम स्वराज की गाँधीवादी धारणा' और यह 'लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण' की उस दिशा में एक गंभीर प्रयास है, जो गाँधीजी के राजनीतिक दर्शन की मूल अवधारणा थी। नये कार्यक्रम का उद्घाटन भी 2अक्टूबर (गाँधी जयन्ति के अवसर पर) किया गया संयोग से गाँधीजी की 125वीं जयन्ति के समारोहों के साथ बात ध्यान देने योग्य है कि पंचायती राज की नयी (वर्तमान) प्रणाली पिछली प्रयोगात्मक प्रणाली से गुणात्मक रूप से काफी भिन्न थी।

73वें संविधान संशोधन विधेयक में नई अनुसूची- ग्यारहवीं अनुसूची शामिल की गई जिसमें पंचायतों द्वारा किये जाने वाले 29 कार्यों को शामिल किया गया है और उसमें कृषि, लघु उद्योग, माध्यमिक शिक्षा, समाज कल्याण और परिवार कल्याण कार्य, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा अस्पताल विषय भी है। पंचायतों के चुनावों को प्रामाणिकता देने के लिए एक राज्य निर्वाचन आयोग व आयुक्त की व्यवस्था की गई इसी प्रकार वित्तीय स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिए राज्य वित्त आयोग की व्यवस्था की गई है और अन्त में, जो कम महत्वपूर्ण नहीं है, चुने जाने पदों में से 33 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पंचायती राज संस्थांए अब केवल सहायक अथवा अस्थाई निकाय नहीं रहे, बल्कि उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल कर लिया गया है। अब वे गाँधीजी की ग्राम स्वराज्य की कल्पना का मूर्तरूप प्रतीत होते है, जिसमें ग्राम सभाओं को राष्ट्रीय अधिकारों या प्राधिकरण का प्रमुख प्रतिनिधि बताया गया है। यद्यपि यह ग्राम लोकतांत्रिकरण की दिशा में मात्र एक कदम, हालांकि एक बड़ा कदम है तथापि यह गाँधीजी की उस प्रिय उक्ति के अनुकूल है कि एक समय में एक ही कदम पर्याप्त है। गाँधीजी को जो आदर्श अथवा राजनीतिक लक्ष्य सर्वप्रिय था, वह था गावों को अधिकारयुक्त तथा लोकतांत्रिक बनाना और भारत आज वर्तमान सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं आर्थिक दबावों की परिस्थितियों के बावजूद इसी व्यापक उद्देश्य की ओर अग्रसर है।

गाँधीजी के अनुसार प्रत्येक गांव में एक पंचायत इकाई बनेगी, पास-पास की ऐसी हर दो पंचायतों की, उन्हीं में से चुने हुए एक नेता की रहनुमाई में एक काम करने वाला दल बनेगा।

जब ऐसी 100 पंचायतें बन जाए, तब पहले दर्जे के पचास नेता (सौ) अपने में से दूसरे दरजे का एक नेता चुने और इस तरह पहले दरजे का नेता दूसरे दरजे के नेता के मातहत काम करे। दो सौ पंचायतों को ऐसे जोड़ कायम करना तब तक जारी रखा जाए, जब तक कि वे पूरे हिन्दुस्तान को न ढक लें। और बाद में कायम की गई पंचायतों का हर एक समूह पहले की तरह दूसरे दर्जे का नेता चुनता जाए। दूसरे दरजे के नेता सारे हिन्दुस्तान के लिए सम्मिलित रीति से काम करें और अपने प्रदेशों में अलग-अलग काम करे। जब जरूरत महसूस हो, तब दूसरे दरजे के नेता अपने में से एक मुखिया चुनें, और वह मुखिया चुनने चाहें तब तक समूहों को व्यवस्थित करके उनके रहनुमाई करें।

5.6 गाँधी चिन्तन में रामराज्य (आदर्श राज्य)

महात्मा गाँधी ने एक ऐसे आदर्श-राज्य की कल्पना की है जिसमें व्यक्ति को सभी प्रकार के स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती है। मनुष्य को रामराज्य में ही सच्ची आजादी मिल सकती है। महात्मा गाँधी का रामराज्य ऐतिहासिक भगवान राम के राज्य की कल्पना नहीं हैं बल्कि अहिंसक राज्य का प्रतिकात्मक नाम है। 'राम' के नाम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महात्मा गाँधी कहते है, "........... करोड़ो के हृदय का अनुसन्धान करने और उसमें एक्य भाव पैदा करने के लिए एक साथ रामनाथ की धुन जैसा दूसरा कोई सुन्दर और सबल साधन नहीं है।" महात्मा गाँधी का 'राम' दशरथ पुत्र 'राम' नहीं हैं बल्कि 'राम' उनके सत्य-अहिंसा का प्रतीक मात्र है। 'राम' शब्द के उपयोग के सन्दर्भ में गाँधी कहते है कि 'अहिंसा धर्म का पालन किये बिना, मैं सत्य की खोज नहीं कर सकता और सत्य के बिना धर्म नहीं। सत्य ही राम है, नारायण है, ईश्वर है, खुदा है, अल्लाह है, गॉड है।' अत: गाँधी का रामराज्य सत्य-अहिंसा की कल्पना मात्र है।

गाँधीजी को सरकार के स्वरूप के बारे में चिन्तन करने का अधिक समय नहीं मिला, फिर भी उन्होंने संसदीय शासन पद्धति को स्वीकार किया। महात्मा गाँधी अपने सच्चे प्रजातन्त्र को 'रामराज्य' में ही आवश्यक रूप से बदलने पर जोर देते थे। महात्मा गाँधी का कहना था कि रामराज्य की मेरी कल्पना में ब्रिटिश फौजी हुकूमत की जगह राष्ट्रीय फौजी हुकूमत को बैठा देने की कोई गुन्जाइश नहीं। जिस मुल्क में फौजी हुकूमत होती है, फिर वह फौज मुल्क की अपनी ही क्यों न हो, वह मुल्क नैतिक दृष्टि से कभी आजाद नहीं हो सकता और इसलिए उसके सबसे कमजोर कहे जाने वाले बाशिन्दे कभी पूरी तरह से नैतिक उन्नति नहीं कर सकते।' गाँधी को राज्य के हिंसक-स्वरूप से सख्त घृणा है। इसलिए अहिंसक राज्य के लिए 'राम' शब्द का प्रयोग करके यह बतलाने की कोशिश करते हैं कि पश्चिमी अराजकतावादियों के समान राज्य के विरोधी तो है लेकिन व्यावहारिक आधार पर सम्भव नहीं है। गाँधी को संसदीय व्यवस्था का प्रजातंत्र प्रिय है लेकिन पश्चिमी-संसदीय प्रजातंत्र को भारत के लिए उपयुक्त नहीं मानते।

महात्मा गाँधी रामराज्य में प्रजातन्त्र की पृष्ठभूमि को ही सुदृढ करना चाहते है। यही कारण है कि उन्होंने हर स्तर पर और प्रत्येक क्षेत्र में सत्ता तथा शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया। गाँधी का अहिंसात्मक राज्य, अराजकतावादी समाज नहीं हो सकता, क्योंकि 'आदर्श विचार के रूप में एक अहिंसात्मक राज्य में पुलिस और सेना की कोई आवश्यकता नहीं होगी।... पूर्ण अहिंसा इस संसार में प्राप्त होनी असंभव है इसलिए...... पुलिस और सेना बनी रहेगी। गाँधी ने ग्राम पंचायतों को निर्णायक शक्ति देकर आदर्श ग्राम स्वराज्य का स्वरूप प्रस्तुत किया। पश्चिम का अराजकतावादी-दर्शन अपने व्यवहारिक स्वरूप में तभी आ सकता है जबकि गाँधी के रामराज्य के आदर्श का समन्वय हो सके।'

गाँधी का रामराज्य पुरातनवादी विचारों का प्रतीक न होकर समाजवादी मूल्यों के वाहक के रूप में सामने आता है। महात्मा गाँधी कहते है कि " समाजवाद की जड़ में आर्थिक समानता है। थोड़ों को करोड और बाकी लोगों को सूखी रोटी भी नहीं मिलती, ऐसी असमानता मे ' रामराज्य' का दर्शन करने की आशा कभी न रखी जाय। इसलिए मैने दक्षिण अफ्रीका में ही समाजवाद को स्वीकार किया था। मेरा समाजवादियों और दूसरों से यही विरोध रहा है कि सब सुधारों के लिए सत्य और अहिंसा ही सबसे ऊंचे साधन है। " गाँधी का रामराज्य उनके समाजवाद विरोधी तेवर का प्रतीक नहीं है बल्कि समाजवादी-मूल्यों तक पंहुचने का भारतीय परिवेश में आदर्श का सूचक है। " राम यानि पंच यानि परमेश्वर"। पंच यानि लोकमत। जब लोकमत बनावटी नहीं होता, तब वह शुद्ध होता है। लोकमत पर रचा हुआ राज्य किसी भी जगह के लिए ' रामराज्य' है।

गाँधीजी के आदर्श राज्य की विशेषताएं :-

1. सत्ता का विकेन्द्रीकरण :- गाँधीजी के आदर्श राज्य का एक प्रमुख लक्षण विकेन्द्रीकृत सत्ता है। गाँधीजी सम्पूर्ण भारत में प्राचीन ढंग के स्वतंत्र और स्वावलम्बी ग्राम समाजों की स्थापना कराना चाहते थे, जिसका आधार ग्राम पंचायतें होगी। विकेन्द्रीकरण को और अधिक सफल बनाने के लिए गाँधीजी का सुझाव था कि ग्राम पंचायतों का निर्वाचन तो प्रत्यक्ष रूप से हो, लेकिन ग्राम के ऊपर जो इकाईयां हो जैसे प्रादेशिक सरकार, राष्ट्रीय सरकार आदि के विधान मण्डलों का चुनाव अप्रत्यक्ष प्रणाली से हो जिससे सत्ता का समस्त केन्द्र ग्राम पंचायतें ही बनी रहें। इस प्रकार की व्यवस्था से ग्रामों में स्वशासन और स्वावलम्बन की भावना उत्पन्न होंगी और वे वास्तविक अर्थ में स्वतंत्र होंगे।
2. मौलिक अधिकारों पर आधारित - गाँधीजी का राज्य स्वतंत्रता, समानता तथा अन्य नागरिक अधिकारों पर आधारित होगा। इस समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार व्यक्त करने और समुदायों के निर्माण की स्वतन्त्रता होगी। इस समाज के अन्तर्गत जाति, धर्म, भाषा, वर्ण और लिंग आदि भेदभाव के बिना सभी व्यक्तियों को समान सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त होंगे।
3. सम्पति :- गाँधीजी के आदर्श राज्य में आर्थिक क्षेत्र के अन्तर्गत भी विकेन्द्रीकरण को अपनाने का सुझाव दिया गया है। विशाल तथा केन्द्रीकृत उद्योग लगभग समाप्त कर

दिए जाएंगे और उनके स्थान पर कुटीर उद्योग-धन्धे चलाए जाएंगे। उन मशीनों का मानवीय श्रम के शोषण का साधन नहीं बनाया जाएगा। हर गांव अपनी आवश्यकता की वस्तुंए स्वंय उत्पन्न करेगा और प्रत्येक व्यक्ति अपने उत्पादन के साधनों स्वंय स्वामी होगा। इस प्रकार आर्थिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा का अन्त हो जाएगा।

4. लोकतांत्रिक - गाँधीजी के आदर्श समाज में शासन का रूप पूर्णतया लोकतांत्रिक होगा। जनता को न केवल मत देने का अधिकार प्राप्त होगा, वरन् जनता सक्रिय रूप से शासन के संचालन में भी भाग लेगी। शासन सत्ता सीमित होगी और सभी सम्भव रूपों में जनता के प्रति उतरदायी होगी।
5. निजी सम्पति - इस आदर्श राज्य में निजी सम्पति की प्रथा का अस्तित्व होगा, किन्तु सम्पति के स्वामी अपनी सम्पति का प्रयोग निजी स्वार्थ के लिए नहीं, वरन् समस्त समाज के कल्याण के लिए करेंगे। वे यह समझकर कार्य करेंगे कि उनके पास जो सम्पति है उसका वास्तविक स्वामी समाज ही है और समाज के द्वारा उन्हें इस सम्पति का सरंक्षक या ट्रस्टी नियुक्त किया गया! है।
6. शारीरिक श्रम - इस आदर्श समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने भरण-पोषण हेतु श्रम करना अनिवार्य होगा। कोई भी मनुष्य अपने निर्वाह के लिए दूसरों की कमाई हड़पने का प्रयत्न नहीं करेगा और बौद्धिक श्रम करने वाले व्यक्तियों के लिए कुछ-न-कुछ शारीरिक श्रम करना अनिवार्य होगा। सभी व्यक्तियों के द्वारा कुछ-न-कुछ शारीरिक श्रम किए जाने पर समाज में वास्तविक समानता स्थापित हो सकेगी।
7. वसुधैव कुदुम्बकम् - गाँधीजी वसुधैव कुदुम्बकम् की धारणा में विश्वास करते थे, इस कारण उनका आदर्श राज्य अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अन्य राज्यों के साथ मैत्री, सद्भावना और सहयोग के आधार पर सम्बन्ध स्थापित करेगा।

5.7 सारांश

गाँधीजी का स्वराज दर्शन उनके द्वारा राजनीतिक चिन्तन को प्रस्तुत एक अन्मोल देन है। आज सम्पूर्ण विश्व में प्रजातांत्रिक व्यवस्था को सर्वाधिक रूप में स्वीकार्य व्यवस्था के रूप में देखा जाता है और स्वतंत्रता, समानता और न्याय जैसे राजनीतिक मूल्यों को ऐसी व्यवस्था का अनिवार्य शर्त माना जाता है। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान करने वाले महानुभावों ने अंग्रेजों से अलग-अलग तरीकों से इन मूल्यों को भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में प्रतिस्थापित करने के लिए संघर्ष किया। इनमें महात्मा गाँधी का नाम अग्रणी है। उनका स्वराज एवं रामराज्य एवं ग्रामराज्य संबंधी विचार व्यापक दृष्टिकोण का सूचक है जो न केवल संरचनात्मक अवस्थाओं की औचित्यता इन, प्रजातांत्रिक मूल्यों की प्रतिस्थापना से जोडता है अपितु नागरिकों को भी अपने दायित्वों के निर्वाह के प्रति सजग रहकर पूर्ण निष्ठा से इनको अपने व्यवहार में अंगीकृत करने की बात करता है। वर्तमान समय में लोग अधिकारों को प्रधानता देते हैं और उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन या निष्क्रिय रहते हैं। इससे समाज में अनेक प्रकार की समस्या उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में मुक्ति का एक प्रभावी विकल्प स्वराज का

दर्शन है और जो यह आदर्श राम राज्य के रूप में प्रस्तुत करता है, निश्चित ही उसकी ओर अग्रसर होना विश्व हित की दृष्टि से वांछनीय है।

5.8 अभ्यास प्रश्न

1 महात्मा गाँधी के स्वराज्य संबंधी विचार पर एक लेख लिखिए।

2 गाँधी के आदर्श राज्य (राम राज्य) का वर्णन कीजिए।

3 गाँधी के ग्राम स्वराज्य का वर्णन कीजिए।

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एम.के. गाँधी, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. एम.के. गाँधी, इण्डिया ऑफ मय ड्रीम्स, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1997
3. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
4. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986
5. गोपीनाथ धवन : दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
6. दाधीच, नरेश, अस्तित्ववाद एवं गाँधी, रावत पब्लिकेशन, जयपुर 1996

इकाई - 6

गाँधी एवं विचारधाराऐं

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 महात्मा गाँधी बहु-आयामी व्यक्तित्व

6.3 उदारवाद

6.3.1 उदारवाद की विशेषताऐं एवं सिद्धान्त

6.3.2 गाँधी एवं उदारवाद

6.4 आदर्शवाद

6.4.1 आदर्शवाद की विशेषताऐं एवं सिद्धान्त

6.4.2 गाँधी एवं आदर्शवाद

6.5 अराजकतावाद

6.5.1 अराजकतावाद की विशेषताऐं एवं सिद्धान्त

6.5.2 गाँधी एवं अराजकतावाद

6.6 मार्क्सवाद

6.6.1 मार्क्सवाद की विशेषताऐ एवं सिद्धान्त

6.6.2 गाँधी एवं मार्क्सवाद

6.7 सारांश

6.8 अभ्यास प्रश्न

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं-

- महात्मा गाँधी के बहुआयामी व्यक्तित्व को जान सकते हैं।
- गाँधी एवं उदारवाद से समानता व असमानता को जानना।
- गाँधी के आदर्शवाद सम्बन्धी विचार को जानना।
- गाँधी के अराजकतावाद सम्बन्धी विचारों को समझना।
- गाँधी और मार्क्सवाद में तुलना करना।
- गाँधी और विभिन्न विचारधाराओं का अध्ययन करना।

6.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी आधुनिक भारतीय चिन्तन में ऐसे विचारक रहे हैं जिन्हें किसी विषय विशेष या विचार विशेष या विचारधारा विशेष तक सीमित नहीं किया जा सकता है। 1938 में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में यह कहा, " गाँधीवाद नाम की कोई चीज नहीं है" शायद यह

इसलिए कहा होगा कि "वाद में कट्टरपन, संकीर्ण और विचार विशेष तक ही सीमित हो जाता है। गाँधी के विचार पूरी तरह से खुली किताब की तरह हैं। गाँधी ने एक बार यह भी कहा कि "गाँधी मर सकता है", "गाँधी अमर रहेगा"। इन वाक्यों के आलोक में गाँधी आज सम्पूर्ण मानव समाज के लिए प्रासंगिक है, उपयोगी है। वर्तमान में प्रचलित विभिन्न विचारधाराओं जैसे उदारवाद, आदर्शवाद, अराजकतावाद एवं मार्क्सवाद का अध्ययन करके गाँधीजी की विशालता एवं विलक्षणता को समझ सकते, जान सकते हैं।

6.2 महात्मा गाँधी बहु-आयामी व्यक्तित्व

महात्मा गाँधी बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति माने जाते हैं। उनके व्यक्तित्व को किसी सीमा मे बाँधना सम्भव नहीं है। महात्मा गाँधी ऐसे मानव या महामानव थे जिन्होंने सम्पूर्ण मानव समाज का सम्पूर्ण सुख, सम्पूर्ण कल्याण का विचार किया। गाँधी ने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह का अपराजेय विचार मानव समाज के लिए दिया। आज सम्पूर्ण मानव समाज अनेक प्रकार की समस्याओं से सामना कर रहा है, समाज में अनेक प्रकार के संघर्ष हो रहे हैं। गाँधी ने संघर्ष निवारण की अहिंसक तकनीक दी है। समाज की आर्थिक समस्याओं का समाधान ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त देकर किया है। समाज की सामाजिक-धार्मिक समस्याओं का समाधान सामाजिक सद्भाव, साम्प्रदायिक सद्भाव तथा वर्तमान समाज की राजनीतिक समस्याओं का समाधान राज्य को अहिंसक रूप प्रदान करके, शक्तियों को कम करके तथा राजनीतिक आध्यात्मिकीकरण करके करने का विचार दिया। आज सम्पूर्ण मानव समाज गाँधी की ओर देख रही है और ऐसा लग रहा है कि समाज को समस्याओं- बुराइयों से मुक्त करने के लिए गाँधी आ रहे हैं। मानव समाज के लिए गाँधी पहले से अधिक उपयोगी है, प्रासंगिक है क्योंकि मानव पहले से अधिक समस्याओं से ग्रस्त है। महात्मा गाँधी निश्चित रूप से महामानव माने जा सकते हैं।

6.3 उदारवाद

उदारवाद के अंग्रेजी पर्याय 'लिब्रलिज्म' की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'लिबरलिस' से हुई है जिसका अर्थ है स्वतंत्रता या 'स्वतंत्र व्यक्ति से सम्बन्धित'। अत: उदारवाद की संकल्पना स्वतंत्रता के विचार के साथ निकट से जुड़ी हुई है।

वास्तव में यह एक व्यापक विचारधारा है। यह एक निश्चित जीवन दर्शन है जो पूर्णत: मानव प्रवृति पर आधारित है। इसमें सामान्यत: वे सभी विचार सम्मिलित हैं जिन्होंने एक ओर शासन की निरंकुशता का, चाहे वह किसी राजा की हो अथवा किसी वर्ग की, मध्ययुग की सामन्तवादी शासन व्यवस्था का तथा चर्च के अधिनायकवादी विशेषाधिकारों का विरोध किया और दूसरी ओर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का समर्थन किया, लोकतंत्र और आदर्शों को स्थापित करने का पूरा प्रयास किया तथा सामाजिक हित को सर्वोपरि रखने का उपक्रम किया। ऐसी स्थिति में उदारवाद का निश्चित अर्थ प्रतिपादित करना कठिन प्रतीत होता है।

6.3.1 उदारवाद की विशेषताऐं एवं सिद्धान्त

उदारवाद एक क्रमबद्ध और निश्चित विचारधारा नहीं है, इसका सम्बन्ध न किसी एक युग से है ओर न किसी सर्वमान्य व्यक्ति विशेष से। वह तो युग-युग तथा अनेक व्यक्तियों के दृष्टिकोणों का परिणाम है। परिस्थितियों के अनुसार यह विचारधारा परिवर्तित भी हुई है। जैसे प्रारम्भिक उदारवाद वैयक्तिक स्वतंत्रता का समर्थक था, तो आधुनिक उदारवाद लोक कल्याण को अत्यधिक महत्व देता है। उदारवाद के प्रधान सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

(1) सर्वजन हिताय-उदारवाद सर्वजन हिताय की भावना से ओतप्रोत है। यह औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न स्थितियों से मानव मात्र का हित चाहकर ' सब जन सुखाय' एवं 'सब जग हिताय' की भावना को बलवती करता है। यह पूँजीवाद का शत्रु नहीं है अपितु समस्त व्यक्तियों एवं सम्पूर्ण समाज का भला चाहता है।

(2) व्यक्ति की स्वतंत्रता-उदारवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रबल पोशाक है। नागरिकों को विधि के द्वारा आवश्यक स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए। यह निश्चित विधान एवं विधि की व्यवस्था चाहता है। स्वेच्छाचारी शासन का अन्त हो सके तथा व्यक्ति का विकास तीव्र गति से सम्भव हो सके।

(3) मानवीय विवेक में आस्था- उदारवाद मानव के बुद्धि एवं विवेक का समर्थक है तथा भावना एवं विश्वास पर विवेक का अधिकार चाहता है। इससे ऐसा लगता है कि उदारवाद भावना पर विवेक को प्रधानता देकर स्वतंत्र चिन्तन के महत्व को प्रतिपादित करना चाहता है। उदारवादियों के अनुसार किसी भी निर्णय की कसौटी अन्धविश्वास या परम्परा नहीं अपितु विवेक है।

(4) व्यक्ति साध्य और राज्य साधन- उदारवाद व्यक्ति की गरिमा और प्रतिष्ठा को बनाए रखना चाहता है। समाज और राज्य व्यक्ति की प्रगति और उत्थान के साधन है। इस विचारधारा के समर्थकों का कथन है कि समाज व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और सरकार समाज को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए है।

(5) संवैधानिक शासन की स्थापना- उदारवाद का उदय यूरोप में निरंकुश राजतंत्रों के विरोध में हुए आन्दोलनों से हुआ है। इन विचारों ने वहाँ वैचारिक क्रान्ति ला दी, परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड व फ्रांस में क्रान्तियाँ हुई और धीरे-धीरे अधिकांश देशों में सीमित व संवैधानिक शासन स्थापित हुए। उदारवाकियों का दृढ़ मत है कि शासन की शक्ति सीमित है और वह व्यक्ति के जीवन में एक निश्चित सीमा तक ही हस्तक्षेप कर सकता है जिसके व्यक्तिगत स्वतंत्रता व सामाजिक कल्याण में सामंजस्य स्थापित हो सके।

(6) समाज में धीरे-धीरे परिवर्तन की अवधारणा- आधुनिक युग का उदारवाद क्रान्तिकारी उपायों के स्थान पर समाज में क्रमिक परिवर्तन करने की अवधारणा प्रस्तुत करता है। मार्क्सवाद सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए क्रान्ति के माध्यम से सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ही बदल डालने की बात करता है। इसके विपरीत उदारवाद संवैधानिक उपायों से धीरे-धीरे सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में इस प्रकार परिवर्तन करने का

पक्ष प्रस्तुत करता है जिससे श्रमिक वर्ग सहित सम्पूर्ण दुर्बल वर्ग का कल्याण हो सके। कार्ल पॉपर ने समाज के क्रमिक परिवर्तन की अवधारणा का दार्शनिक आधार प्रस्तुत किया। उसने इसके सामाजिक निर्माण या खण्डश: निर्माण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

(7) आर्थिक स्वतंत्रता- उदारवाद वैयक्तिक सम्पत्ति का समर्थक है राज्य को आवश्यक कर ही लगाने चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अपने इच्छानुसार व्यवसाय करने सम्पत्ति अर्जित करने तथा खर्च करने का अधिकार होना चाहिए। राज्य को आर्थिक क्षेत्र में कम-से-कम नियंत्रण और हस्तक्षेप करना चाहिए।

(8) अन्धविश्वासों का विरोध- उदारवाद व्यक्ति को प्राचीन रुढ़ियों एवं परम्पराओं का दास नहीं बनाना चाहता है। परम्पराएँ चाहे कितनी ही अच्छी हों किन्तु उनकी अन्धभक्ति का उदारवादी विरोध करते हैं। प्रगति एवं विकास के लिए यदि परम्पराओं का विरोध करना पड़े तो भी किया जाना चाहिए।

(9) प्राकृतिक अधिकारों की धारणा - उदारवादी कुछ प्राकृतिक या नैसर्गिक अधिकार मानते हैं, जो जन्म लेते ही व्यक्ति को मिलते हैं। लॉक ने जीवन, सम्पत्ति और स्वतंत्रता को नैसर्गिक अधिकार ही बतलाया था। राज्य को इनकी रक्षा करनी चाहिए।

(10) राजनीतिक स्वतंत्रता- उदारवादियों के अनुसार सरकार का निर्माण एवं विघटन जनता का अधिकार है। सत्ता का अधिवास जनता में होता है तथा जनता को अपने शासक चुनने का अधिकार होना चाहिए।

(11) लोकतंत्र में विश्वास- आधुनिक उदारवाद अन्य शासन-प्रणालियों की अपेक्षा लोकतंत्र को उत्कृष्ट शासन-प्रणाली मानता है। लोकतंत्र में शासकों को आसानी से बदला जा सकता है तथा लोकतंत्र जनता के अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं की रक्षा करता है।

(12) राज्य का उचित हस्तक्षेप- आधुनिक उदारवाद राज्य के उचित हस्तक्षेप का विरोधी नहीं है। लोककल्याण एवं सार्वजनिक हित की भावना से राज्य द्वारा पूँजीपतियों एवं शोषणकर्त्ताओं पर प्रतिबन्ध लगाए जा सकते हैं। राज्य द्वारा मजदूरों के हित के लिए उचित विधियों का निर्माण किया जा सकता है।

(13) कल्याणकारी राज्य की अवधारणा-आधुनिक उदारवाद राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप को स्वीकार करता हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण उत्पन्न श्रमिकों के शक्तिशाली वर्ग ने अपनी आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों में सुधार की जोरदार मांग प्रस्तुत की। दूसरी ओर मार्क्सवाद पूँजीवादी देशों के श्रमिकों को हिंसक क्रान्ति करने की प्रेरणा दे रहा था। इस परिस्थिति को सुलझाने के लिए 20वीं शताब्दी के विचारकों ने राज्य के कल्याणकारी स्वरूप का प्रतिपादन किया। अब उदारवाद द्वारा राज्य के सकारात्मक स्वरूप को स्वीकार कर उसके माध्यम से दुर्बल वर्ग के आर्थिक व सामाजिक कल्याण की योजना प्रस्तुत की गई। राज्य के कार्य क्षेत्र को विस्तृत बनाया गया। संवैधानिक उपायों से जनकल्याण का आदर्श निश्चित किया गया।

(14) धर्मनिरपेक्ष राज्य का सिद्वान्त-उदारवाद धर्मनिरपेक्ष राज्य की संकल्पना में अगाध श्रद्धा रखता है। राज्य का कोई धर्म नहीं होना चाहिए और व्यक्ति को धार्मिक बन्धनों में नहीं जकड़ा जाना चाहिए।

(15) अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना- उदारवादी विचारधारा के अनुसार विश्व के सभी राष्ट्रों की पारस्परिक सहयोग के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान करना चाहिए। उदारवादियों के अनुसार सभी राष्ट्रों को उन्नति के समान अवसर मिलने चाहिए।

6.3.2 गाँधी एवं उदारवाद

व्यक्ति-व्यक्ति के बीच प्रेम बनाया जा सकता है । गाँधी के दर्शन में व्यक्ति को प्राथमिकता दी गयी है। गाँधी पूछते हैं “यदि व्यक्ति का कोई महत्व नहीं है, तो समाज में शेष रह ही क्या जाता है?” गाँधी व्यक्ति को समाज का केन्द्र मानते हैं। उनके शब्दों में “अन्तत: व्यक्ति ही इकाई।” उनका विश्वास है कि राज्य और सरकार की शक्ति का केन्द्र व्यक्ति है, व्यक्ति के अभाव में यह संस्थाएं और समुदाय शक्तिहीन है। गाँधी व्यक्ति के नैतिक बल पर जोर देते हैं, प्रत्येक विचार व्यक्ति से आरंभ होना चाहिए। सामाजिकता पर बल देते हुए उन्होंने कहा है कि गाँधी के दर्शन में “सर्वोच्च विचार ही व्यक्ति है।" गाँधी के शब्दों में मेरे लिए व्यक्ति प्रथम है। मानव का हित सर्वोपरि होना चाहिए।

गाँधी और उदारवाद में निम्नलिखित समानताऐं दिखायी देती हैं:-

1. गाँधीवाद की तरह उदारवाद में भी ‘सर्व जन सुखाय' की भावना दिखायी देती है जिसे गाँधीजी ने सर्वोदय का नाम दिया है। समाज के सभी लोग सुखी रहे, सभी का कल्याण हो। सभी व्यक्तियों एवं समाजों का कल्याण हो।
2. गाँधी जी की तरह उदारवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रबलता से समर्थन करता है। व्यक्ति को पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। मानवीय विवेक में पूरी तरह विश्वास करते हैं।
3. गाँधी की तरह उदारवाद भी व्यक्ति को साध्य मानता हैं, अन्य सभी संस्थाऐं मानव विकास के लिए साधन हो सकते हैं।
4. गाँधी की तरह नकारात्मक उदारवाद भी व्यक्ति के जीवन में राज्य का कम से कम हस्तक्षेप चाहते हैं। गाँधी जी के अनुसार कम से कम शासन करे वह राज्य अच्छा है।

इन सभी समानताओं के बावजूद कुछ असमानताऐं भी हैं। उदारवाद, राज्य के कम से कम हस्तक्षेप करने के कारण समाज में दो वर्ग बन जाते हैं। वर्ग-संघर्ष आरम्भ हो जाता है। इस तरह उदारवाद समाज में शोषण का कारण बनता है।

6.4 आदर्शवाद

राजनीति दर्शन के इतिहास में सदियों से एक विवादास्पद प्रश्न यह रहा है कि राज्य सर्वोच्च है या व्यक्ति; राज्य साध्य है या व्यक्ति; राज्य लक्ष्य है अथवा व्यक्ति। प्लेटो से लेकर आज तक इस प्रश्न पर विचार मंथन होता रहा है, किन्तु कोई सर्वमान्य समाधान नहीं खोजा जा सका। परन्तु राज्य और व्यक्ति की सर्वोच्चता के इस पद में आदर्शवादी विचारधारा

पूरी तरह से साथ है। उसके लिए राज्य सर्वोपरि है, राज्य साध्य है, राज्य विश्व चेतना की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति है। यह सिद्धान्त व्यक्तिवाद की भांति, राज्य को केवल व्यक्ति के विकास का साधन मात्र नहीं समझता। इसकी मान्यता है कि राज्य स्वयं सिद्ध हैं तथा वह एक नैतिक आदर्श व्यवस्था है जिसमें रहकर ही व्यक्ति अपने विकास की कल्पना कर सकता है।

'आदर्शवाद' शब्द अंग्रेजी के 'आइडियलिज्म' (Idealism)ए शब्द का रूपान्तरण है 'आइडियलिज्म' शब्द ' आइडियल' (Ideal) से नहीं वरन् 'आइडिया' (Idea) से बना है जिसका अर्थ है 'विचार'। अत: यह विचारधारा 'आइडियल' पर नहीं वरन् 'आइडिया ' अर्थात् 'विचार' पर आधारित है। 'आइडियल' शब्द का वास्तविक अर्थ होता है- विचारगत या विचार सम्बन्धी। पूर्णता विचार-जगत में ही संभव है अत: पूर्णता रखने वाली वस्तु को 'आदर्श' कहा जाता है। आदर्शवाद का सम्बंध वास्तविक दुनिया से न होकर विचारों के आन्तरिक जगत् में पायी जाने वाली पूर्णता से है। राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में यह विचारधारा इस दुनिया में पाये जाने वाले राज्यों की प्रकृति से सन्तुष्ट न होकर एक ऐसे आदर्श राज्य का विवेचन करती है जो पूर्ण हो और ऐसे पूर्ण राज्य का अस्तित्व विचारों की दुनिया में संभव है।

बोसांके ने आदर्शवाद को 'आध्यात्मिक सिद्धान्त' कहकर पुकारा - क्योंकि यह राज्य के दृश्यमन भौतिक तत्वों पर बल न देकर आध्यात्मिक स्वरूप पर बल देता है। हॉबहाउस इसे 'दार्शनिक सिद्धान्त ' कहते हैं। क्योंकि यह राज्य के समग्र रूप का दार्शनिक दृष्टि से अध्ययन करता है। सी. ई. एम. जोड ने इसे ' निरंकुशतावादी सिद्धान्त ' कहा है क्योंकि यह राज्य को पूर्ण और निरंकुश अधिकार प्रदान करता है। मैकाइवर ने इसे राज्य का ' रहस्यवादी' कहा और गैटल ने इसे 'नैतिक सिद्धान्त' कहा है क्योंकि यह नैतिकता पर अत्यधिक बल देता है। संक्षेप में, अदर्शवाद का अर्थ विचारवाद है।

आदर्शवादी परम्परा का एक लम्बा इतिहास हैं, आदर्शवादी विचारधारा के तत्त्व सर्वप्रथम प्लेटो और अरस्तू की रचनाओं में मिलते हैं जो कि राज्य को स्वाभाविक और आवश्यक मानते थे। वे राज्य को सब कुछ मानते थे। प्लेटो ने राज्य को मानव प्रकृति के अनुरूप तथा मानव मस्तिष्क से उत्पन्न माना। जिस प्रकार मनुष्य के अन्तरंग में तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ रहती हैं, जैसे- बुद्धि, उत्साह और वासना, उसी प्रकार राज्य को भी तीन वर्गों में- दार्शनिकों, योद्धाओं और उत्पादकों- में बांटा जा सकता है। अरस्तु का यह सूत्र कि 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है' आदर्शवादी परम्परा का आधारभूत सिद्धान्त बन गया। राज्य मनुष्य जीवन के विकास के लिए एक स्वाभाविक संस्था है। राज्य से पृथक् रहकर विकास करने की बात या तो देवता सोच सकते हैं अथवा पशु। मनुष्य के लिए ऐसी कल्पना करना प्राय: असंभव है। अरस्तु राज्य की उत्पत्ति मानव जीवन की आवश्यकताओं से मानता है। तत्पश्चात् वह राज्य की उपयोगिता मानव जीवन के नैतिक विकास के लिए आवश्यकता समझता है।

हीगल ने स्पष्ट किया है कि राज्य विश्वात्मा के विकास की अन्तिम यात्रा है; अत: व्यक्ति के जीवन की वास्तविकता राज्य का सदस्य होने में ही है, राज्य से पृथक् अथवा बाहर होकर उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। उसने राज्य को पृथ्वी पर ईश्वर का अवतार बतलाया

और कहा कि व्यक्ति राज्य के लिए है, न कि राज्य व्यक्ति के लिए। वह राज्य को साध्य और व्यक्ति को साधन मानता है।

6.4.1 आदर्शवाद की विशेषताऐं एवं सिद्धान्त

आदर्शवाद की विशेषताऐं सिद्धान्त तथा मान्यताएँ निम्नलिखित हैं-

(1) राज्य एक नैतिक संस्था है-आदर्शवादी सिद्धान्त राज्य को एक ऐसी नैतिक संस्था मानता है जो व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। राज्य में रहकर मनुष्य का पूर्ण नैतिक विकास सम्भव है। राज्य के बाहर व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो सकता। राज्य में व्यक्ति अपनी सर्वतौन्मुखी उन्नति कर सकता है। बोसांके के शब्दों में, "राज्य एक नैतिक विचार का मूर्तरूप है..... राज्य विश्वव्यापी संगठन का एक अंग न होकर समस्त नैतिक संसार का अभिभावक है।"

(2) राज्य प्रमुख है- आदर्शवादियों के अनुसार, राज्य एक साधन नहीं बल्कि साध्य है। उसकी सत्ता सर्वोपरि है। राज्य का अपना व्यक्तित्व और इच्छा होती है। राज्य साध्य है और व्यक्ति साधन है। राज्य नागरिकों से अपना सर्वस्व बलिदान करने की मांग कर सकता है। वेपर के शब्दों में, "राज्य स्वयं एक साध्य है। यह आत्मा की उच्चतम व्याख्या ही नहीं वरन् अन्तिम अवधारणा भी है।"

(3) राज्य अनिवार्य है- आदर्शवाद राज्य को व्यक्ति लिए अनिवार्य मानता है। राज्य से पृथक् व्यक्ति का जीवन सम्भव नहीं है। राज्य के बाहर व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो सकता। अरस्तू के अनुसार राज्य के बिना व्यक्तियों को सद्जीवन प्राप्त नहीं हो सकता।

(4) राज्य सर्वोच्च है- आदर्शवादी राज्य को असीम शक्ति धारण करने वाला मानव मानते थे। सभी संस्थाओं में सर्वोच्च मानते हैं। हीगल राज्य को ईश्वर का अवतार मानता है। राज्य के विरुद्ध व्यक्तियों को कोई अधिकार नहीं है। राज्य के बाहर जो अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ हैं, वे भी राजा की शक्तियों पर कोई सीमाएँ नहीं लगा सकती।

(5) राज्य व व्यक्ति का सावयव सम्बन्ध- राज्य व व्यक्ति का वही सम्बन्ध है जो शरीर और उसके अंगों का है। राज्य समष्टि के अपने अवयवों से सदैव अधिक बड़ी और महत्वपूर्ण होती है। जिस प्रकार अवयवों की सार्थकता शरीर का अंग बने रहने में है, उसी प्रकार व्यक्ति का सारा महत्त्व और मूल्य राज्य का अंग बने रहने में है।

(6) राज्य सामान्य इच्छा का प्रतिनिधि है- राज्य की इच्छा सामूहिक भलाई को ध्यान में रखती हैं। राज्य के द्वारा व्यक्ति की सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व किया जाता है। राज्य के द्वारा ही व्यक्ति की वास्तविक इच्छा और इसकी अन्तर्चतना की अभिव्यक्ति होती है। रुसो के अनुसार, यदि व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक सामान्य 'सामान्य इच्छा' का पालन नहीं करता तो राज्य को उसे बलपूर्वक स्वतंत्र करना चाहिए यानी सामान्य इच्छा मानने के लिए बाध्य करना चाहिए। आदर्शवाद के अनुसार राज्य की इच्छानुसार कार्य करना ही स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता का अर्थ राजकीय आदेशों को कर्त्तव्य समझते हुए

उनका पालन करना है। स्वतंत्रता का उद्देश्य व्यक्ति के विकास के लिए अधिकाधिक अवसर प्रदान करना है और ये अवसर राज्य के द्वारा ही प्रदान किये जा सकते हैं।

(7) राज्य समाज से अलग नहीं- आदर्शवादी यह मानते हैं कि राज्य और समाज में कोई भेद नहीं है। समाज राज्य से पृथक् कोई संस्था नहीं है या एक ही संस्था के दो नाम हो सकते हैं। समाज का अस्तित्व राज्य पर निर्भर है।

6.4.2 गाँधी एवं आदर्शवाद

महात्मा गाँधी को कुछ विचारक आदर्शवादी चिन्तक मानते हैं क्योंकि गाँधी जी के द्वारा आदर्श समाज और आदर्श राज्य (रामराज्य) का विचार दिया है। गाँधी ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं, जिसे लोगों ने कल्पना और आदर्श समाज माना है। जिसकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। अगर ऐसा है तो वे प्राय: पलायनवादी होते हैं। परन्तु गाँधी के विचारों में ऐसा नहीं है। वे पलायनवादी नहीं है, वे मानव जीवन की समस्याओं से संघर्ष करते हैं। वे समाज को मिटाने की जगह समाज का शुद्धिकरण करना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि- "मैं वैसे भारत के लिए कार्य करूंगा जिसमें गरीब से गरीब यह अनुभव कर सकेगा कि यह उसका देश है। जिसके निर्माण में उसकी आवाज का मोल है, वैसा भारत जिसमें कोई उच्च और निम्न वर्ग में नहीं बांटा जायेगा। सभी जाति के लोग पूर्ण सहयोग के साथ रहेंगे, जहाँ छूत और मद्यपान का अभाव होगा और स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर ही अपने अधिकारों का उपयोग करेगी। अत: न तो किसी का शोषण करना है और न शोषित होना है। इसीलिए सभी के हितों की चिन्ता करना है।

गाँधी का लक्ष्य रामराज्य की स्थापना करना था। इस रामराज्य में नागरिक प्रेम, निःस्वार्थ, त्याग और कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित हो। जिसमें राज्य की दमन शक्ति नहीं है। यह नागरिकों के स्वैच्छिक सदचरित्रता व नैतिकता पर आधारित है। रामराज्य की संकल्पना - सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर आधारित है। गाँधी का रामराज्य का आदर्श विचार भारत में राम के राज्य के समान राज्य की स्थापना करना है। रामराज्य में राज्य लोगों की नैतिक शक्ति और सत्ता का राज्य होगा। रामराज्य की स्थापना, सत्य, अहिंसा और नैतिकता के सिद्धान्तों की पालना करने से सम्भव हो सकती है।

गाँधीजी व्यक्ति को अच्छा मानते थे। इसलिए वे पापी की बजाय पाप' से घृणा करने पर बल देते थे। वे व्यक्ति के हृदय में गहरी पैठ की हुई बुराई से मुक्त कराना संभव मानते थे। हालांकि वे मानते थे कि यह कठिन कार्य है लेकिन असंभव नहीं। उनका 'हृदय परिवर्तन' का सिद्धान्त ही उसके सत्याग्रह और ट्रस्टीशिप सिद्धान्त का आधार है।

गाँधी मनुष्य को आत्मा प्रधान जीव मानते हैं जो शरीर से जुड़ा है। आत्मा द्वारा यह ईश्वर से सम्बन्धित है। "मानव के शुभ स्वरूप के समर्थन में गाँधी कहते हैं कि कोई भी मानव क्यों न हो वह हमारी श्रद्धा और प्रेम के बदले हजारों गुणा अधिक प्रेम का उपहार प्रदान करता है फिर कोई भी मानव ऐसा नहीं है जिसकी बुराई का सुधार न हो सके औंर इतना पूर्ण नहीं है कि वह दूसरों को खराब कहकर हत्या कर दे।" गाँधी के अनुसार, "सत्य का अनुभव केवल भौतिक साधना और नैतिक आचरण के द्वारा नहीं होता है बल्कि मानव जीवन के समस्त पहलुओं सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक इत्यादि को पवित्र बनाने से होता है। गाँधी जी

के सामाजिक- आर्थिक-राजनीतिक विचारों को भी नैतिक शिक्षा के रूप में देखा गया। गाँधी चिन्तन अपने आप में समग्रतावादी है, जो आणविक आधार रूपी त्रिवर्गीय नैतिक संप्रत्ययों- 'सत्य-ईश्वर-अहिंसा' पर टिका हुआ है। गाँधी चिंतन में धर्म व नीतिशास्त्र में अंतर को ध्यान में नहीं रखा गया है। गाँधी को एक धार्मिक व्यक्ति के रूप में देखा गया है।

मानव का अन्तिम उद्देश्य सत्य की प्राप्ति करना है। अत: प्रत्येक प्राणी के साथ तादत्मय स्थापित कर अपनी आत्मा की पहचान करना मानव का लक्ष्य है। "प्रेम के द्वारा मानव अधिक से अधिक ईश्वरीय शक्ति को प्राप्त कर सकता है।" गाँधी मानव जीवन का उद्देश्य सत्य की प्राप्ति को मानते हैं।

गाँधी के लिए सत्य की प्राप्ति ईश्वर की प्राप्ति है और ईश्वर की प्राप्ति सत्य की प्राप्ति है। गाँधी के अनुसार सत्य की खोज एक गुफा में बैठकर नहीं की जा सकती है, बल्कि कर्म से की जा सकती है।

रमणमूर्ति राजनीति में अहिंसा के उनके अध्ययन को दो भागों में विभाजित किया गया- गाँधीयन तकनीकें एवं गाँधीयन चिंतन। रमणमूर्ति का तर्क है कि - 'अहिंसा एक सामाजिक राजनीतिक संप्रत्यय के रूप में गाँधी द्वारा खोजा गया है। उन्होंने इसे सत्य के साथ मिलाया, अपनी नैतिक व्यवस्था की संरचना करने में जो कि उसके सम्पूर्ण दर्शन का आधार है। जिसे मार्क्सवादी भाषा में 'आधार संरचना' कह सकते हैं। वहीं सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था 'अधिसंरचना' का निर्माण करते हैं जो कि आधार संरचना से संचालित होती है, "गाँधीजी का अहिंसा का सिद्धान्त एक तत्त्वमीमांसीय संप्रत्यय के रूप में अपनी जड़े लम्बी भारतीय परम्परा में रखता है।"

इस प्रकार गाँधी जी ने प्राचीन दार्शनिक परम्परा के नैतिक आदर्शों व निरपेक्ष प्रत्ययों को व्यापक रूप में समकालीन समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त करने का प्रयास किया। एक नैतिक आदर्शवादी के रूप में गाँधी ने सत्य एवं अहिंसा को निरपेक्ष प्रत्यय के रूप में संरचित किया लेकिन एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ के रूप में वह मानव व्यवहार में उनके अनुप्रयोग की सीमाओं के प्रति जागरूक भी थे और इसलिए वह सापेक्षिक सत्य एवं सापेक्षिक अहिंसा में विश्वास करते थे।

6.5 अराजकतावाद

राज्य के कार्य, शक्ति और अधिकार क्षेत्र क्या होना चाहिए, इस सम्बन्ध में जो अनेक राजनीतिक विचाधाराएँ विद्यमान हैं, इनमें से अराजकतावाद एक है। अराजकतावाद ऐसी क्रान्तिकारी समाजवादी दर्शन है जिसकी मूल मान्यता यह है कि किसी भी प्रकार की राजनीतिक सत्ता अनावश्यक एवं अवांछनीय है। राज्य एवं उसकी संस्थाएँ मनुष्य के लिए एक अनावश्यक बुराई है, अत: अराजकतावादी दर्शन का उद्देश्य राज्य-हीन तथा वर्ग-हीन समाज की स्थापना करना है। यह उद्देश्य आधुनिक समाज का पुनर्गठन करके प्राप्त किया जा सकता है।

'अराजकता' शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द 'अनार्किया' (anarchia) से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'शासन का अभाव'। डिकिन्सन के अनुसार, "अराजकता का अर्थ व्यवस्था का अभाव नहीं, अपितु शक्ति का अभाव है। इसका अर्थ स्वतन्त्रता, मेलजोल तथा प्रेम है।" हक्सले

के शब्दों में, “अराजकता समाज की वह व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक होगा।" कोकर के अनुसार, “अराजकता का सिद्धान्त यह है कि राजनीतिक सत्ता किसी भी रूप में अनावश्यक एवं अवांछनीय है। वर्तमान अराजकतावाद में राज्य के सैद्धान्तिक विरोध के साथ वैयक्तिक सम्पत्ति विरोध और धार्मिक संस्था के प्रति शत्रुता का भी समावेश है।" जी. एड. एच. कोल के शब्दों में, "एक दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में अराजकतावाद समाज के सामाजिक संगठन के उन रूपों के पूर्ण विरोध के साथ प्रारम्भ होता है जो बाध्यकारी सत्ता पर आधारित होते हैं। एक आदर्श के रूप में अराजकतातद का अभिप्राय उस स्वतन्त्र समाज से है जिसमें से बाध्यकारी तत्वों का लोप हो चुका है।”

संक्षेप में, अराजकतावाद वह सिद्धान्त है जो राज्य की अनावश्यकता और राज्य विहीन समाज के संगठन का पक्षपाती है। अराजकतावादियों के अनुसार राज्य एक बुराई है। समाज का संगठन ऐच्छिक सहयोग और स्वतन्त्रता के आधार पर किया जाना चाहिए।

अराजकतावादी किसी भी सत्ता अथवा शक्ति और उसके नियंत्रण का कठोर विरोध करते हैं। ये नियन्त्रण और सत्ता को मनुष्य की स्वतन्त्रता और उसके स्वाभाविक विकास के लिए हानिकारक समझते हैं। किसी भी प्रकार की बाह्य शक्ति मनुष्य के व्यक्तित्व को पंगु कर देती है, क्योंकि उसके द्वारा उसकी रचनात्मक शक्ति अवरूद्ध हो जाती है। उनकी दृष्टि में वस्तुत: ऐसी सत्ताएँ हैं जो व्यक्तियों की स्वतन्त्रता में बाधा उपस्थित करती है। ये सताएँ हैं- (1) राज्य, (2) तथा (3) पूँजीवादी व्यवस्था। इन तीनों सत्ताओं का अन्त करके मनुष्य को पूर्ण स्वतन्त्रता दिलाना अराजकतावादियों का मुख्य उद्देश्य है।

6.5.1 अराजकतावाद की विशेषताऐं एवं सिद्धान्त

अराजकतावाद अपनी शैशवावस्था में व्यक्तिवादी था। गॉडबिन हाजस्किन व्यक्ति को पूर्णत: मुक्त और स्वतन्त्र करने के लिए ही अराजकतावाद का प्रतिपादन करते हैं। आगे चलकर क्रॉपोट्किन तथा बाकूनिन के हाथों में यह समाजवादी विचारधरा बन गयी। यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ अराजकतावादी विकासवादी हैं, शान्तिप्रिय हैं और शान्तिपूर्ण उपायों से अराजकतावाद की कल्पना करना चाहते हैं, जैसे 'टाल्सटाय', दूसरी ओर अन्य अराजकतावादी क्रान्तिकारी हैं। वे यह मानते हैं कि अराजकतावादी समाज की स्थापना के लिए हिंसक और क्रान्तिकारी साधन अपनाने पड़ेंगे। क्रॉपोट्किन और बाकूनिन ऐसे ही साधनों का समर्थन करते है।

अराजकतावाद के प्रमुख सिद्धान्त तथा विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(1) राज्य का विरोध- सभी अराजकतावादी विचारक राज्य को समाप्त करना चाहते हैं और उसके स्थान पर एक राज्यविहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। उनके अनुसार इतिहास इस बात का साक्षी है कि राज्य सदा से नये विचारों व सुधारों का विरोधी रहा है। राज्य ही समस्त युद्धों के लिए उत्तरदायी है। राज्य व्यक्ति की उन्नति, सुधार स्वतन्त्रता के मार्ग में एक बड़ी भारी बाधा है। उनके अनुसार राज्य एक बुराई है और समाज की स्थापना के लिए आवश्यक है कि राज्य का अन्त किया जाए।

अराजकतावादी निम्नलिखित कारणों के आधार राज्य का विरोध करते हैं:

क्रॉपोटा्कन ने इतिहास के आधार पर राज्य का इस दृष्टि से विरोध किया है कि मानव समाज के इतिहास के उषाकाल में राज्य की व्यवस्था नहीं थी। उस समय मनुष्य राज्य के बिना स्वेच्छापूर्वक संगठन बनाकर रहते थे, उस समय मामलों का नियन्त्रण कानून से नहीं, अपितु पारस्परिक समझौते पर आधारित रीति-रिवाजों से होता था। इसके अतिरिक्त इतिहास इस बात का भी साक्षी है जब से राज्य बना है, उसने प्रगतिशील विचारों और सुधारों का विरोध किया है। सुकरात और ईसा मसीह जैसे दार्शनिकों और धर्म-प्रवर्तकों को राज्य द्वारा प्राणदण्ड दिये गये हैं।

राज्य स्वतन्त्रता का दमन करता है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति व्यक्ति के श्रेष्ठतम विकास के लिए बहुत आवश्यक है। राज्य अथवा शासन का प्रत्येक कार्य व्यक्ति से उसकी स्वतन्त्रता छीनता है। इसलिए थोरो कहता है, "वह शासन सबसे अच्छा है जो बिलकुल शासन ही नही करता।"

राज्य एक अनावश्यक संस्था है और उसके कार्यों का सम्पादन उससे कहीं अधिक अच्छे रूप में ऐच्छिक समुदायों के द्वारा किया जा सकता है। जिस प्रकार मनुष्यों के द्वारा राज्य के नियन्त्रण के बिना खाना, सोना, बोलना और पढ़ना, आदि कार्य ठीक प्रकार से किये जाते हैं उसी प्रकार उनके द्वारा स्वयं या ऐच्छिक समुदायों के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य की देखभाल और उद्योग के प्रसार, आदि से सम्बन्धित कार्य अधिक अच्छे प्रकार से किये जा सकेंगे। राज्य से पूर्व भी नागरिक ये कार्य पारस्परिक सहयोग के आधार पर भली-भाँति करते थे। राज्य का प्रधान कार्य विदेशी शत्रुओं के आक्रमणों से रक्षा तथा आन्तरिक उपद्रवों का दमन करता है। राज्य स्थायी सेना रखकर विदेशी शत्रुओं से सफलतापूर्वक रक्षा करता है।

क्रॉपोट्किन के अनुसार, राज्य ने मानव समाज में कोई अच्छा काम नहीं किया है। यह कहा जाता है कि राज्य का प्रमुख कार्य रक्षा करना है। किन्तु राज्य ने लालची पूँजीपतियों ओर क्रूर जमींदारों के शोषण से किसानों और मजदूरों की कोई रक्षा नहीं की है, अपितु शोषण करने वाले वर्गों को अपना संरक्षण प्रदान करते हुए उन्हें समृद्ध और धनी बनाने में सहयोग किया। क्रॉपोट्किन के अनुसार, "राज्य जमींदार, सैनिक, नेता, न्यायाधीश, पुरोहित और पूँजीपति का एक-दूसरे के हितों को सुरक्षित बनाये रखने वाला ऐसा समाज है जिसमें ये सब जनता पर अपनी सत्ता बनाये रखने, उनका शोषण करने तथा स्वयंमेव धनी बनने के लिए एक-दूसरे का समर्थन करते हैं।"

अराजकतावादियों ने आर्थिक आधार पर भी राज्य का विरोध किया है। इस सम्बन्ध में मार्क्सवादी विचारधारा से सहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं कि राज्य ने निजी सम्पत्ति के गर्भ से जन्म लेकर अब तक उसे ही प्रोत्साहित करने का कार्य किया है। राज्य ने सदैव ही पूँजीपतियों का पक्ष लेकर श्रमिकों के साथ अन्याय किया है। विलियम गॉडविन के शब्दों में, "विधि निर्माण लगभग सभी देशों में पूँजीपतियों के पक्ष में होता है। अत: आम जनता के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए राज्य का अन्त उचित है।"

(2) पूँजीवाद का विरोध- अराजकतावादी पूँजीवाद के घोर विरोधी हैं। ये साम्यवादियों की भाँति श्रम को मूल्य का आधार मानते हैं जिसके लाभ को पूँजीपति हथिया लेते हैं।

उनके अनुसार पूँजीवाद का आधार शोषण है, अत: राज्य और पूँजीवाद का अन्त किया जाना चाहिए।

(3) निजी सम्पत्ति का विरोध- अराजकतावादी निजी सम्पत्ति के कट्टर विरोधी हैं। वे समाज में निजी सम्पत्ति को रहने देना ही नहीं चाहते क्योंकि निजी सम्पत्ति समाज में वर्ग विभेद स्थापित करती है। यदि समाज में निजी सम्पत्ति न होती तो समानता की स्थिति रहती। निजी सम्पत्ति के कारण शोषक एवं शोषित वर्ग पैदा हो जाते हैं जिनका अराजकतावादी विरोध करते हैं। प्रूदों के अनुसार सब प्रकार की सम्पत्ति चोरी है। उसके मतानुसार किसी वस्तु के बनाने में जो श्रम होता है, वही उस वस्तु का मूल्य निर्धारित करता है। पूँजीपति मजदूरों की पूरी मजदूरी न देकर उनके श्रम से उत्पादित वस्तुएँ बेचकर मालामाल हो जाते हैं, अत: निजी सम्पत्ति गरीबों के परिश्रम की चोरी है। इसने समाज में बड़ी आर्थिक विषमता उत्पन्न कर दी है।

(4) लोकतन्त्र एवं प्रतिनिधि शासन का विरोध- अराजकतावाद सभी प्रकार के शासन का विरोधी है। वह शासन की सत्ता को समाप्त करना चाहता है- चाहे निरंकुश शासन हो अथवा लोकतन्त्र। उनके अनुसार लोकतन्त्र जनता का शासन नहीं होता। अराजकतावादी प्रतिनिधित्वपूर्ण सरकार में विश्वास नहीं करते। उनके मत में प्रतिनिधि नागरिकों का वास्तविक हित नहीं कर पाती। लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली में चुनाव केवल दिखावटी होते हैं। हर चार-पाँच वर्ष बाद नागरिकों को यह झाँकी दी जाती है कि वे शासन के निर्माता हैं, लेकिन चुनाव समाप्त हो जाने पर निर्वाचित प्रतिनिधि अपने चुनाव क्षेत्रों में मतदाताओं से संपर्क स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं समझते। चुनाव से पूर्व के राजनीतिक भिक्षुक चुनाव के बाद राजनीतिक स्वामी बन बैठते हैं और अपने निर्वाचकों की ओर असंगत तथा अपरिचयात्मक दृष्टि से देखते हैं। साथ ही एक प्रतिनिधि अपने क्षेत्र में रहने वाले विभिन्न व्यवसाय के हितों का प्रतिनिधित्व सफलतापूर्वक नहीं कर सकता।

अराजकतावादियों का कहना है कि प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन के कारण कुछ लोगों का पेशा राजनीति हो जाता है। पेशेवर आदमी मानव कमजोरियों से लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। संसद भी जनता का ठीक से प्रतिनिधित्व नहीं करती। दूसरे, चार-पाँच साल में जो प्रतिनिधि एक बार चुन लिये जाते हैं, उनकी जो अपनी राय है या उनकी पार्टी की जो राय होती है, उसे ही जनता के ऊपर लोकमत कहकर थोप दिया जाता है।

(5) धर्म का विरोध- अराजकतावादी सभी प्रकार की सत्ता के विरोधी हैं वह सत्ता आर्थिक हो राजनीतिक हो या धार्मिक हो। चर्च या धर्म भी अराजकतावादियों के अनुसार अविवेकपूर्ण अन्धविश्वास है। सम्पत्ति की तरह धर्म भी एक बुराई है और श्रमिकों के शोषण का समर्थक है। बाकूनिन के अनुसार चर्च भी राज्य की तरह निरंकुश है, ईश्वर भी वैसा ही अधिनायक है जैसा कि रूस का जार। दोनों से मुक्ति पाना आवश्यक है। धर्म इसलिए भी मनुष्य के लिए हानिकर है कि यह उसमें अन्धविश्वास और कपोल

कल्पनाओं को पुष्ट करता है, उसके बुद्धिवाद पर अंकुश लगाता है, अत: प्रूदों ने लिखा था कि, ' ईश्वर में विश्वास करना मूर्खता तथा कायरता है, ईश्वर ढोंग एवं झूठ है।"

(6) केन्द्रीयकरण का विरोध- अराजकतावादी केन्द्रीयकरण के विरोधी हैं और विकेन्द्रीकरण के समर्थक हैं। वे अपने आदर्श समाज में व्यवस्था और प्रबन्ध के विकेन्द्रीकरण पर बल देते हैं। अराजकतावाद समाज को स्वतन्त्र संघों में संगठित कर संघात्मक रूप देना चाहता है।

6.5.2 गाँधी एवं अराजकतावाद

गाँधी जी मूलत: अराजकतावादी हैं :- गाँधी जी का मत है कि राज्य व राजकीय शक्ति की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि मनुष्य अपूर्ण है यदि मानव जीवन इतना पूर्ण हो जाए कि वह स्वयं संचालित हो सके तो फिर राज्य व राजकीय शक्ति को समाज की कोई आवश्यकता न रहे। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के हित साधन में बाधा न डालते हुए, स्वयं अपना शासक बन जायेगा। गाँधी जी के मतानुसार वह समाज, जिसमें राज्य व राजनीतिक शक्ति का अभाव होगा और व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध सत्य व अहिंसा पर आधारित होंगे।

गाँधी अराजकतावाद की तरह राज्य विहीन, वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। वे एक ऐसे आदर्श राज्य की कल्पना करते हैं "जिसमें कोई राजनीतिक शक्ति नहीं होगी, क्योंकि उसमें कोई राज्य ही नहीं होगा।" गाँधी न तो राज्य को ईश्वर की निरपेक्ष सम्प्रभुता मानते हैं और न ही अराजकतावादियो की तरह राज्य को पूर्णत: समाप्त करना चाहते हैं। परन्तु इतना अवश्य है कि गाँधी अराजकतावादियों की तरह राज्य की बढ़ती हुई शक्ति को भय से देखते हैं और व्यक्ति को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देना चाहते हैं।

गाँधी राज्य की सत्ता को निम्न दो कारणों से अस्वीकार करते हैं-

1. राज्य सत्ता का प्रतिनिधित्व करता।
2. राज्य को संगठित हिंसा का प्रतिनिधित्व मानते हैं।

इस प्रकार वे राज्य को एक अनैतिक संस्था मानते हैं। राज्य की सत्ता व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिए घातक है और राज्य की शक्ति, व्यक्ति के नैतिक मूल्यों को नष्ट कर देती है। वे व्यक्ति की नैतिक शक्ति की प्रधानता स्वीकार करते हैं। वे राज्य की सार्वभौमिकता के संगठित शक्ति प्रणाली के आधार के विरूद्ध नैतिक शक्ति पर आधारित जनता की सम्प्रभुत को स्वीकार करते हैं। वे राज्य को साध्य की जगह लोक कल्याण के हित साधन मानते हैं।

गाँधी व्यक्ति का इतना विकास करना चाहते हैं कि व्यक्ति स्वयं इतना सार्वभौमिकता प्राप्त कर ले कि अपना जीवन चलाने के लिए राज्य की आवश्यकता ही नहीं रहे। गाँधी का लक्ष्य सभी व्यक्तियों का कल्याण करना है, उनका विकास करना है। यह सब अहिंसक राज्य में ही सम्भव है। गाँधी का आदर्श समाज तक पहुंचने के लिए आदर्श अहिंसक राज्य ही आवश्यक है। वे राज्य को हिंसा का संगठित रूप मानते हैं क्योंकि राज्य का जन्म ही हिंसा से हुआ मानते हैं। गाँधी कहते हैं कि "में राज्य की शक्ति वृद्धि को सबसे बड़े भय से देखता हूँ। क्योंकि प्रतिभासिक रूप से वह शोषण करते हुए मालूम पड़ता है, यह व्यक्तितत्व को समाप्त करके मानवता का सबसे बड़ा अहित करता है। राज्य हिंसा का केन्द्रित और संगठित रूप ही है।

व्यक्ति में आत्मा होती है परन्तु चूंकि राज्य एक जड़ यन्त्र मात्र है इसीलिए उसे हिंसा से कभी नहीं छुड़ाया जा सकता है क्योंकि हिंसा से ही तो इसका जन्म होता है।"

इस सम्बन्ध में गाँधी थूरो की नीति से प्रभावित होकर कहते हैं कि वह सरकार सर्वोत्तम है जो कम से कम शासन करती है। अहिंसक राज्य में व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए अधिक सुअवसर मिलता है। इसमें आर्थिक, राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होगा।

अराजकतावादियों के समान गाँधी राज्य की शक्ति में अत्यधिक वृद्धि को आशंका की दृष्टि से देखते थे और व्यक्ति की अधिक से अधिक स्वतन्त्रता में उनकी आस्था थी। परन्तु, व्यक्ति के सम्बन्ध में गाँधी का दृष्टिकोण अराजकतावादी दृष्टिकोण से बिलकुल भिन्न था। गाँधी व्यक्ति को मूलत: एक ऐसा सामाजिक प्राणी मानते थे जिसके सम्बन्ध राज्य के साथ न सही, समाज के साथ अविच्छिन्न और अटूट हैं। इसके विपरीत अराजकतावादी यह मानते हैं कि समाज से पृथक् व्यक्ति का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है और वह केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समय-समय पर समाज के सम्पर्क में आता है। अराजकतावादियों की दृष्टि से व्यक्ति के अधिकार ही सब कुछ थे। उन्होंने समाज के प्रति सभी उत्तरदायित्वों से व्यक्ति के अधिक से अधिक स्वतन्त्र रहने पर जोर किया है। टॉलस्टॉय जिससे गाँधी ने बहुत कुछ सीखा, "कल्याण की खोज में विवेक का अनुशासन" मानने में विश्वास करता था। गौडविन और टॉलस्टॉय के समान ही गाँधी का दृष्टिकोण भी मूलत: नैतिक था, परन्तु गाँधी ने राज्य की ऐसी कार्यवाही को, जो जनता के कल्याण के लिए की गयी हो, तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि उसका स्वागत किया। यह मानते हुए भी कि राज्य का शासन जितना कम हो उतना अच्छा है, वह यह मानते थे कि कुछ काम ऐसे है जो राजनीतिक शक्ति के द्वारा ही किये जा सकते हैं।

गाँधी ने न राज्य को अस्वीकार किया, और न राजनीति को। राजनीति से उनका तात्पर्य उन सभी कार्यवाहियों से था जो राज्य के द्वारा, अथवा राज्य के विरोध में, की गयी हों। अराजकतावादियों में, चाहे वे कट्टरपंथी रहे हों अथवा मानवतावादी, और गाँधी में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि गाँधी ने समाज के हाथों में, जन-जागृति और सत्याग्रह के रूप में, ऐसे किये जो किसी भी राज्य को, चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, नियन्त्रण में रखने की क्षमता थे। अराजकतावादी प्राय: राजनीति और हिंसा में कोई भेद नहीं करते हैं। राजनीति को गाँधी की सबसे बड़ी देन यह थी कि उन्होंने राजनीति को हिंसा से अलग किया और राजनीतिक कार्यवाहियों का सम्बन्ध अहिंसा के साथ जोड़ा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अराजकतावादियों का लक्ष्य, राज्य का नष्ट करना था, उसका पुनर्निर्माण नहीं, गाँधी का प्रमुख लक्ष्य, हिंसा और शोषण के आधार पर स्थापित वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को, अहिंसात्मक साधनों के द्वारा धीरे-धीरे तोड़ना और उसके स्थान पर एक ही राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना करना था जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति के इच्छापूर्ण सहयोग पर आधारित हो और जिसका लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति का हो।

6.6 मार्क्सवाद

मार्क्सवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसने मानव समाज को एक लम्बे समय तक प्रभावित किया और सामाजिक परिवर्तन का एक नया रास्ता दिखाया। मार्क्स का उद्देश्य राज्यविहीन, वर्गविहीन शोषणविहीन समतावादी समाज की स्थापना करना था।

6.6.1 मार्क्सवाद की विशेषताऐं एवं प्रमुख सिद्धान्त।

मार्क्सवाद की विशेषताऐं एवं प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
2. इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या
3. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त
4. वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दो शब्दों से मिलकर बना है एक 'द्वन्द्व' तथा दूसरा 'भौतिक'। 'द्वन्द्व' का अभिप्राय ‘ वाद-विवाद ’ या विकास से है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद प्रकृति में द्वन्द्व प्रणाली द्वारा भौतिक पदार्थों के महत्त्व तथा उनके विकास को व्यक्त करने की भौतिकवादी विधि है।

मार्क्स कहता है कि तार्किक एवं श्रेष्ठ विचार, जिसकी हीगल कल्पना करता है, एक रहस्यवादी विचार है। उसे देखा नहीं जा सकता है, उसे स्पर्श नहीं किया जा सकता इस बात की जाँच नहीं की जा सकती है कि उसका मानव मस्तिष्क एवं व्यवहार पर क्या अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है? मार्क्स कहता है कि जब किसी विचार को देखा नहीं जा सकता, जिसे स्पर्श नहीं किया जा सकता, जिसकी जाँच नहीं की जा सकती है, वह काल्पनिक और रहस्यमयी विचार है वैज्ञानिक नहीं। भौतिक एवं रासायनिक शास्त्रों की भांति मार्क्स सामाजिक क्षेत्र में केवल उस जगत को वैज्ञानिक मानता है जो दिखायी देता है, जिसका स्पर्श किया जा सकता है या जिसकी जाँच की जा सकती है। मार्क्स के लिए भौतिक पदार्थ- मिट्टी, पत्थर, हड्डी, मांस आदि ही सर्वथा सत्य है, अदृश्य विचार या विश्वास नहीं। हीगल के लिए 'विश्वात्मा' रहस्मयी होने से अगम्य है परन्तु मार्क्स के लिए पदार्थ दृश्य होने से अगम्य है। मार्क्स का विश्वास है कि निरन्तर प्रयत्नों और प्रयोगों द्वारा इसे समझा जा सकता है। मार्क्स ने इन्हीं सतत नियमों और प्रयोगों के आधार पर समाजवाद को एक स्वप्न के स्थान पर मानवता का विज्ञान बना दिया। इसका प्रत्येक चक्कर वाद, प्रतिवाद और संवाद के त्रेत से मिलकर बना है; प्रत्येक कड़ी पहली कड़ी का विलोम करती है परन्तु साथ ही नयी कड़ी को जन्म देती है और उसे ऊंचा उठा देती है।

मार्क्स द्वारा वर्णित इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के प्रमुख पहलू निम्न हैं-

1. उत्पादन मानव की सर्वोत्तम क्रिया- इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का सिद्धान्त इस साधारण सत्य से आरम्भ होता है, कि मानव को जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता है, शरीर ढकने के लिए कपड़ों की आवश्यकता है और रहने के लिए मकान

आदि की आवश्यकता है। मानव का अस्तित्व इस सफलता पर निर्भर करता है कि प्राकृतिक साधनों से वह अपनी आवश्यकतानुकूल कितना उत्पादन कर सकता। इसलिए उत्पादन मानव की सर्वोत्तम क्रिया है।

2. समाज हमेशा दो परस्पर विरोधी वर्गों में विभक्त रहा है- मार्क्स की धारणा है कि समाज अपने सभी सदस्यों को संतुष्ट करने अर्थात् सभी की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए पर्याप्त उत्पादन नहीं कर पाता। निर्धन लोगों में असन्तोष होने के कारण समाज में आन्तरिक दबाव और संघर्ष सदा बना रहता है। धर्म- जो दोषपूर्ण आर्थिक प्रणाली के प्रतिबिम्ब से अधिक कुछ नहीं- का प्रभाव व्यापक रहा और उत्पादक शक्तियों अर्थात् उत्पादन शक्तियों के स्वामियों ने उसका प्रयोग सर्वदा अपने हितों की सुरक्षा के लिए किया है। इसीलिए मार्क्स धर्म को "अफीम की गोली" कहता है। यह उस रूप में अफीम नहीं है कि यह एक ऐसी दवा की खुराक है जिसे शोषक शोषित को पिला देता है, बल्कि उस समाज में जहाँ मानव की आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती वहाँ 'धर्म' ही लोगों का अन्तिम सहारा है। परिणामस्वरूप समाज में हमेशा दो वर्ग विद्यमान रहे हैं। एक वह जिसके पास उत्पादन स्त्रोतों का स्वामित्व होने से सम्पन्न रहा और दूसरा वह जिसके पास उत्पादन के साधनों का अभाव होने से विपन्न रहा। एक शोषक बना गया दूसरा शोषित। मार्क्स कहता है कि उत्पादक वर्ग सर्वदा अपनी अधिमान्य स्थिति को बनाये रखने के लिए सभी संस्थाओं- सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, कानूनी आदि- का प्रयोग किया है।

3. मानव इतिहास की छः अवस्थाएँ- जीवन की आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिए मानव जिन अवस्थाओं से गुजरा है मार्क्स ने उन्हें निम्न छः भागों में विभक्त किया है-

(i) आदिम साम्यवादी अवस्था- इसमें उत्पादन की शक्तियाँ बहुत कम थीं। इसमें भोजन प्राप्त करने का मुख्य स्त्रोत शिकार था। उसके साधन पत्थर, तांबे, कांसे, लोहे के बने हथियार थे। उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं था, स्वामित्व सामाजिक होता था। इस अवस्था में न कोई शासक था और न कोई शासित।

(ii) दास अवस्था- इसे दास पद्धति की अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में कृषि के विकास से दास प्रथा का विकास हुआ, जिससे समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया- स्वामी और दास।

(iii) सामन्तवादी अवस्था- इसमें मध्यम वर्ग का विकास होने से मानव तीन वर्गों में विभक्त हो गया- उच्च, मध्यम और भूदास। इतिहास में यह अवस्था तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी तक रही।

(iv) पूंजीवादी अवस्था- यह अवस्था सामन्त अवस्था के पतन और पूंजीवाद के विकास से प्रारम्भ होती है। इसमें भाप, बिजली तथा अन्य तकनीकी ज्ञान में विकास होने से क्रांतिकारी परिवर्तन हुए और समाज दो वर्गों में, पूँजीवादी और सर्वहारा वर्गों में विभक्त हो गया।

(v) सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की अवस्था- यह अवस्था पूंजीवाद के पतन से उदय हुई। इस अवस्था में उत्पादन के समस्त साधनों का सामाजीकरण कर दिया गया। इसमें सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद तब तक रहेगा जब तक पूँजीपतियों के अंतिम अंकुर खत्म नहीं हो जाते। इस अवस्था में वस्तुओं का वितरण आवश्यकता के अनुकूल नहीं होगा बल्कि कार्य की क्षमता के आधार पर होगा। पूर्व के प्रबल वर्गों के अधिनायकवाद की भांति सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद भी उसी प्रकार से दमनकारी होगा। राज्य उसी वर्ग का दमनकारी यन्त्र होगा जिसका नियंत्रण उत्पादन और उत्पादन शक्तियों पर है। इसमें पूँजीपतियों के प्रतिरोध को कुचलने के लिए तथा पूंजीवाद के अवशेषों को समाप्त करने के लिए वर्ग राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करेगा। इसमें अल्पमत बहुमत का दमन नहीं करेगा अपितु बहुमत अल्पमत का दमन करेगा।

(vi) साम्यवादी अवस्था- इस अवस्था का प्रादुर्भाव सर्वहारा की देखरेख में होगा। इसकी दो विशेषताएँ होंगी। एक, यह समाज वर्ग-विहीन, राज्य-विहीन समाज होगा। इसमें किसी प्रकार के वर्ग नहीं होंगे। इसमें कोई शोषक नहीं होगा और न कोई शोषित। इसमें राज्य का धीरे-धीरे लोप हो जायेगा। दूसरी, इसमें वितरण का सिद्धान्त होगा- " प्रत्येक से उसकी योग्यतानुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार।"

3. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त- मार्क्सवाद के सिद्धान्तो में अतिरिक्त मूल्य का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है।

अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त के मुख्य पहलू निम्नलिखित हैं-

1. मूल्य का अर्थ- साधारण भाषा में 'मूल्य' के दो अर्थ हैं। इसका एक अर्थ है 'किसी वस्तु का किसी एक व्यक्ति द्वारा उपयोग।' जैसे- प्यासे व्यक्ति के लिए पानी उपयोगी वस्तु है उसके लिए इसका मूल्य है। इसका दूसरा अर्थ तब उत्पन्न होता है 'जब किसी वस्तु को बाजार में बेचा जाता है अर्थात् जब कोई क्रेता किसी विक्रेता से कोई वस्तु खरीदता है। जिस मूल्य पर क्रेता विक्रेता से उस वस्तु को खरीदता है उसे उस वस्तु का विनिमय मूल्य कहते हैं।

2. उपयोग मूल्य और विनिमय मूल्य में अन्तर- मार्क्स 'उपयोग मूल्य' और ' विनिमय मूल्य' में भेद करता है। ' उपयोग मूल्य' किसी वस्तु के मानव आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में निहित होता है। यदि कोई वस्तु मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करती है तो उसका मानव के लिए उपयोग मूल्य है और यदि वह वस्तु मानव आवश्यकता की पूर्ति नहीं करती तो उसका मूल्य कुछ भी नहीं। विनिमय मूल्य वह अनुपात है जिसके आधार पर एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु को प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणत: यदि एक टन गेहूँ के बदले दो टन लोहा लिया जाता है तो गेहूँ के एक टन का विनिमय मूल्य लोहे के दो टन के बराबर है। जिस व्यक्ति को गेहूँ की आवश्यकता है और जिसको लोहे की आवश्यकता है उनके लिए गेहूँ और लोहा विनिमय मूल्य रखते हैं। यद्यपि दोनों वस्तुएँ मानव के लिए उपयोगी होने पर ही उनका विनिमय मूल्य सम्भव है फिर भी मार्क्स कहता है कि वस्तुओं का विनिमय मूल्य उनकी उपयोगिता अर्थात् उपयोग मूल्य पर निर्भर नहीं करता बल्कि

उनके उत्पादन में लगाये गये श्रम की मात्रा पर निर्भर करता है। किसी भी वस्तु का विनिमय मूल्य इसलिए होता है कि उसमें मानव श्रम खर्च किया गया है या नहीं।

3. अतिरिक्त मूल्य अर्थात् वस्तुओं के विनिमय मूल्यों और मजदूरों द्वारा प्राप्त मजदूरी में अन्तर- मार्क्स का कथन है कि जिस प्रकार प्राचीनकाल में दास या कृषक सेवा करते थे उसी प्रकार आज श्रमजीवी अपनी सेवाएँ अर्पित करते हैं जिसके लिए उन्हें कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता और जिसके द्वारा निर्मित मूल्यों को सम्पत्ति के स्वामी हड़प लेते हैं। पूंजीपति उत्पादन के साधनों के स्वामी होते हैं जिन पर मजदूर काम कर सकते हैं। मजदूरों के पास केवल अपना श्रम ही होता है जिसे वे ऐसे दामों में बेच देते हैं जो उन्हें तथा उनके परिवार को केवल जीवित रहने के लिए ही पर्याप्त होता है। श्रमिकों द्वारा उत्पन्न वस्तु के विनिमय मूल्य और उनके द्वारा प्राप्त मजदूरी में जो अन्तर है मार्क्स उसे अतिरिक्त मूल्य कहता है। मार्क्स के शब्दो में, " अतिरिक्त मूल्य उन दो मूल्यों का अंतर है जिसे यह वास्तव में पैदा करता है और वह वास्तव में पाता हें। " यह वह मूल्य है जिसे पूंजीपति बिना मुआवजे के और मजदूरों के श्रम से प्राप्त करता है।

मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त को एक उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। मान लो कि एक मजदूर एक कारखाने में आठ घण्टे काम करके एक वस्तु का उत्पादन करता है। जिसका विनिमय मूल्य 8 रु. है। परन्तु मजदूर को दिन भर की मजदूरी केवल 2 रु. मिलती है। स्पष्ट है कि मजदूर ने अपनी मजदूरी पैदा करने के लिए केवल 2 घण्टे का समय लिया। बाकी 6 घण्टे कार्य करके उसने जो 6 रु. मूल्य का उत्पादन किया उसे उसका मालिक हड़प कर गया। इसी 6 रु. के मूल्य को जिसे मजदूर ने तो उत्पन्न किया और जिसे पूँजीपति ने हड़प कर लिया मार्क्स अतिरिक्त मूल्य कहता है।

4. वर्ग संघर्ष- वर्ग संघर्ष मार्क्सवाद का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। मार्क्स यह मानता है कि मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।

वर्ग संघर्ष पर मार्क्स के विचार मुख्यत: निम्न प्रकार से हैं-

वर्ग संघर्ष का अर्थ- इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का सिद्धान्त यदि सामाजिक परिवर्तन के लिए आवश्यक सिद्धान्त है तो वर्ग-संघर्ष उस परिवर्तन का आवश्यक यन्त्र है। इसे भौतिकवादी व्याख्या का आवश्यक परिणाम भी कहते हैं। वर्ग-संघर्ष यह बताने का प्रयास करता है कि इतिहास के विकास में समाज का एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन कैसे हुआ? मार्क्स का विश्वास है कि यह विकास दो विरोधी वर्गों के निरन्तर संघर्षों से हुआ है। यह संघर्ष कभी दास का स्वामी से, कभी निर्धन का धनी से और कभी शोषित का शोषक से होता रहा है। इस प्रकार के वर्गों में कोई समझौता या सहयोग नहीं हो सकता। अन्त में यह संघर्ष स्पष्टत: पूँजीपति और सर्वहारा में होता है जिसमें सर्वहारा वर्ग की विजय अवश्यम्भावी है।

संघर्ष, पूँजीपति और सर्वहारा वर्ग का अर्थ- संघर्ष का अर्थ यह है कि समाज में एक वर्ग ऐसा अवश्य होता है जिसकी आवश्यकताएँ पूरी न होने से वह सर्वदा असन्तुष्ट रहता है। इस असन्तोष को वह वर्ग समय-समय पर कई रूपों में असहयोग द्वारा या हड़ताल या

अन्य किसी रूप से अभिव्यक्त करता रहता है और जब असन्तोष असहनीय हो जाता है तो द्वन्द्ववाद के आधार यह संघर्ष क्रान्ति का रूप ले लेता है जिसमें शोषित वर्ग की विजय और शोषक वर्ग का पतन अवश्यम्भावी है।

(अ) पूँजीपति- पूँजीपति वह है जो उत्पादन के साधनों- भूमि, कल-कारखाने, कच्चे माल, कार्यशील पूँजी - का स्वामी है। यह वर्ग समाज का शक्तिशाली, ऐश्वर्य तथा विलास में डूबा हुआ वर्ग है। उत्पादन के साधनों का स्वामी होने से यह दूसरों को वैसा करने के लिए बाध्य करता है जैसा वह चाहता है। यह वर्ग नियुक्ति, उत्पादन, निवेश, कीमतों आदि के क्षेत्र में निर्णायक शक्ति रखता है। इस वर्ग का विशेष गुण यह है यह अपने लाभ को बढ़ाने के लिए श्रमिकों के श्रम, समय, उत्पादन और परिवार का शोषण करता है। यह वर्ग अतिरिक्त मूल्य को हड़प करने वाला परजीवी है। यह वर्ग सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि अपने लाभ की वृद्धि के लिए उत्पादन करता है।

(ब) सर्वहारा वर्ग- सर्वहारा वर्ग औद्योगिक श्रमिक वर्ग है। यह मजदूरों का वह आधुनिक वर्ग है जिसके पास उत्पादन के अपने साधन या यन्त्र नहीं और जिसे जीवित रहने के लिए अपनी श्रम शक्ति को मजबूरन बेचना पड़ता है। जिस यन्त्र पर या जिस कारखाने में श्रमजीवी कार्य करता है वह उसका नहीं। वह यन्त्र या कारखाना बुर्जुआ वर्ग में से किसी एक बुर्जुआ का है। अत: श्रमजीवी को श्रम के बाजार में अपने आपको मजबूरन फेंकना पड़ता है अर्थात यदि श्रमजीवी तथा उसके परिवार को जीवित रहना है तो उसे अपने श्रम (या अपनी योग्यता) को बेचना पड़ेगा। यह वर्ग स्पष्टत: बुर्जुआ वर्ग की दया पर निर्भर है। श्रमजीवी को वह मजदूरी स्वीकार करनी पड़ती है जो उसे बुर्जुआ द्वारा दी जाती। उसे अपनी मजदूरी निर्धारित करने का अधिकार नहीं। वह बुर्जुआ की इच्छा और बाजार मूल्य पर निर्भर करती है। इस तरह श्रमजीवी अपनी पसन्द का जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उसकी पसन्द तो बुर्जुआ की पसन्द हैं पूँजीवादी की प्रकृति या पूँजीवाद स्वयं अपनी कब्र खोदता है।

वर्ग संघर्ष के आधार पर मार्क्स का यह विश्वास है कि पूँजीवाद की प्रकृति आत्मनाशी है। पूँजीवाद की लाभ की प्रवृत्ति, अतिरिक्त मूल्य को अकेले हड़प करने की उसकी अभिलाषा, पूँजी का केन्द्रीकरण (एकाधिकार पूँजी) और वित्त पूँजी, श्रमिक वर्ग की बढ़ती हुई बेरोजगारी, कम रोजगारी, गलत रोजगारी तथा इसके फलस्वरूप उसकी निर्धनता, श्रमजीवियों का शोषण, पूँजीपतियों का श्रमिकों से अन्यायपूर्ण और अत्याचारपूर्ण व्यवहार: माँग से अधिक पूर्ति, जरूरत से अधिक उत्पादन, बाजार का माल से पाटा जाना, आर्थिक संकट, विश्व के बाजारों की माँग, यातायात और संचार साधनों का विकास, श्रमिकों में वर्ग चेतना का विकास तथा उनमें सहयोग की भावना उत्पन्न होना- ये सब मिलकर पूँजीवाद के आवश्यक परिणाम हैं और ये सब मिलकर पूँजीवाद की कब्र को तैयार करते हैं।

ऐंजिल्स ने लिखा है कि "चूकिं राज्य केवल अस्थायी संस्था है जिसका प्रयोग क्रान्ति में विरोधियों के बलपूर्वक दमन के लिए किया जाता है, इसलिये स्वतन्त्र तथा लोकप्रिय राज्य की बात करना सर्वथा हास्यप्रद होगा। जब तक सर्वहारा वर्ग को राज्य की आवश्यकता है उसे

उसकी स्वतन्त्रता के हितों के लिए नहीं, वरन् विरोधियों का दमन करने के लिए है और जब स्वतन्त्रता की बात करना सम्भव हो जाता है तब राज्य का अस्तित्व नहीं रह जाता।"

साम्यवाद का प्रादुर्भाव सर्वहारा की देख-रेख में होगा। मार्क्स ने साम्यवादी व्यवस्था की विस्तृत व्याख्या नहीं की। फिर भी इसकी दो मुख्य विशेषतायें होंगी; एक, यह वर्गविहीन, राज्यविहीन सामाजिक व्यवस्था होगी; इसमें किसी प्रकार के वर्ग नहीं होंगे; इसमें न कोई शोषक होगा न कोई शोषित; इसमें राज्य का धीरे-धीरे लोप हो जायेगा। जब वर्ग नहीं रहेंगे तो राज्य की आवश्यकता नहीं रहेगी। दूसरी, इस समाज में वितरण का सिद्धान्त, "प्रत्येक से उसकी योग्यतानुकूल और प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुकूल" पर आधारित होगा।

6.6.2 गाँधी और मार्क्सवाद

कुछ विचारक गाँधी को मार्क्सवादी मानते हैं क्योंकि गाँधी मार्क्स की तरह, वर्ग विरोध, वर्ग विहीन, शोषण विहीन एक समता मूलक समाज की स्थापना करना चाहते हैं। दोनों के साध्य समान है साधन अलग-अलग हैं।

मार्क्स के समान गाँधी सामाजिक क्रान्ति में विश्वास करते थे और दोनों के विचारों में हमें द्वन्द्ववाद का सिद्धान्त दिखायी देता है। परन्तु मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद और गाँधीवादी द्वन्द्ववाद में एक मूल अन्तर है। मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद घटनाओं के एक ऐतिहासिक क्रम से सम्बन्ध रखता है और मानव से अपेक्षा करता है कि वह उसके अनुसार अपने आपको ढाल ले, गाँधी का द्वन्द्ववाद, इतिहास के विकास के पूर्व निर्धारित नियमों से नहीं व्यक्ति के स्वयं अपने द्वारा निर्धारित कार्यों से सम्बन्ध रखता है। मार्क्स ने हीगल के द्वन्द्ववाद के सिद्धान्त को सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में कार्यान्वित करते हुए यह बताने का प्रयत्न किया है कि "आदर्श और यथार्थ के बीच चलने वाली क्रियाओं- प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप एक नयी स्थिति का जन्म होता है जिनमें से उन साधनों की उत्पत्ति होती है जिनमें उस स्थिति को बदल डालने का सामर्थ्य है।" मार्क्स ने इसे वर्ग संघर्ष का नाम दिया। गाँधी मार्क्स की इस बात से सहमत नहीं थे कि व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले कार्य इतिहास के द्वारा पहले से निर्धारित कर दिये गये थे, अथवा केवल वर्ग-संघर्ष के रूप में ही उनकी अभिव्यक्ति सम्भव थी, अथवा हिंसा के द्वारा उनका समाधान किया जा सकता था। गाँधी ने अपने द्वन्द्ववाद के द्वारा एक ऐसी प्रक्रिया या तकनीक, का आविष्कार किया जिसका प्रयोग इतिहास के किसी एक युग-विशेष में नहीं परन्तु मानव संघर्ष की किसी भी परिस्थिति में किया जा सकता है और जो एक ऐसी प्रक्रिया है जो मूलतः सृजनात्मक और रचनात्मक है।

मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद के समान गाँधीवादी द्वन्द्ववाद भी 'अस्वीकृति की अस्वीकृति' के सिद्धान्त पर आधारित है, यद्यपि गाँधी ने इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। 1920-22 के असहयोग आन्दोलन में जब गाँधी ने लोगों से विदेशी कपड़ों का परित्याग करने और उन्हें जला देने को कहा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उसे एक नकारात्मक कार्यवाही बताया, तो गाँधी ने उसका उत्तर यह कहकर दिया कि भारत में अंग्रेजी राज्य स्वयं इस देश के लोगों की व्यापक अस्वीकृति पर आधारित था, और इस नकारात्मक सम्बन्ध के स्थान पर जब तक दोनों

देशों में स्वेच्छा के सम्बन्ध स्थापित नहीं होंगे, भारत सच्ची स्वतन्त्रता अथवा समानता को प्राप्त नहीं कर सकेगा। उनका कहना था कि सत्य की प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए असत्य को अस्वीकार करना आवश्यक होता है।

मार्क्स और गाँधी के विचारों में मतभेद का मूल कारण उद्देश्यों को लेकर नहीं बल्कि उन्हें प्राप्त करने के साधनों के सम्बन्ध में था।

6.7 सारांश

महात्मा गाँधी आधुनिक मानव समाज के युग निर्माता, समाज सुधारक, राजनीतिक व दार्शनिक विचारक रहे हैं। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से गाँधी के उदारवाद सम्बन्धी विचार, आदर्शवाद सम्बन्धी विचार, अराजकतावाद सम्बन्धी विचार एवं मार्क्सवाद सम्बन्धी विचारों को समझ सकते हैं। गाँधी और अन्य विभिन्न विचारधाराऐं सभी मानव के लिए हैं। मानव का स्वतंत्र और स्वस्थ विकास करना चाहती हैं। मानव का कल्याण करना चाहती है। मानव को शोषण, दासता व कष्टों से मुक्ति दिलाना चाहती हैं। गाँधी जी के विचार सम्पूर्ण मानव समाज के लिए पहले से ज्यादा उपयोगी हैं। गाँधी आज मानव समाज के मुक्तिदाता के रूप में जाने जाते हैं।

6.8 अभ्यास प्रश्न

1. महात्मा गाँधी के बहु-आयामी व्यक्तित्व की विलक्षणता का परीक्षण कीजिए।
2. गाँधी चिन्तन और उदारवाद का तुल्नात्मक विश्लेषण कीजिए।
3. गाँधी चिन्तन और आदर्शवाद का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।
4. गाँधी चिन्तन और अराजकतावाद की समानताओं और असमानताओं पर प्रकाश डालिए।
5. गाँधी और मार्क्स के चिन्तन का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।
6. “गाँधी के विचारों में विभिन्न विचारधाराओं के दर्शन हैं।" परीक्षण कीजिए।

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोपीनाथ धवन : दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
3. सिंह, रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986
4. मशरूवाला, के. जी., गाँधी एण्ड मार्क्स, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1960
5. ओस्टरगार्ड, जेफरी एवं क्यूरेल, मेलविल्ले, द जेन्टिल अनार्किस्ट : ए स्टडी ऑफ द लीडर्स ऑफ द सर्वोदया मूवमेंट फोर नॉनवायलेन्ट रेवल्यूशन इन इण्डिया, क्लेरिन्डन प्रेस, ऑक्सफॉर्ड, 1971
6. नायर, सी. शंकरन, गाँधी एण्ड अनार्की, साऊथ ऐशिया बुक्स, कोलम्बिया, 1995

इकाई - 7

सत्याग्रह का दर्शन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 परिभाषा

7.3 सत्याग्रह की अवधारणा और दर्शन का उदय

7.4 सत्याग्रह के सिद्धान्त

7.5 सत्याग्रह की विशेषतायें

7.6 सत्याग्रह का उद्धेश्य एवं परिसीमा

7.7 सत्याग्रही द्वारा अपनाये जाने वाले वृत एवं नियम

7.8 सत्याग्रह और दुराग्रह

7.9 सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध

7.10 सारांश

7.11 अभ्यास प्रश्न

7.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप निम्नलिखित विषयों पर विचार जान सकेंगे -

- सत्याग्रह का अर्थ।
- सत्याग्रह का उदय।
- सत्याग्रह दर्शन के उधारभूत सिद्धान्त।
- सत्याग्रह और अन्य प्रतिरोध की अवधारणाओं और पद्धतियों जैसे निष्क्रिय प्रतिरोध और दुराग्रह में अन्तर।

7.1 प्रस्तावना

गाँधीजी अहिंसक शान्तिपूर्ण प्रतिरोध के महान राजनीतिक विचारक थे। राजनीतिक विचारकों की भाँति महात्मा गाँधी ने भी अनेक ऐसे विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं जो परम्परागत रूप में राजनीतिक क्षेत्र के माने जाते है। उनके चिन्तन की यह खास बात थी कि उन्होनें इन विषयों की क्रान्तिकारी व्याख्या की और विश्व को राजनीतिक संरचानाओं और प्रकियाओं से सम्बन्धित विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में अनूठा दर्शन दिया। इस दर्शन में उन्होंने आदर्श संरचानाओं और प्रकियाओं से संबन्धित राजनीतिक लक्ष्यों को प्रतिपादित किया और उनकी प्राप्ति के साधन भी बताये। गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित अनेक राजनीतिक अवधारणाओं में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है सत्याग्रह।

सत्याग्रह सम्बन्धी उनका दर्शन उनकी सक्रीय राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक गतिअवधियों के साथ उद्भव होता रहा। सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रिका में और तत्पश्चात भारत में एक अवधारणा और तकनीक के रूप में सत्याग्रह गाँधीजी के विचारों और क्रियाओं से पोषित और पल्लवित होता रहा। गाँधीजी ने अनेक राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक मुद्दों को लेकर विभिन्न सत्याग्रहों का नेतृत्व किया। जो सफलता उन्हे मिली वह इस बात का संकेत है कि सत्याग्रह के माध्यम से समाज में विद्‍यमान अनेक समस्याओं का प्रभावी निस्तारण किया जा सकता है यदि उसे अपनाने वाला व्यक्ति सत्याग्रह की मूल बातों को ध्यान रखे और सच्चे सत्याग्रही के जो गुण गाँधीजी ने बताये हैं उनका वह अनुकरण करे।

7.2 परिभाषा

सत्याग्रह संस्कृत भाषा के दो शब्द 'सत्' और 'आग्रह' को जोड कर बता है। इसका शाब्दिक अर्थ है ' सत्य के लिए आग्रह करना', 'सत्य पर अड़े रहना' और 'सत्य का अनुसरण करना'। उपर्युक्त अर्थ से एक और अर्थ निगमनान्मक रूप से निकाला जा सकता है और वह है 'असत्य का विरोध' करना। चूँकि समाज मे फैले अनेक अन्याय का आधार असत्य पर टिका हुआ है इसलिए सत्याग्रह 'अन्याय का विरोध ' भी करना है। 'सत्' का मतलब है ' जो कुछ भी वास्तविकता में है'। गाँधीजी की सत्' की धारणा ग्रह थी कि इस जगत में सत्य के अतिरिक्त और कुछ वास्तविकता में अस्तित्व नहीं रखता, सत्य के अतिरिक्त अन्य सब कुछ मिथ्या है। 'सत्य' सम्बन्धी गाँधीजी के विचारों से इसके अनेक अन्य अर्थ भी निकलते है। जैसे शुद्धता, वास्तविकता, ज्ञान, उचित, स्वयं विद्‍यमान सार, वैध, अमोध, इमानदारी, जैसा होना चाहिए, इत्यादि। 'सत्' को सम्पूर्ण सृष्टि को संचालित करने वाली परम शक्ति के रूप में भी स्वीकारा गया है और गाँधीजी परम शक्ति को ईश्वर के रूप में भी मानते है। ' सत्' उनके लिए सर्वोच्च और सर्वसमाहित करने वाला सिद्धान्त भी था जो मिगमनान्मक तर्क के आधार पर अन्य सभी मानवीय मूल्यों और श्रेष्ठताओं से प्राथमिक भी है। गाँधीजी का तर्क था कि क्योंकि सृष्टि परम सत् को प्रतिबिंबित करता है इसलिए इहलौकिक व्यवस्थाओं और मनुष्यों को भी अपना सम्पूर्ण अस्तित्व और क्रियाओं को इसी के अनुसरण में ढालना चाहिए।

'आग्रह' का अर्थ है 'प्रबल इच्छा रखना'। 'किसी को पकडे रखना', 'स्थिर रहना', 'अडिग अनुसरण करना', 'लगाव दृढ़तापूर्वक, रखना' और 'बल दना ' आग्रह के अन्य अर्थ हैं। निगमनात्मक निष्कर्ष से यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के लिए वह मूल्य अथवा वस्तु जिसके लिए वह आग्रह कर रहा है परम महत्व रखता है और उसे प्राप्त करने के लिए वह हर त्याग और प्रयास करने के लिए तैयार है।

इस तरह जब सत्' और 'आग्रह' की संधि से सत्याग्रह बनता है और ऐसे में इसका अर्थ निकलता है सत्य का आग्रह करना। सत्याग्रह इस तरह किसी विषय, वस्तु अथवा मूल्य को सत्य का प्रतिबिंब मानते हुए उसकी प्राप्ति के लिए दृढ निश्चयी होकर हर प्रकार का त्याग करने और श्रेष्ठ यथोचित प्रयास करने का सिद्धान्त भी है और पद्धति भी। गाँधीजी का कहना था कि जब कोई व्यक्ति सत्य के लिए निरन्तर आग्रह करे और इस अग्रह पर वह अडिग रहकर हर प्रकार का त्याग करने के लिए तत्पर रहे तो ऐसी स्थिति में एक प्रबल नैतिक शक्ति

का विकास होता है जो संलग्न सभी व्यक्तियों का उत्थान करती है। यह सत्याग्रह का अभ्यास करने वालों का और उन विरोधयों का भी उत्थान करती है जिनके विरोध में सत्याग्रह किया गया है। इस तरह सम्पूर्ण पक्षों का उत्थान और कल्याण की भावना सत्याग्रह के मूल में निहित है। सत्याग्रह में जिस तरह 'सत्य' को व्यापक अर्थ में समझा गया है उसी तरह 'आग्रह' कोई विशेष व्यक्ति या समूह के हित तक न सीमित रहकर सम्पूर्ण समाज और परोपकारी दृष्टिकोण से अभिभूत है।

चूँकि 'सत्य' का निगमनात्मक निष्कर्ष असत्य का विरोध भी है, इसलिए सत्याग्रह निगमनात्मक रूप से एक नकारात्मक रूप भी लिए हुए है और वह है हर असत्य के रूप में प्रतिबिंबत व्यवस्था और प्रकिया का विरोध करना। परन्तु यह नकारात्मक भाव से कई गुणा ज्यादा महत्व गाँधीजी के लिए उन सकारात्मक प्रयासों का है जो व्यवस्थाओं प्रक्रियाओं और मनुष्यों को असत्य से सत्य की और ले जाने के लिए तत्पर हैं। इसलिए सत्याग्रह में अनेक मूल्य जैसे अहिंसा, प्रेम, परोपकार, आत्मपीड़ा, आत्मसंयम, इत्यादि हैं जो सकारात्मक अवस्थाओं को प्रस्फुटित करते हैं और उन्हे पोषित और पल्लवित करते हुए श्रेष्ठता की ओर ले जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सत्याग्रह से गाँधीजी का अभिप्राय सत्य एवं न्याय के रास्ते पर चलना तथा असत्य व अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करना है। यह संघर्ष नैतिक और अहिंसात्मक संघर्ष है जिसमे शुद्ध अथवा नैतिक साधन का प्रयोग किया जाएगा और मन, वचन और कर्म से हिंसा को त्याग कर अहिंसा को एक सिद्धान्त के रूप मे स्वीकार किया जाएगा। सत्याग्रही कर्ता और कार्य में भेद करते हुए यह पाप अथवा अन्याय को समाप्त करना चाहता है पापी अथवा अन्यायी को नहीं।

7.3 सत्याग्रह की अवधारणा और दर्शन का उदय

जब गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका के लिये रवाना हुये थे, उन्हें नयी जगह पर मिलने वाली बाधाओं व अपमान का कोई अंदेशा नहीं था। उस समय दक्षिण अफ्रीका में सामान्य स्थितियाँ अश्वेत व्यक्ति के लिए प्रतिकूल थीं। अश्वेत व्यक्ति पर श्वेत व्यक्ति का प्रभुत्व सामान्य बात समझी जाती थी। अल्पसंख्यक होने के बावजूद, श्वेत लोगों के दिमाग में प्रजातीय श्रेष्ठता की भावना भरी थी। उनकी बेरोकटोक राजनीतिक शक्ति ने उनकी इस भावना को और बढ़वा दिया। उनके व्यवहार में घंमड व अश्वेतों के प्रति नफरत झलकती थी। अश्वेतों के प्रति नफरत की भावना तब और बढ़ गई जब श्वेतों ने सोचा कि संसाधनों से परिपूर्ण दक्षिण अफ्रीका उपमहाद्वीप में अश्वेत अपनी संख्या के बल पर श्वेतों को उनकी लाभदायक स्थिति में हानि पहुंचा सकते है। अपने आप को इस देश से बाहर निकाले जाने की संभावनाओं को ध्वस्त करने के लिये श्वेतों ने अश्वेतों को अपना आज्ञापालक व आश्रित बनाने की योजना बनाई। इसी साधन से वे इस संसाधनों से परिपूर्ण उपमहाद्वीप में अपने शासन को जारी रख सकते थे। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये तथा वहां के विधिक अधिकारियों के सहयोग से अनेक ऐसे कानून लागू कर दिये जिससे अश्वेतों पर मुश्किलों का पहाड़ टूट पडा। अधिवास तथा नागरिक जीवन, कानून व प्रशासन, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, व्यापार, स्वास्थ्य, जीवन, आजादी व सम्पत्ति इन सभी मामलों में प्रजातीय पहचान के आधार पर लोगों को अलग-थलग करने की नीति का

पालन किया जाने लगा। अश्वेतों को अल्पसंख्यक श्वेतों के पूर्णत: अधीन करने के उद्देश्य से उन्हें किसी भी कानून का उल्लंघन किये जाने पर कडा से कड़ा दण्ड दिया जाने लगा।

यद्यपि ये कानून मूल अफ्रीकी अश्वेतों के लिये बनाये गये थे तथापि बाद में इनका उपयोग दक्षिण अफ्रीका में रह रहे अन्य अश्वेतों पर भी किया जाने लगा। इन अश्वेतों में भारतीय मूल के अनुबंधित व स्वतन्त्र मजदूर, कुछ व्यापारी व उनके सहायक शामिल थे। उद्योग स्थलों व खनन क्षेत्रों में काम करने वाले ये अनुबंधित मजदूर अर्ध-गुलामी का जीवन जी रहे थे। दुर्व्यवहार के कारण अपना मालिक बदलना इनके लिये बहुत मुश्किल था। अपने अनुबन्ध के निर्धारित वर्षों के बाद अनुबन्ध का नवीनीकरण न कराने पर तो इनकी मुश्किलें और बढ़ जाती थी। कुछ भारतीयों ने जब व्यापार व वाणिज्य में मामूली सफलता हासिल की तो यूरोपीय व्यापारी उनसे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने पुरजोर माँग उठाई कि अपने अनुबन्ध का नवीनीकरण न कराने वाले भारतीयों को वापिस उनके देश भेज दिया जावे। मताधिकार छीनने के प्रयास भी किये गये। लाइसेंस नीति लागू होने से भारतीयों तथा अन्य गैर-यूरोपिय व्यापारियों के लिये व्यापार करना मुश्किल तथा महँगा हो गया। इसी प्रकार यूरोपीय भाषा परीक्षा उत्तीर्ण करने की अनिवार्यता लागू करके दक्षिण अफ्रीका आने की इच्छा रखने वाले अनेक व्यापारियों के रास्ते को प्रबलता से रोक दिया गया।

कानूनी बाधाओं के अतिरिक्त भारतीयों को अनेक सामाजिक अशक्तताओं का सामना भी करना पडा। उनके बारे में अपमानजनक टिप्पणियां की जाने लगी। यहां तक कि उन्हें फुटपाथ पर चलने व रात नौ बजे बाद घर से बाहर रहने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। रेलगाडियों में उन्हें अलग डिब्बों में यात्रा करनी पडती थी तथा ट्रान्सवाल जैसे राज्यों में उनके लिये प्रथम व द्वितीय दर्जे की रेल्वे टिकिट ही जारी नहीं की जाती थी।श्वेत यात्री द्वारा विरोध किये जाने पर उन्हें बेहद अपमानजनक रूप से बाहर फेंका जा सकता था। यात्री डिब्बों में तो कभी-कभी उन्हें पावदान पर खडे होकर, यात्रा करने पर मजबूर किया जाता था। यूरोपीय होटलों मे उनके लिये ठहरने व भोजन की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। आरेन्ज फ्री स्टेट के श्वेत उपनिवेशिकों ने भारतीयों को किसी भी प्रकार का व्यापार करने से रोकते हुए उन्हें अपने राज्य से बाहर कर दिया। ट्रान्सवाल जैसे अन्य राज्यों में उनके लिये रहने व व्यापार करने के लिये अलग स्थान, (गेटो) निर्धारित कर दिये गये जहां न्यूनतम नागरिक सुविधायें उपलब्ध थी।

फिर भी विदेशी धरती पर साधनहीन अल्पसंख्यकों के रूप में रहते हुये जीवनयापन की बाध्यताओं के कारण भारतीयों ने इस अपमान को सहन किया तथा इन सभी बाधाओं पर उदासीन रहने का भाव विकसित किया। अपमान सहते हुए भी उन्होंने केवल अपनी दैनिक आय पर ही ध्यान दिया।

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका जाने से पूर्व गाँधीजी को अश्वेत व्यक्ति के जीवन से जुडे प्रजातीय कलंक के बारें में जानकारी नहीं थी। अपने आगमन के कुछ ही दिनों के अन्दर उन्हें अनेक अपमानजनक स्थितियों का सामना करना पडा। इन अपमानजनक स्थितियों के अनुभवों से उनका दृढ़निश्चय बढा कि उन्हें हटाना है। यह काम उन्हें स्वयं के लिये नहीं अपितु पूरे भारतीय समुदाय के हित में करना था जो इन अपमानों का शिकार था। अच्छी वकालत चल रही थी, स्वयं के भौतिक उन्नयन के प्रयास चल रहे थे किन्तु गाँधी इनसे उपर उठ कर जन

सक्रियता के क्षेत्र में आ गये जहां उन्होंने सामान्य व्यक्ति व भारतीयों के सम्मान की रक्षा कार्य के लिये कार्य किया। बाद में उन्होंने परहितार्थ कार्य किये जिनमें कई वर्गों के लोग उनके साथ जुड़े। उनका मानना था कि जनसक्रियता के साथ-साथ यह कार्य पूर्ण होगा। भारतीयों को स्वयं भी पूर्णत: दोषमुक्त बनना होगा - आत्मा व शरीर की चिन्ताओं से ऊपर उठकर उन्हें सामाजिक हित व आध्यात्मिक़ता के बारे में सोचना होगा। जैसे गाँधी आध्यामिक उद्विकास की दिशा में आगे बढे और प्रजातिवाद के विरुद्ध संघर्ष में शामिल होते गये, उनके राजनीतिक दर्शन का क्षेत्र भी परिपक्व होता गया। उन्होंने प्रजातीय पूर्वाग्रह की नैतिक आधार पर निंदा की ओर जनकार्यकर्ता के रूप में दक्षिण अफ्रीका की स्थानीय सरकारों के विषय में खुल कर अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने उनकी भेदभावपूर्ण व अन्यायपूर्ण नीतियों की आलोचना की और उन्होंने इस बुराई के विरूद्ध भारतीय समुदाय को इकट्ठा करने का प्रयास किया। उन्होंने परिवेदनायें व्यक्त करने व उनके निराकरण मांगने के लिये उपलब्ध साधनों का भरपूर प्रयोग किया। चूंकि स्थानीय सरकारें अडियल थी, गाँधी के नेतृत्व में भारतीय समुदाय व स्थानीय सरकारों के बीच आमना सामना अपरिहार्य था। इस झगडे का परिणाम सत्याग्रह के जन्म के रूप में हुआ। सत्याग्रह का दर्शन व सक्रियता महात्मा गाँधी का इस संसार को एक महत्वपूर्ण योगदान है।

दक्षिण अफ्रिका में गाँधीजी ने प्रारम्भ में वहाँ अपनाये जा रहे रंगभेद नीतियों के विरूद्ध अपने नैतिक, विधि सम्मत और अहिंसक संघर्ष को कोई समुचित नाम नही दे पाये। आयरलैंड की महिलाओं के सिनफिन आंदोलन का प्रचलित शब्द "निष्क्रिय प्रतिरोध" के समीप अपने आन्दोलन होने के कारण, गाँधीजी ने अपने दक्षिण अफ्रिका के संघर्ष को "निष्क्रिय प्रतिरोध" नाम दिया। परन्तु शीघ्र ही उन्हे जब यह ज्ञात हुआ कि "निष्क्रिय प्रतिरोध" उनके आन्दोलन की मूल भावनाओं और मूल्यों से मेल नही रखता तो गाँधीजी ने वैकल्पिक नाम ढूँढना शुरू किया। निष्क्रियता उनके आन्दोलन का भाव कभी नही रहा इसलिए गाँधीजी ने शीघ्र अपने संघर्ष को "सक्रीय प्रतिरोध" कहा और इस प्रकार का सम्भोदन 1906 तक चलता रहा। उचित नाम की संतुष्टि उन्हें बाद में मिली। इण्डियन ओपीनियन में उन्होंने अपने पाठकों से अपने संघर्ष हेतु उपयुक्त नाम सुझाने के लिए प्रतियोगिता की घोषणा की और पुरूस्कार देने की बात रखी। अनेक सुझाव आए। उनके एक सहयोगी श्री मगनलाल गाँधी ने 'सदाग्रह' नाम सुझाया। 'सदाग्रह' से मगनलाल का अभिप्राय किसी नेक काम के लिए आग्रह करना तथा अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करना। गाँधीजी को मगनलाल का सुझाव अच्छा तो लगा और उन्होंने मगनलाल को घोषित पुरस्कार भी दिया, लेकिन सदाग्रह गाँधीजी के मन की बात पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर पाया। गाँधीजी ने और मन्थन कर अखिर में 'सत्याग्रह' का नाम स्वयं विकसित किया। इस प्रकार सत्याग्रह की शुरूआत तो दक्षिण अफ्रिका में 1893 में हो गयी थी परन्तु इस आन्दोलन और उसमे निहित दर्शन को नाम 'सत्याग्रह' 1907 में प्राप्त हुआ।

7.4 सत्याग्रह के सिद्धान्त

गाँधीजी का मानना था कि अन्याय और असत्य का विरोध किया जाना चाहिए। यह विरोध सक्रिय होना चाहिए और अहिंसक और शुद्ध साधनों के माध्यम से किया जाना चाहिए। उनका मानना था कि हिंसा से किसी भी समस्या का प्रभावी समाधान सम्भव नहीं है। हिंसा का

रास्ता अत: निष्प्रभावी और अनुपयोगी है। हिंसा का प्रतिउत्युतर भी हिंसा से न देकर अहिंसा से किया जाना चाहिए क्योंकि अहिंसा ही दीर्घगामी अच्छे परिणाम दिलाने मे सफल हो सकती है। सत्याग्रह पर अपने विचार व्यक्त करते हुए तथा अनेक सत्याग्रह को क्रियान्वित करने के दौरान गाँधीजी ने सत्याग्रह के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों की ओर इंगित किया है जो इस प्रकार है:-

7.4.1 सत्य पर हमेशा अडिग रहना चाहिए

गाँधीजी के लिए 'सत्य का साथ' सत्याग्रही का ढाल भी है और सर्वशक्तिशाली अस्त्र भी। सत्याग्रही का 'सत्य का साथ' के कारण अन्यों व्यक्तियों का उस पर विश्वास और आस्था बढ़ाता है। इसलिए अपने कार्यों में सत्याग्रही अन्यों का समर्थन जुटाने मे मदद करता है। गाँधीजी का मानना था कि सत्य का साथ देना उस परम शक्ति अथवा ईश्वर का साथ देना भी है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को सुनियोजित तरीके से नियन्त्रित करती है। सत्य ही विरोधियों के हृदय परिवर्तन कर उसे असत्य और अन्याय से दूर करने में कारगार सिद्ध होता है। सत्य ही उद्धेश्यों को औचित्यता प्रदान करता है और सत्य ही अन्तरात्मा की आवाज को प्रतिबिंबित करता है।

7.4.2 अहिंसा जीवन का सिद्धान्त बने

गाँधीजी के लिए परम सत्य की और अग्रसर होने के लिए अहिंसा का मार्ग जरूरी है। ईश्वर परम सत्य है जो सम्पूर्ण सृष्टि में निहित है। इस परम सत्य का आदर करना हिंसा को त्याग कर अहिंसक बनना है। गाँधीजी ने इस बात पर बल दिया कि अहिंसा व्यक्ति के जीवन में मात्र औपचारिकता या कायरता या व्यवहारिकता का परिचय नही होना चाहिए। अपितु उसे अहिंसा को दृढ विश्वास के साथ जीवन का सिद्धान्त मानकर अपनाना चाहिए। संकिर्ण अर्थो में अहिंसा का मतलब है मन, वचन एवं कर्म से किसी को हानि नही पहुँचाना। परन्तु गाँधीजी की अहिंसा की धारणा यहाँ तक सीमित नहीं है। अपितु वह इस बात पर बल देता है कि अहिंसा का अर्थ विरोधियों से प्रेम करना भी है ताकि उसे यह अभास हो कि जो प्रयास किया जा रहा है वह उसके कल्याण के लिए भी किया जा रहा है।

7.4.3 कर्म और कर्म करने वाले व्यक्ति में भेद करना

गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रह का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि उसे अपनाने वाला व्यक्ति विरोधी व्यक्ति, जो अन्याय कर रहा हो या असत्य का साथ दे रहा हो उसके कर्म से घृणा करे उस व्यक्ति से नहीं। अन्यायपूर्ण और असत्यपूर्ण कार्यों का अन्त होना चाहिए, ऐसा करने वाले व्यक्ति का नहीं। सत्याग्रह इस तरह इसाइयित में प्रचलित सिद्धान्त 'पाप से घृणा करो पापी से नही' पर आधारित है।

7.4.4 साध्य और साधन की पवित्रता

सत्याग्रह पवित्र उद्धेश्य, जो सत्य के साथ संगत हो उस पर महत्व देती ही है। साथ में इस बात पर भी बल दिया गया है कि जो साधन प्रयोग में लाए जा रहे हैं वह भी पवित्र हों। गाँधीजी मानते थे कि साध्य और साधन में घनिष्ट सम्बन्ध हैं। साधन निमार्ण अधीन साध्य

है। जैसा साधन प्रयोग किया जाएगा वैसा ही साध्य निर्मित भी होगा। इसलिए सत्याग्रह के संचालन में अहिंसक और नैतिक साधनों का प्रयोग गाँधीजी ने अपरिहार्य माना है।

7.4.5 आत्मपीड़ा सहना, पर पीड़ा नही देना

व्यापक अर्थ में अहिंसा को स्वीकारने के कारण गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रह में यह जरूरी हो जाता है कि विरोधी के साथ किसी प्रकार की हिंसा (मनसा,वाचा,कर्मण:) नही किया जाए। यदि विरोधी हिंसा करे तो भी उसे मुस्कराते हुए सहे और खुद पीडा सहते हुए उसे अपना स्नेह प्रदर्शित करना और उसके कल्याण के लिए काम करना। यही व्यवहार उसे आश्वस्त कर सकता है कि सत्याग्रही उसे किसी प्रकार का नुकसान पहुँचाना नही चाहता। विरोधी का विश्वास जीतना और उसका सहयोग प्राप्त करने के लिए इस सिद्धान्त की आत्मसात करना जरूरी माना गया है। गाँधीजी के अनुसार प्रेम अथवा स्नेह आधारित शक्ति दण्ड का भय दिखा कर प्राप्त किए जाने वाले शक्ति की तुलना में हजार गुणा ज्यादा प्रभावी और स्थायी है।

7.4.6 विरोधियों को भी अपने पक्ष में करने का प्रयास

सत्याग्रह विरोधियों को पराजित करने और स्वयं के विजयी होने की भावना से पृथक है। यह दोनों का एक साथ बेहतर स्थिति की और उद्भव होने की कामना करता है। विरोधी को अपने पक्ष में करना इसलिए जरूरी माना गया है। विरोधी को अपने पक्ष मे करने के लिए गाँधीजी ने अनेक साधनों के प्रयोग का समर्थन किया, जैसे अनुनय विनय, प्रार्थना, तर्क से समझाना, ईमानदार रहना, सत्य का साथ देना, हिंसा न करना, आत्मपीड़ा, त्याग की भावना रखना, सहिष्णु होना इत्यादि।

7.4.7 विरोधियों को असत्य और बुराई से दूर करने के लिए धैर्य और सहानुभूति रखना

यध्यपि गाँधीजी ने सत्याग्रह को बहुत ही सश्क्त और कारगार साधन माना, उन्होंने इस बात पर बल दिया कि विरोधियों में परिवर्तन लाने के लिए न केवल उसके प्रति सहानुभूति का भाव सदैव रखना जरूरी है अपितु धैर्य भी रखना जरूरी है। आक्रोश, अग्रता, कोध आदि सब को गाँधीजी ने हिंसा के स्वरूप माने और सत्य के विपरीत। अत: सत्याग्रह में इनके लिए कोई स्थान नही है।

7.4.8 आत्मिक विकास का स्वयं प्रयास करना।

साधन की पवित्रता के साथ-साथ गाँधीजी ने आत्मिक विकास पर भी बल दिया। उनका मानना था कि जितना शुद्ध और पवित्र सत्याग्रही होगा उसके द्वारा प्रयोग किए गए साधनों का प्रभाव भी उतना ही व्यापक होगा। इसी संदर्भ में गाँधीजी ने सत्याग्रही को एकादश महावृत अपनाने पर बल बल दिया। इन वृतों के अतिरिक्त प्रार्थना, उपवास और प्रायश्चित के द्वारा भी गाँधीजी ने सत्याग्रही को आत्मिक विकास करने की सीख दी। ऐसा विकास गाँधीजी के अनुसार कोई भी व्यक्ति कर सकता है, भले वह बूढ़ा, नारी, गरीब, निःशक्तजन, इत्यादि क्यों न हो। इसलिए गाँधीजी आम आदमी को भी सत्याग्रह करने के लिए सक्षम मानते हैं।

गाँधी ने कुछ मौलिक एवं आधारभूत सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान की जो सत्याग्रह अभियान के दौरान देखे जा सकते थे। गाँधी द्वारा सत्याग्रह अभियान को संचालित करने वाले मान्यता प्राप्त मौलिक नियमों में शामिल थे -

(1) जिन उद्देश्यों को प्राप्त करना है, वे और शिकायतें स्पष्ट और ठोस होनी चाहिए,
(2) हर समय आत्म-निर्भर होना चाहिए,
(3) सत्याग्रहियों में हमेशा शुरूआत करने की भावना होनी चाहिए,
(4) अभियान के उद्देश्यों, रणनीति एवं युक्तियों का प्रचार-प्रसार करना,
(5) माँगों की सत्य के साथ संगतता हो,
(6) कर अदायगी न करना, पाठशालाओं एवं सार्वजनिक संस्थाओं का बहिष्कार, सामाजिक बहिष्कार एवं स्वैच्छिक निर्वासन के रूप में असहयोग हो,
(7) सविनय अवज्ञा या चुनिंदा कानूनों का शांतिपूर्वक तरीके से अवज्ञा हो, तथा
(8) सरकार के कार्यों को हड़प लेना और सार्वजनिक कार्यों के संचालन हेतु समानान्तर सरकार की स्थापना करना।

सत्याग्रह के सिद्धान्तों की उपर्युक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह की तीन आधारभूत मान्यतायें हैं :-

(1) हिंसा को अहिंसा से ही समाप्त किया जा सकता है
(2) साधन की पवित्रता ही साध्य की पवित्रता को बनाये रखता है
(3) कर्ता और कार्य में भेद किया जा सकता है और ऐसा किया जाना चाहिए।

7.5 सत्याग्रह की विशेषतायें

सत्याग्रह सीमित अर्थो में किसी गलत नीति, कानून, व्यवस्था अथवा व्यवहार विशेष के विरूद्ध संघर्ष है जिसका उद्धेश्य गलत को ठीक करना है। व्यापक अर्थ में यह एक सोच है जिसमें नैतिक मूल्यों का अधिकाधिक संग्रहण करते हुए परम सत्य या ईश्वर की प्राप्ति करना जीवन का उद्देश्य है। साथ में हर उस असत्य या अन्याय का विरोध करना भी है जो स्वयं सत्याग्रही और उसके समाज के सर्वागीन विकास में बाधा है। सत्याग्रह के द्वारा अनेक अहिंसात्मक प्रयास से अन्याय या गलत कार्य करने वाले व्यक्ति को गलत या अन्याय के रास्ते से प्रथक करने का प्रयास किया जाता है। अन्त में सत्याग्रही ऐसे लोगों को भी अपने पक्ष मे करने और साथ मिलकर एक बेहतर जीवन अवस्था की ओर बढ़ने का यह उद्धेश्य रखता है। विभिन्न विद्वानों ने सत्याग्रह के अनेक विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। जेम्स लूथर एडम्स के अनुसार सत्याग्रह की निम्नलिखित विशेषतायें है:-

(1) यह अहिंसा पर आधारित है।
(2) इसमें गोपनीयता का अभाव है।
(3) यह किसी गलत नीति या कानून की उल्लंघना की बात करता है। ऐसे प्रयास न्याय व आपसी सहयोग की भावना से भी प्रेरित है।
(4) यह मानवीय कानून से ऊपर दैवीय अथवा नैतिक कानून की पालना के लिऐ है।

(5) यह अन्तिम विकल्प के रूप मे प्रयोग किया जाता है।

(6) यह अन्याय पर आधारित कानून में संशोधन अथवा उसकी समाप्ति के लिए किया जाता है।

(7) इसको अपनाने वाला व्यक्ति अपने कृत्य के लिए कानून द्वारा प्रस्तावित दण्ड को सहर्ष स्वीकार करने के लिए तैयार है।

7.6 सत्याग्रह का उद्धेश्य एवं परिसीमा

गाँधीजी द्वारा सत्याग्रह का दर्शन प्रस्तुत करते वक्त तथा उनके द्वारा सम्पन्न विभिन्न राजनीतिक व सामाजिक आन्दोलन से ज्ञात होता है कि सत्याग्रह अनेक प्रकार के उद्धेश्यों की प्राप्ति के लिए किए जा सकते हैं और ये उद्धेश्य अहिंसक साधनों के माध्यम से प्राप्त किये जा सकते हैं। दक्षिण अफ्रिका में गाँधीजी ने इसका प्रयोग वहाँ प्रचलित रंग-भेद नीति और उसके परिणाम स्वरूप विद्यमान आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक बुराइयों और अन्याय को समाप्त करने के लिए किया। भारत में उन्होंने यहाँ प्रचलित विभिन्न आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं और बुराइयों को दूर करने के लिए प्रयोग तो किया ही, इसके साथ-साथ व्यापक उद्देश्य जैसे सुशासन और स्वराज के मूल में निहित सिद्धान्तों अथवा मूल्यों की प्रतिरक्षा करने के लिए भी सत्याग्रह का प्रयोग किया। गाँधीजी के विभिन्न सत्याग्रह का व्यापक क्रियान्विति क्षेत्र इस ओर इंगित करता हैं कि यह सार्वजनिक मुद्दे, व्यक्तिगत अथवा आत्मशुद्धि, सामाजिक परिवर्तन, सर्वोदय इत्यादि लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। इस तरह यह कहीं भी और किसी प्रकार के अन्याय या असत्य के विरूद्ध प्रयुक्त किया जा सकता है। जहाँ नकारात्मक रूप से यह अन्याय रोकने का प्रयास करता है वहीं सकारात्मक रूप से यह समाज, समुदाय और व्यक्ति में उन सकारात्मक अवस्थाओं को सृजित और पोषित करने का प्रयास करता है जिससे उनका नैतिक और आध्यात्मिक कल्याण हो सके।

गाँधीजी ने सत्याग्रह के विशेष और सामान्य प्रकार के उद्देश्यों को स्वीकार करते है। उनके मतानुसार कुछ विशेष अवस्थाओं में जैसे ' सविनय अवज्ञा' के संदर्भ में, सत्याग्रह कभी-कभी ही प्रयोग किया जाना चाहिए और यह प्रयोग भी प्रारम्भ में एक व्यक्ति या कुछ विशेष प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा ही किया जाना चाहिए।

विशेष समस्या के दौरान प्रयुक्त सत्याग्रह द्वारा केवल उतने का ही माँग करना चाहिए जितना कि सत्य से वह मेल रखता हों। इसलिए सत्याग्रह द्वारा प्रस्तुत माँग एक समय में न्यूनतम भी है और अधिकतम। जब यह माँग को स्वीकार किया जाए तो गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रह को समाप्त किया जाना चाहिए। विशेष माँग को लेकर प्रारम्भ किए गए सत्याग्रह के दौरान उससे सम्बन्ध न रखने वाले किसी अन्य माँग को शामिल करने के खिलाफ गाँधीजी ने अपने विचार व्यक्त किए।

सत्याग्रह की सफलता के लिए जिस अन्याय के खिलाफ यह किया जा रहा है उसके दुशप्रभाव से पीडित समूह के सभी व्यक्तियों को अन्याय पूर्ण अवस्था के बारे में जागृत करने से उनकी चेतना का विकास करना भी सत्याग्रह का उद्देश्य होता है। जागृति सत्याग्रह की सफलता को सकारात्मक रूप से निर्धारित करती हैं। सत्याग्रह के दौरान जन समुदाय की सोच

भी सत्याग्रह के पक्ष मे करने के लिए प्रयास किया जाता है। विभिन्न अहिंसक साधनों के प्रयोग से जन-जागृति करके विशाल समुदाय को अपने पक्ष में करने का श्रम विरोधियों पर नैतिक दबाव डालने और उस अपने विचार और कार्य बदलने के किए प्रभावित करता है।

सत्याग्रह की परिसीमा की यदि बात किया जाए तो कहा जा सकता है गाँधीजी का सत्याग्रह सम्पूर्ण और सर्वव्यापी है। कोई भी नैतिक और दृढ निश्चयी, और अहिंसा में आस्था रखने वाला व्यक्ति, भले वह पुरूष हो या नारी, अमीर हो या गरीब, सवर्ण का हो या निःशक्त जन, इसका प्रयोग अन्याय के विरूद्ध कर सकता हैं। यह व्यक्ति, संस्था और राज्य या सरकार के विरूद्ध किया जा सकता है और यह एक या अल्पमत में व्यक्ति दूसरे या बहुमत में व्यक्तियों के अन्याय के विरूद्ध कर सकता है। सत्याग्रह अपने सगे सम्बन्धी और प्रियतम व्यक्तियों के विरूद्ध भी किया जा सकता है और समाज मे रहने वाले अन्य व्यक्तियों के खिलाफ भी किया जा सकता है। यह सरकार या राज्य के विशेष कानून अथवा अन्याय पूर्ण नीति के विरुद्ध किया जा सकता है। या

सम्पूर्ण राज्य या सरकार के विरूद्ध किया जा सकता है। गाँधीजी ने इस बात पर बल दिया कि सत्याग्रह का प्रयोग केवल उन मामलों में किया जा सकता है जो निजी न होकर सामुदायिक या सार्वजनिक या सामूहिक हित के हों।

ऐसा गाँधीजी ने इसलिए कहा क्योंकि उनके अनुसार सत्याग्रह में स्वार्थ का कोई स्थान नहीं है। अंत मे गाँधीजी के मतानुसार यह भी कहा जा सकता है कि सत्याग्रह का प्रयोग उन हालत में किया जा सकता है जब कोई ऐसा कार्य करने के लिए कहे जो अनैतिक और अन्यायपूर्ण हो विवेक और अन्तारात्मा की आवाज अनुसार अनुचित और अन्यायपूर्ण माना जा सकता है।

7.7 सत्याग्रही द्वारा अपनाये जाने वाले व्रत एवं नियम

गाँधीजी ने सत्याग्रह संबन्धी अपने विचारों को व्यक्त करते वक्त और कार्यों के दौरान सत्याग्रही के बारे में बहुत कुछ कहा है। इसमें आदर्श सत्याग्रही द्वारा अपनाये जाने वाले व्रतों के बारे में भी विचार सम्मिलित है। वृत का सीधा-सादा अर्थ है आत्म-नियन्त्रण या 'स्वयं द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करना'। अनेक धर्म जैसे हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि प्राय: सभी धर्मों में ऐसे यम-नियम बताये गये हैं जिन्हें धार्मिक जीवन व्यापन का अभिन्न अंग माना गया है। हिन्दू-धर्म में अनेक व्रतों का उल्लेख है और प्राचीनकाल से ही हिन्दू-धर्म के अनुयायी, विशेष कर स्त्रियों और कुछ अंशों में पुरुषों द्वारा भी इसका आचरण किया जाता है। जैन, बौद्ध और इस्लाम धर्म में भी व्रतों का प्रावधान है। गाँधीजी के लिए सत्याग्रही का अनुशासित होना अत्यन्त जरूरी है। गाँधीजी ने आदर्श सत्याग्रही के लिए निम्नलिखित व्रतों का उल्लेख किया है:-

7.7.1 सत्य के प्रति दृढ़ संकल्पित रहना।

गाँधीजी ने अपने व्रतों में सत्य को सर्वोच्च स्थान दिया है। गाँधी का यह दृढ़ मत था कि सत्य का पालन किसी भी परिस्थिति में वांछनीय है। ऐसा इसलिए जरूरी है क्योंकि सत्य के

अलावा बाकी सब कुछ असत्य या मिथ्या है। ऐसा मानते हुए गाँधीजी ने उत्कृष्ट मानव जीवन के लिए सत्य के अलावा बाकी सब कुछ को अनुपयोगी या बाधा उत्पन्न करने वाला माना है। गाँधीजी के अनुसार परम सत्य स्वयं को अनेक सापेक्ष सत्य के रूप में प्रतिबिंबित करती है सत्याग्रही को इन सापेक्ष सत्य के आधार पर परम सत्य या ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। गाँधीजी द्वारा जीवन की आध्यात्मिक प्राथमिकताओं का स्वीकार किए जाने के कारण उन्होंने सत्य की सर्वोच्च अवस्था को ईश्वर माना और मानव जीवन का लक्ष्य इस सर्वोच्च सत्य या ईश्वर की प्राप्ति माना।

7.7.2 अहिंसा को जीवन सिद्धान्त के रूप मे स्वीकार करना ।

गाँधीजी के अनुसार सत्य और अहिंसा एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। गाँधीजी के अनुसार परम सत्य या ईश्वर सम्पूर्ण सृष्टि में निहित है। वह मनुष्य में भी अन्तरात्मा के रूप में विद्यमान है। गाँधीजी के अनुसार सत्य या ईश्वर को स्वीकार करने वाले व्यक्ति के लिए यह अपरिहार्य बन जाता है कि वह हर उस तत्व का स्वीकार करे जिसमें सत्य या ईश्वर निहित है। यह केवल अहिंसा से ही संभव है क्योंकि हिंसा विघटनकारी और विनाशकारी शक्ति है। इसलिए गाँधीजी अहिंसा को जीवन सिद्धान्त के रूप मे स्वीकार करते थे। उनकी अहिंसा वीरों की अहिंसा थी, कायरों अथवा अवसरवादियों की नहीं। परन्तु उनका यह भी मानना था कि यदि कायरता और हिंसा के बीच चयन करने की विवशता हो तो वे हिंसा को अपनाना पसन्द करेंगे। उनके अनुसार कायर व्यक्ति कभी भी सच्चा सत्याग्रही नहीं बन सकता है।

अहिंसा की गाँधीजी ने व्यापक अर्थ में व्याख्या की और स्वयं स्वीकार भी किया। अहिंसा, मन, वचन और कर्म से चोट पहुँचाने तक सीमित नही थी अपितु अपने विरोधियों के प्रति अपार स्नेह प्रदर्शित करते हुए उसके हर सितम को सहकर उसका हृदय परिवर्तन करना है।

7.7.3 अस्तेय

अस्तेय संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है ' चोरी नही करना' अर्थात जो कुछ भी दुसरे व्यक्ति का है उसे हड़पने या अधिग्रहण का प्रयास न करना। अस्तेय में निहित 'चोरी न करने' का भाव न केवल वस्तु हड़पने का कार्य तक सीमित है अपितु इसमें इस प्रकार का सोच रखना भी सम्मिलित है। किसी दुसरे का हक छीनना या ऐसा सोचना भी अस्तेय सिद्धान्त के विरूद्ध माना जाता है। गाँधीजी भी सत्य और अहिंसा के प्रति व्यक्ति को मन, वचन और कर्म से प्रतिबद्ध होने की बात करते हैं। चोरी करना दूसरों को कष्ट पहुँचाना है और यह सत्य और अहिंसा के खिलाफ है। अस्तेय व्रत की व्यापक व्याख्या करते हुए गाँधीजी ने इसमें आमतौर पर समझा जाने वाला बाह्य अथवा शारीरिक चोरियों को ही नहीं बल्कि दूसरे की कीमत पर होने वाले सभी प्रकार के शोषण को सम्मिलित करते हैं। उन्होंने तो यह तक माना कि अनावश्यक रूप से कोई वस्तु लेना या रखना भी चोरी है और इसलिए अनावश्क कोई भी वस्तु नहीं रखनी चाहिए।

7.7.4 अपरिग्रह

अपरिग्रह अस्तेय अवधारणा से घनिष्ट रूप से संबन्धित है। इसमे ऐसे परित्याग का भाव है जो स्वयं की जरूरतों से ज्यादा रखने की सोच और प्रयास को अस्वीकार करता है। अपरिग्रह उतना ही रखने की अनुमति देता है जितना कि आवश्यक या महत्वपूर्ण है। गाँधीजी ने कहा कि इस व्रत का आदर्श दैनिक उपयोग की वस्तुओं का अनुचित संग्रह रोकना है। व्यक्ति को उतना ही संग्रह करना चाहिए। अपरिग्रह विचार गाँधीजी की ईश्वर में दृढ़ आस्था की परिणिति भी कहा जा सकता है। उनके अनुसार परमात्मा कभी, परिग्रह नहीं करता बल्कि उसमें विश्वास रखने वाले व्यक्ति की हर विकट परिस्थियों में भी मदद् करता है। उनके मतानुसर परिग्रह हिंसा ह और पूर्ण अहिंसा सर्वस्व, यहाँ तक शरीर का भी त्याग करने (मरने) के लिए तैयार रहने की बात करता है। पूर्ण अपरिग्रह भले ही अदर्श के रूप में व्यक्ति के जीवित रहते प्राप्त करना असंभव हो, परन्तु गाँधीजी के अनुसार हमें उसके लिए साधना में सचेष्ट रहना चाहिए। गाँधीजी ने नैतिकता विहीन, भौतिक सुखों का अधिकाधिक वृद्धि का प्रयास, स्व-केन्द्रित चिन्ता और अन्यों की उपेक्षा अथवा शोषण आधरित मानवीय गतिविधियों की कटु आलोचना की। वे चाहते थे कि प्रत्येक नागरिक अपरिग्रह का भाव धारण कर अनावश्यक प्रतिस्पर्धा और प्रकृति का अंधांधुन दोहन से बचे। वे सादा जीवन और उच्च विचार, परोपकार और सर्वोदय की कामना करते थे।

7.7.5 ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य का सामान्य अर्थ इन्द्रिय-निग्रह है। प्रचलित अर्थ में लोग इसे जननेन्द्रिय संयम के अर्थ में समझते हैं। गाँधीजी ने कहा कि ब्रह्मचर्य का मूल अर्थ है ब्रह्म की या ईश्वर या सत्य की साधना में संलग्न रहना, अर्थात तत्संबंधी आचार करना। गाँधीजी केवल जननेन्द्रिय संयम की बात नहीं करते बल्कि सभी शारीरिक और मानसिक संयम को आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार केवल ऐसा संयम ही मनुष्य को भौतिक संसार की चकाचौंध में फँसकर जीवन के नेक और आध्यात्मिक लक्ष्यों से दूर करता है।

7.7.6 अवसाद

गाँधीजी की ब्रह्मचर्य सम्बन्धी सोच केवल जननेन्द्रिय संयम तक सीमित नहीं है, यह सभी शारीरिक और मानसिक संयम को भी आवश्यक मानता है। उनके अनुसार मनुष्य की इन्द्रियाँ एक दूसरे से घनिष्ट रूप से संबन्धित है। आहार का भी विचारों पर प्रभाव पडता है और इसलिए स्वादेन्द्रिय पर नियंत्रण जरूरी है। स्वादेन्द्रिय पर नियन्त्रण ही अवसाद का व्रत है। उनका कहना था कि भोजन केवल शरीर को जीवित रखने के उद्देश्य से ही ग्रहण किया जाना चाहिए इसलिए उसे औषधि समझकर ग्रहण किया जाना चाहिए। गाँधी जी शरीर को ईश्वर अर्थात् सत्य की खोज का साधन मानते थे। इसलिये उन्होंने इस बात पर बल दिया कि आत्मा के विकास के लिये सादा भोजन आवश्यक है।

7.7.7 निडरता

अभय से गाँधीजी का तात्पर्य सभी प्रकार के भय से मुक्ति है - मौत, धन-दौलत लुटने, अप्रतिष्ठा, शस्त्र-प्रहार, दण्ड, इत्यादि। गाँधीजी का मानना था कि सत्य की खोज और अहिंसा की पालना के लिए व्यक्ति को निडर होना जरूर है। गाँधीजी के अनुसार निडर व्यक्ति ही नैतिकता का पालन कर सकता है। सदाचरण और सद्‌गुण के लिए अभय अपरिहार्य है। गाँधीजी शरीरिक और मानसिक बहादुरी की तुलना में नैतिक बहादुरी को प्रथमिकता देते थे। इसीलिए वे कहते थे कि साधारण मनुष्य, शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्ति, बूढ़े, नारी, इत्यादि भी सच्चे सत्याग्रही बन सकते हैं यदि वे निडरता से नैतिकता का पालन करें। निडरता, बिना प्रतिकार किए विरोधियों का कष्ट सहने और उनके प्रति स्नेह प्रदर्शित कर हृदय परिवर्तन कर उन्हे भी सत्य या सच्चाई के रास्ते पर लाने के लिए अत्यन्त आवश्यक माना। निडरतापूर्वक अहिंसा को अपना जीवन धर्म मानना ही अहिंसा के सच्चे पूजारी की पहचान है। गाँधीजी मात्रा की बजाय गुणवत्ता को महत्वपूर्ण मानते थे और सत्याग्रह को असीमित उपलब्धियों के साधन के रूप में देखते थे। इसलिए उन्होंने कहा कि "संख्याओं की शक्ति कायर की खुशी है। साहसी व्यक्ति आत्मगौरव के साथ अकेले ही लड़ते हैं।"

7.7.8 अस्पृष्यता उन्मूलन

गाँधीजी द्‌वारा प्रस्तुत आदर्श सामाजिक व्यवस्था को एक ऐसी सामुदायिक जीवन आधारित व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है जिसमें सत्य, अहिंसा, परोपकार, आत्मनिर्भरता, परस्पर सम्मान की भावना, इत्यादि जैसे मूल्य व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन का अभिन्न अंग है। यह व्यवस्था न्याय, समता, स्वतंत्रता और परस्पर सहयोग पर आधारित है। यह शोषणमुक्त समाज है जिसमें धार्मिक सहिष्णुता और सौहर्द सर्वत्र विद्‌यमान है। गाँधीजी ने भारत में वर्षो से विद्‌यमान वर्ण व्यवस्था को स्वीकारा परन्तु उसमें कालान्तर में आए विकृतियों को दूर करने पर भी बल दिया। गाँधीजी के अनुसार वर्ण व्यवस्था मूल रुप में समाज के सदस्यों की क्षमताओं एवं योग्यता के अनुसार उनके कर्त्तव्यों के विभाजन की वैज्ञानिक व्यवस्था है। गाँधीजी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति कुछ स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ लेकर जन्म लेता है और उसके कार्य सम्बन्धी योग्यता एवं क्षमता की कुछ निश्चित सीमायें होती हैं। इस स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ के अनुसार गाँधीजी ने आनुवांशिक तत्त्व को वर्ण-व्यवस्था का एक निर्धारक आधार माना। महात्मा गाँधी वर्ण-व्यवस्था में कालान्तर में आए विकृतियों जैसे अस्पृश्यता को सामाजिक कलंक तथा न्याय की स्थापना में बाधक मानते थे। गाँधीजी के अनुसार अस्पृश्यता भारतीय समाज के लिए एक कलंक है। उन्होंने इसे अनैतिक मानकर पाप की संज्ञा दी और कहा कि यह मानवता के विरूद्ध क्रूरतम अपराध है।

गाँधीजी अस्पृश्यता निवारण को अहिंसा की मान्यता का ही एक रूप है। गाँधीजी के अनुसार ईश्वर सम्पूर्ण सृष्टि में विद्‌यमान है और निष्कर्षात्मक रूप से वह सभी मनुष्यों में भी विद्‌यमान है। इसलिए मानव-मानव के बीच भेद करना उचित नही है और किसी व्यक्ति को अछूत मानना ईश्वर की सम्पूर्ण सृष्टि में विद्‌यमान होने के सिद्धान्त को नकारना है। गाँधीजी और आगे बढ़ते हुए कहते हैं कि किसी व्यक्ति को अछूत मानना पाप है। गाँधीजी अस्पृश्यता के

लिए जाति-व्यवस्था को उत्तरदायी न मानकर ऊँच-नीच की भावना तथा इस वर्ग द्वारा किये जाने वाले सफाई के कार्य को अस्पृश्यता के जन्म व विकास का कारण मानते है। गाँधीजी के अनुसार न तो सामान्य शिष्टाचार और न ही न्याय की दृष्टि से अस्पृश्यता का समर्थन करना संभव है। गाँधी ने अस्पृश्यता को विवेकरहित ही नहीं अपितु अमानवीय तथा हिन्दू-धर्म के प्रतिकूल भी बताया, क्योंकि इस व्यवस्था में समाज के एक बड़े वर्ग को समस्त मानवीय अधिकारों से वंचित रखा है। उन्होंने गीता का उदाहरण देते हुए अस्पृश्यता को हिन्दु धर्म के प्रतिकुल सिद्ध किया। छुआछूत को दूर करने के सम्बन्ध में गाँधीजी ने कहा कि यह प्रतिज्ञा केवल अछूतों से मित्रता करके ही पूरी नहीं किया जा सकता वरन् प्रत्येक जीव से उसी प्रकार प्रेम करना चाहिए जिस प्रकार हम स्वयं से करते हैं। छुआछूत समाप्त करने का अर्थ है समस्त संसार से प्रेम एवं उसकी सेवा करना। गाँधीजी अस्पृश्यता निवारण को स्वराज्य के समान ही महत्वपूर्ण मुद्दा मानते थे। उनका मानना था कि बलपूर्वक और केवल कानून के द्वारा प्रभावी रूप से अस्पृश्यता को समाप्त करना असंभव है। वे उन्हें विश्वास दिलाना चाहते थे सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलकर ही इस उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है। नाराज होकर बल पूर्वक हृदय परिवर्तन नहीं करवाया जा सकता, प्रेम से ही ऐसा किया जा सकता है। गाँधी अस्पृश्यता निवारण को, सवर्ण हिन्दुओं के लिए प्रायश्चित का काम भी मानते थे जिन्होंने सदियों से अपने सहधर्मियों के प्रति अमानवीय व्यवहार किया था। गाँधीजी ने अस्पृश्यता पर सभी दिशाओं से आक्रमण करने वाले रचनात्मक कार्यक्रम की आवश्यकता पर भी बल दिया। इस काम के लिए गाँधीजी ने हजारों स्त्री-पुरूषों, लड़के-लड़कियों की समग्र ऊर्जा, जो कि श्रेष्ठ धार्मिक प्रेरणा से प्रेरित हो, की आवश्यकता बतायी। गाँधीजी ने ऐसे निःशक्तजन सेवकों को उनके लिए अनेक कार्य करने और अपना पूरा ध्यान केन्द्रित करने को कहा जैसे - स्वास्थ्य तथा स्वच्छता की शिक्षा व विकास, अस्वच्छ व्यवसायों में उन्नत विधियों का प्रयोग, मादक द्रव्यों के सेवन का परित्याग करने की सीख, विद्यालयों की व्यवस्था, स्वयं कार्यकत्ताओं के मध्य छूआछूत का परित्याग, इत्यादि।

7.7.9 शारीरिक श्रम

गाँधीजी केवल कुछ लोगों की आर्थिक समृद्धि और लाभ का अन्धानुकरण करने के स्थान पर श्रम का महत्व, योग्यता अनुसार समाज के लिए योगदान देना और आवश्यकता अनुसार समाज प्राप्त करने के सिद्धान्त का समर्थन करते थे। गाँधीजी ' श्रम की रोटी ' सिद्धान्त का समर्थन करते थे। उन्होंने सभी को कुछ न कुछ रूप में शारीरिक श्रम करने का उपदेश दिया है। उनके मतानुसार प्रत्येक श्रम का समाज में समान महत्व है, इस आधार पर न ही उँच-नीच की धारणा का कोई औचित्य है और न ही किसी तरह के अन्तरनिहित द्वन्द और संघर्ष का। अत: वे पूँजीपतियों और श्रमिकों के संघर्षों को भी अपरिहार्य नही मानते थे। दोनों वर्गों में सोहार्दपूर्ण सम्बन्ध चाहते थे। उनका मानना था कि व्यक्ति जो भी अपनी परिश्रम से प्राप्त करता है वह समाज से ही प्राप्त करता और इसलिए उसे समाज को किसी न किसी प्रकार से वापस लौटाने का प्रयास भी करना चाहिए। गाँधीजी के लिए शारीरिक श्रम आत्मनिर्भरता और

शेषण-मुक्त समाज की प्राप्ति का साधन है। उनके अनुसार यह शरीर को स्वस्थ, चुस्त तथा रोग-मुक्त रखने का भी उपयुक्त साधन है।

7.7.10 सभी धर्मों का समान आदर

गाँधीजी साम्प्रदायिक एकता को भी बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने 'सर्वधर्म समभाव' के विचार एवं नीति का समर्थन किया और साम्प्रदायिक एकता व सद्भाव को अपने सार्वजनिक जीवन का सर्वाधिक प्रमुख लक्ष्य घोषित किया। धर्म उनके लिए वह सब कुछ प्रदान करने वाली आस्था है जो व्यक्ति के आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है। सभी धर्म को समान रूप में सच्चाई अथवा एक ही शाश्वत सत्य की आस्था पर आधरित मानते हुए उन्होंने भारत के विभिन्न सम्प्रदायों- हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी आदि के बीच साम्प्रदायिक एकता एवं सद्भाव की स्थापना के लिए अथक प्रयत्न किया। उन्होंने विशेषकर हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बहुत जोर दिया। भारत में होने वाले हिन्दू-मुस्लिम दंगों को उन्होंने बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण माना। धर्म को राष्ट्रीयता का आधार बनाने का प्रयास और इस आधार पर भारत का विभाजन करने के प्रयास का अन्त तक उन्होंने कड़ा विरोध किया।

गाँधीजी का मानना था कि हिन्दू - मुस्लिम समुदाय की औपचारिक तथा प्रत्यक्ष विविधताओं के बावजूद देश में शान्ति का निर्माण केवल उसी स्थिति में सम्भव है जब विविधताओं में एकता को सशक्त बनाकर राष्ट्रीय प्रयोजन को सर्वोपरि महत्ता प्रदान की जाए। गाँधीजी अपेक्षा करते थे कि प्रत्येक समुदाय के लोग अपने सीमित तथा संकीर्ण हित को त्याग कर राष्ट्रीय हित के बारे में सोचें एवं कार्य करें। उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता को सौहार्दपूर्ण वातावरण के लिए बहुत आवश्यक माना। उन्होंने स्वीकारा कि उनके लिए सभी धर्म उतने ही प्रिय हैं जितना कि हिन्दू धर्म है तथा वे अन्य मतों को उतना ही आदरणीय मानते हैं जितना कि वे अपने मत को आदर करते हैं।

गाँधीजी साम्प्रदायिक एकता के लिए निरन्तर कार्य करते रहे और इस महान यज्ञ में उनको अपने प्राणों की आहुति भी देनी पडी। गाँधी जी स्वतंत्र भारत को एक सर्वधर्म समभाव राज्य के रूप में देखने की आकांक्षा रखते थे। उनकी कामना थी कि आजाद भारत में सभी सम्प्रदाय के अनुयायी को राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक अधिकार के साथ अपने धर्म एवं संस्कृति की रक्षा का अधिकार भी प्राप्त हो।

7.7.11 स्वदेशी

गाँधीजी का स्वदेशी से अभिप्राय आर्थिक स्वावलंबन और देशप्रेम था। स्वदेशी का सकारात्मक अर्थ अपने देश में निर्मित वस्तु के प्रयोग को प्राथमिकता देना और नकारात्मक रूप में इसका अर्थ है दूर स्थित इलाके या विदेश में उत्पादित वस्तुओं का बहिष्कार। स्वदेशी का सकारात्मक अर्थ अपने देश की सभ्यता और संस्कृति के प्रति अनन्य प्रेम भी है। अत: यह स्वाभिमान का भी प्रतीक है। अनावश्यक मशीनीकरण और ओद्योगिकीकरण के आधार पर किए जाने वाले बडे पैमाने पर उत्पादन का गाँधीजी विरोध करते थे। बडे पैमाने पर उत्पादन और तकनीकी नवाचार के द्वारा आर्थिक समृद्धता का अन्धानुकरण, उनके अनुसार समाज में आर्थिक

आक्रमण, शोषण और हिंसा को बढ़ावा देता है। इसलिए विकल्प के तौर पर गाँधीजी विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था और आम जनता की आवश्यकता पर आधारित उत्पादन का समर्थन करते थे।

आम जनता की आवश्यकता पर आधारित उत्पादन के लिए गाँधीजी व्यापक स्तर पर कुटीर उद्योग का विस्तार करना चाहते थे। कुटीर उद्योग को गाँधीजी ने विशाल जनसंख्या, ग्रामीण जीवन की प्राधान्यता, गरीबी, इत्यादि जैसे विशेष भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल भी माना। इन्हे गाँधीजी ने आम व्यक्ति के स्वावलम्बन और सशक्तिकरण के उद्बेश्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक माना।

कुटीर उद्योग को बढावा देने के लिए गाँधीजी ने स्वदेशी सिद्धान्त को अपनाने पर बल दिया। वे चाहते थे कि स्वदेशी अपनाते हुए लोग अपने आस-पास के क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं का प्रयोग करें। राष्ट्र के स्तर पर इसे अपनाने का आशय यह था कि भारतीय विदेशों में उत्पादित वस्तुओं को त्याग कर अपने देश में उत्पादित वस्तुओं का प्रयोग करें। राष्ट्रीय एकता, समृद्धि और स्वावलम्बन के लिए गाँधीजी ने इसे जरूरी बताया।

गाँधीजी ने सत्याग्रही के द्वारा अपनाये जाने वाले व्रतों के अलावा उसके द्वारा अपनाये जाने वाले नियमों के बारे में अनेक अवसरों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। एक अवसर पर गाँधीजी ने सत्याग्रही के लिए निम्न सात नियमों की पालना जरूरी बताया :-

1. ईश्वर में दृढ़ आस्था
2. सत्य एवं अहिंसा में विश्वास और मानवीय प्रकृति को मूल रूप से अच्छा मानना। इस अच्छे स्वरूप को जागृत करना सत्याग्रह का उद्देश्य है और यह कार्य सत्याग्रही द्वारा आत्मपीड़ा सहकर विरोधी में हृदय परिवर्तन करना ।
3. ब्रह्मचर्य का पालन, सत्य की रक्षा के लिए प्राण न्यौछावर करने के लिए तैयार और अपनी सम्पत्ति को भी इस कार्य के लिए त्यागने के लिए तैयार करना।
4. वह स्वभाविक रूप से खादी अपनाये एवं चरखा काते।
5. मध्यपान निषेध को स्वीकारे
6. आत्मानुशासन सम्बन्धी नियम जो जारी किए गए हैं उनकी अनुपालना।
7. कारावास के दौरान सभी नियमों की अनुपालन करे बशर्ते कि ये नियम उसके स्वाभिमान को ठेस नही पहुँचाता हो।

गाँधीजी ने सत्याग्रह के दौरान निम्नलिखित नियमों की अनुपालना भी अनिवार्य माना:-

1. क्रोध न करें
2. विरोधी के क्रोध को सहें
3. किसी भी वार या सजा को पलटकर वैसा ही वार अथवा सजा न दें। परन्तु क्रोध में किए हुए किसी भी आज्ञा की पालना सजा के डर के मारे न करें।
4. जब बन्दी बनाने के लिए अधिकारीगण आयें या सम्पत्ति को कुर्क करने आयें तो स्वैच्छा से समर्पण करें।
5. यदि न्यास्पति के रूप में किसी सम्पत्ति का संरक्षक हो तो कुर्क से उसकी रक्षा जान देकर भी करें।

6. विरोधी का अपमान न करें।
7. विरोधी को न ही श्राप देना और न ही या अपशब्द कहें।
8. विरोधी का अथवा विरोधी के नेता के झंडे का न ही सलामी देना न ही अनादर करें।
9. यदि कोई विरोधी को अपमान करने या उसे मारने का प्रयास करे तो अहिंसात्मक तरीके से विरोधी का बचाव करें और इसके लिए प्राण न्यौछावर करने के लिए भी तैयार रहें।
10. कैदी के रूप मे शिष्टाचार का ध्यान रखें और जेल के नियमोंकायदो की अनुपालना करें।
11. कैदी के रूप में किसी प्रकार का विशेष सुविधाओं का आग्रह न करें।
12. जेल में सुविधाओं के लिए उपवास न करें यदि इनका अभाव व्यक्ति की गरिमा को ठेस नही पहुँचाता हो।
13. सविनय अवज्ञा आन्दोलन के नेतृत्व द्वारा किए गए अज्ञाओं की सहर्ष अनुपालना करें।
14. आन्दोलन में कुछ आज्ञाओं को स्वीकार करना और कुछ का नकारना ऐसे आचरण से प्रथक रहें। यदि जो कार्य प्रस्तावित है वह अनुचित और अनैतिक हो तो पूर्ण रूप से ऐसे कार्य या अन्दोलन से प्रथक हो जाएं।
15. सहभागिता का कोई शर्त नही रखें जैसे सहभागिता करने पर कोई पीछे छूटे परिवार की रक्षा और आवश्यकता पूरा करे।
16. साम्प्रदायिक झगडों का कारण न बने।
17. साम्प्रदायिक झगडों मे किसी भी पक्ष लेने से बचें पर जो पक्ष अधिकाधिक सही लगे की मदद् करना। साम्प्रदायिक दंगों में अपना जान देकर सभी पक्षों के लोगों की रक्षा करना
18. ऐसे अवसरों से बचे जो साम्प्रदायिक झगडो को जन्म दें।
19. ऐसे यात्राओं में भाग न लें जो किसी समुदाय की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाये।

सत्याग्रह में संलग्न व्यक्ति की दृढ़ता, आत्मबल एवं बुद्धिबल में वृद्धि के लिए गाँधीजी ने प्रतिज्ञा पर बल दिया है। उनका मानना था कि प्रतिज्ञा लेने वाले व्यक्ति में उद्देशित करने का मनोबल और आत्मबल आ जाता है। उसकी इच्छा शक्ति बढ़ जाती है और वह लक्ष्य के लिए हर प्राकर की कुर्बानी देने के लिए तैयार हो जाता है। गाँधीजी के अनुसार प्रतिज्ञा के प्रभाव से लक्ष्य प्राप्त करना आसान हो जाता है। गाँधीजी ने सत्याग्रह प्रारम्भ करने से पूर्व, तीन प्रण लेने की बात कही है :-

(1) अन्याय के सामने नहीं झुकने की प्रतिज्ञा।
(2) विरोधी और उसकी सम्पत्ति के प्रति हिंसा नही करने की प्रतिज्ञा और
(3) सत्याग्रह के हर परिणाम को सहर्ष स्वीकार करने की प्रतिज्ञा

सत्याग्रह का संचालन करने वाले या नेतृत्व प्रदान करने वाले व्यक्ति के लिए भी गाँधीजी ने कुछ योग्यतायें निर्धारित की हैं। जैसे:-

1. या तो वह स्वयं भुक्तभोगी हो अथवा भुक्तभोगियों का आमंत्रित तथा अधिकृत प्रतिनिधि हो।
2. मन, वचन एवं कर्म से वह अहिंसा में आस्था रखता हो।
3. वह सुख-दुख, हार-जीत जैसी परिस्थितियों में विचिलित होने वाला न हो।
4. वह सामान्यत: नियमों और कानूनों का पालन करने वाला नागरिक हो।
5. वह जागरूक और अनुशासित हो और सत्याग्रह के सिद्धान्तों तथा रणनीतियों में प्रशिक्षित हो।
6. उसमें असीम दया, प्रेम भाव, परमार्थ सेवा का भाव और सहनशक्ति हो। वह सद्गुणी और सभ्य हो तथा इन्द्रिय नियन्त्रण या संयम बरतने वाला हो।
7. वह सभी नैतिक साधन, विवेक, आत्मपीडन और आत्म-बलिदान का यथोचित प्रयोग करते हुए समस्याओं को ऐसा निदान ढूँढने वाला हो जिससे सभी पक्ष सन्तुष्ट होते हों।
8. वह स्वयं तथा प्रतिपक्षी के गुण-दोष का सही आकलन करने वाला हो तथा स्वयं मे पाये गये दोष को तत्काल दूर करने का प्रयास करने वाला हो।
9. अपने प्रतिपक्षी की कमजोरी अथवा मजबूरी का फायदा उठाने वाला नहीं हो और
10. वह ऐसा कोई कदम न उठाये जो सत्याग्रह के मौलिक सिद्धान्तों के विपरीत हो।

गाँधीजी के अनुसार व्यक्ति को सत्याग्रह का सहारा तब लेना चाहिए जब उसकी समस्याओं के समाधान के लिए संविधान और कानून द्वारा प्रदत्त सभी साधन समस्या का समाधान करने में असफल हो जाए। उन्होंने सत्याग्रह संघर्ष की शुरूआत से पहले 'देखो और इन्तजार करो', 'सार्वजनिक अन्वेषण द्वारा तथ्यों का मूल्यांकन करना', 'समझौता', 'वार्ता, 'मध्यस्थता' 'अनुनय-विनय' आदि संवैधानिक युक्तियों का सहारा लेने की वकालत की। गाँधीजी ने इस बात पर बल दिया कि सत्याग्रह में सभी सहभागियों को नेतृत्व द्वारा निर्देशित नियमों के प्रति अनुशासन बनाये रखना चाहिए। सत्याग्रही प्रतिरोधियों द्वारा निर्मित अनैतिक नियम एवं कानून से परे जाकर अपनी अन्तरात्मा की आवाज के आधार पर सभ्य एवं अहिंसक तरीके से प्रतिरोध करने की आवश्यकता और महत्त्व पर बल देता है। गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा को अहिंसा की सक्रिय अभिव्यक्ति के रूप में तथा अवज्ञा करने वालों के लिए अनिवार्य अनुशासन के रूप में मान्यता प्रदान की है। अनैतिक राज्य कानून और नियमों की अवहेलना से पूर्व, गाँधीजी यह आवश्यक मानते थे कि सत्याग्रही की यह पहचान होनी चाहिए कि वह कानून और संविधान को मानने वाला अनुशासित नागरिक है। सत्याग्रह में आवश्यकता अनुसार राज्य कानून की अवहेलना के दौरान भी 'सभ्य व्यवहार ' को 'कानून की अवहेलना' से ज्यादा महत्वपूर्ण माना गया है। इस 'सभ्य व्यवहार ' में चुनिन्दा कानून के अलावा अन्य सभी कानून और नियमों की पालना करना तथा कानून की अवहेलना करने पर निर्धारित दण्ड विनम्रता पूर्वक स्वीकार करना सम्मिलित है। उन्होंने कहा कि बिना विनयता और अनुशासन से किया हुआ अवज्ञा विभेद, हिंसा और विनाश की ओर ले जाता है।

सविनय अवज्ञा का चाहे जो भी प्रकार हो, गाँधीजी बहुत स्पष्ट थे कि प्रत्येक अवज्ञा का कार्य सविनय होना जरूरी है। इसमें सभी कार्य पारदर्शी और खुली हों और सत्य एवं अहिंसा की ओर

ले जाने वाली हों। उन्होंने माना कि कानून की अवज्ञा को कभी अव्यवस्था फैलाने के लिए प्रयुक्त नहीं करना चाहिए। यदि कुछ ऐसा होता है तो यह आपराधिक अवज्ञा है जो कि निंदनीय है। इसलिए गाँधीजी मानते थे कि यदि कभी हिंसा अचानक फूट पड़े और अव्यवस्था फैलने लगे तो सत्याग्रही को इसे रोकने का प्रयास करना चाहिए, भले ही ऐसा प्रयास उसके जीवन के लिए ही खतरा क्यों न हो। सत्याग्रह के पवित्र उद्देश्यों को समझाते हुए गाँधीजी ने कहा कि यह हिंसा को अहिंसा के द्वारा निष्क्रिय एवं समाप्त करने, घृणा को प्यार द्वारा और झगड़े को समझौता के द्वारा हटाने के लिए प्रयासरत है। यद्यपि सविनय अवज्ञा जैसे सत्याग्रह को गाँधीजी ने नागरिक का जन्म सिद्ध अधिकार माना, उन्होंने इस बात पर बल दिया कि कर्तव्य प्रत्येक अधिकार की पूर्व कल्पना है। उनके लिए अधिकारों का अपने आप में अस्तित्व रखने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था।

7.8 सत्याग्रह और दुराग्रह

सामान्य प्रचलन में प्राय: यह देखने को मिलता है कि अनेक व्यक्ति या समूह सतही अहिंसा अपनाते हुए अपने विरोध को सत्याग्रह बताते हैं। परन्तु वास्तविकता कुछ और होने के कारण यह सत्याग्रह के मूल सिद्धान्तों अथवा मूल्यों के विरूद्ध हैं। सत्याग्रह की श्रेणी में नही रखे जा सकते। ईर्ष्या, द्वेष, रंजिश, अवसरवादिता, प्रतिशोध इत्यादि के भाव इनमें विद्यमान होने के कारण केवल सतही स्तर पर ऐसे विरोध सत्याग्रह के समान प्रतीत होते हैं। सत्य, न्याय, सदाचार, प्रतिपक्षी इत्यादि के सम्बन्ध में विद्यमान सोच के आधार पर इनमें और सत्याग्रह में अन्तर किया जा सकता है और इन्हे, दुराग्रह की श्रेणी में रखा जा सकता है। सत्याग्रह और दुराग्रह में निम्नलिखित अन्तर पाये जाते हैं:-

1. दुराग्रही सत्य, न्याय व सदाचार पर अपना एकाधिकार साबित करने का प्रयास करता है। वह सोचता है कि सत्य को केवल वह ही जानता है और इसलिए केवल वह ही सही है। वह गलत हो ही नही सकता। दुराग्रही के अनुसार उसका प्रतिपक्षी सत्य नहीं जानता अत: वह सही नही हो सकता या वह गलत है।

   सत्याग्रही मानवीय प्रकृति की सीमाओं और अहिंसा के व्यापक अर्थ को स्वीकार करते हुए इस सम्भावना से इनकार नही करता कि वह गलत हो सकता है और उसका विरोधी सही हो सकता है। सत्य, न्याय और सदाचार पर अपना एकाधिकार नहीं मानता और इसलिए सत्याग्रह पूर्व और सत्याग्रह के दौरान तथ्यों को नियमित रूप से जानने और विश्लेषण करने की आवश्यकता को महसूस करता है। प्राप्त जानकारी के आधार पर वह अपना कथन, माँग और प्रयासों में उचित परिवर्तन करने के लिए भी तैयार रहता है।

2. दुराग्रह में विरोधी या प्रतिपक्षी को अपना पक्ष रखने का अवसर ही नहीं दिया जाता और पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर उसे पहले ही गलत या अनुचित मान लिया जाता है।

   सत्याग्रह में प्रतिपक्षी को अपनी बात रखने 'और स्वयं ' की बात उसे समझने का प्रयास किया जाता है। प्रतिपक्षी को मुक्त सोच से सुनने और यथासंभव सत्य के अनुरूप होने पर उसे तत्काल स्वीकार करने की चेष्टा सत्याग्रही द्वारा किया जाता है।

3. पूर्वाग्रह से ग्रसित होने के कारण दुराग्रह में प्रतिपक्ष को विवेक या तर्क के आधार पर समझने का प्रयास नही किया जाता। पूर्वाग्रह, द्वेष, प्रतिशोध इत्यादि भाव से प्रभावित होकर दुराग्रही अपने प्रतिपक्षी को शत्रु मानता है और उसे परास्त करने की होड में संलग्न रहता है। आत्मपीडा सहने और हृदय परिवर्तन करने के भाव दुराग्रह में विद्यमान नहीं हैं।

   सत्याग्रह में विवेक और तर्क को महत्वपूर्ण माना जाता हैं। तर्क के आधार पर प्रतिपक्षी को समझने और समझाने का प्रयास किया जाता है। तर्क जहाँ विरोधी में उचित और वाँछित परिवर्तन लाने में असफल हो जाए, तब आत्मपीड़ा या विरोधी द्वारा किए गए सितम का बिना प्रतिकार किए सहने और उसके प्रति असीम स्नेह प्रदर्शित कर उसका हृदय परिवर्तन करने का प्रयास किया जाता है। विद्यमान संघर्ष के मुद्दों को मिलकर एवं सभी पक्षों को स्वीकृत हो ऐसे समाधान ढूँढने, का प्रयास किया जाता है। संघर्ष समाधान में अन्तत: किसी एक का विजय होने और दूसरे का परास्त होने का भाव न होकर सभी पक्षों का एक बेहतर अवस्था की ओर अग्रसर होने की बात निहित है।

4. दुराग्रह में प्रतिपक्षी और उसके कार्य में कोई भेद नही किया जाता। संघर्षों को खत्म करने के लिए शत्रु तुल्य प्रतिपक्षी का ही अंत करने, उसे हराने, सताने और नीचा दिखाने जैसे अनेक प्रयासों का समर्थन किया जाता है।

   सत्याग्रह में प्रतिपक्षी के व्यक्तिशय अस्तित्व और उसके कार्यों में भेद किया जाता है। इसाई धर्म द्वारा बताया गया नैतिक सिद्धान्त "बुराई से नफरत करो, बुरे से नहीं" को अंगीकृत कर प्रतिपक्षी के अनैतिक कार्य और उसके प्रभाव को खत्म करने का प्रयास किया जाता है और प्रतिपक्षी को व्यक्तिशय किसी प्रकार सताने, लज्जित करने, परास्त करने या दण्डित करने का प्रयास मन, वचन और कर्म से नहीं किया जाता। सत्याग्रही और प्रतिपक्षी दोनों मिलकर सक्रिय प्रयासों से बुराई और अन्याय को समाप्त करने का प्रयास करते हैं।

7.8 सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध

जैस-जैसे गांधीजी आध्यामिक उद्विकास की दिशा में आगे बढ़े और प्रजातीवाद के विरूद्ध संघर्ष में शामिल होते गये, उनके राजनीतिक दर्शन का क्षेत्र भी परिपक्व होता गया। अन्होंने प्रजातिय पूर्वाग्रह की नैतिक आधार पर निंदा की ओर जनकार्यकर्ता के रूप में दक्षिण अफ्रीका की स्थानीय सरकारों के विषय में खुल कर अपने विचार प्रकट करने लगे। उन्होंने उनकी भेदभावपूर्ण व अन्यायपूर्ण नीतियों की आलोचना की और उन्होंने इस बुराई के विरूद्ध भारतीय समुदाय को इकट्ठा करने का प्रयास किया। दक्षिण अफ्रीका में गाँधीजी ने सरकार की रंगभेद नीतियों के विरूद्ध अपने नैतिक, विधि सम्मत और अहिंसक संघर्ष को "निष्क्रिय प्रतिरोध" नाम दिया। परन्तु शीघ्र ही उन्हे जब यह ज्ञात हुआ कि "निष्क्रिय प्रतिरोध" उनके आन्दोलन की मूल भावनाओं और मूल्यों से मेल नही रखता तो गाँधीजी ने वैकल्पिक नाम ढूँढना शुरू किया। निष्क्रिय प्रतिरोध प्राय: दुर्बल और नि:शस्त्र व्यक्तियों का साधन माना जाता है। इसमें हिंसा का परित्याग जीवन-सिद्धान्त के रूप में नही अपनाया जाता अपितु परिस्थितिवश

कमजोर होने का आभास होने के कारण अपनाया जाता है। यह परिस्थितिवश कमजोर पडने के कारण हैं प्रतिरोध करने में निष्क्रियता का भाव लिए हुए है। इसलिए यह सतही तौर पर अहिंसक एवं अपने प्रतिपक्ष द्वारा दिए गए दण्ड को सहने की बात करता है। प्रतिपक्ष के प्रति स्नेह या उसके प्रति मंगल कामना के भाव इसमें नहीं है। इन सब प्रवृत्तियों से प्रथक सत्याग्रह अत्यन्त सक्रिय प्रतिरोध है जो असत्य और अन्याय को समाप्त करने के लिए अहिंसक साधनों में सिद्धान्त: विश्वास करता है। इसमे अवसरवादिता या कायरता का कोई स्थान नहीं है और विरोधी को स्नेह-भाव सहित साथ लेकर सत्य की और अग्रसर होने का भाव निहित है। सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध में विद्यमान मूलभूत अन्तर निम्नलिखित है :-

1. निष्क्रिय प्रतिरोध में आत्मशक्ति का कोई महत्व नही है। यह परिस्थिति अनुसार व्यवहारिक कामचलाऊ प्रतिरोध करने का साधन है। सत्याग्रह नैतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध विरोध का सिद्धान्त, है जिसमे शारीरिक शक्ति नही आत्मशक्ति को श्रेष्ठ माना है।
2. निष्क्रिय प्रतिरोध निर्बल और कायरों का शस्त्र है। प्रतिपक्षी की तुलना में स्वयं को कमजोर होने का आभास निष्क्रिय प्रतिरोध अपनाने वाले व्यक्ति को भयभीत करता है। ऐसे भय के कारण वह निष्क्रिय होकर प्रतिपक्षी का विरोध नही करता। सत्याग्रह आत्मिक रूप से बलवान और साहसी लोगों का साधन है। अहिंसा के प्रति उनकी ऐसी प्रतिबद्धता है कि व प्राण न्योछावर कर देंगे पर प्रतिपक्षी पर वार नही करेंगे। ऐसी आत्मपीढ़ा सहने की शक्ति कायर नहीं विकसित कर सकते, यह तो वीर और बलवान ही विकसित कर सकते हैं।
3. निष्क्रिय प्रतिरोध में प्रतिपक्षी के प्रति स्नेह और मंगल कामना का भाव नही है अपितु उसे परेशान कर हार मानने के लिए विवश करने का भाव निहित है। सत्याग्रह में प्रतिपक्षी के प्रति आदर, स्नेह और मंगल कामना का भाव निहित है। धैर्यपूर्वक उसके कष्ट सह कर प्रतिपक्षी का हृदय परिवर्तन करके उसे असत्य और अन्याय के रास्ते से अलग करना सत्याग्रही का मूल उद्देश्य है।
4. निष्क्रिय प्रतिरोध में प्रेम की गुंजाइश नही है जब कि सत्याग्रह में अपार प्रेम, सहानुभूति, परोपकार आत्म भाव निहित है। निष्क्रिय प्रतिरोध में प्रतिपक्ष के लिए घृणा और दुर्भावना प्रधान है जब कि सत्याग्रह में घृणा और दुर्भावना का कोई स्थान नहीं है।
5. निष्क्रिय प्रतिरोध मे हिंसा को परिस्थिति वश त्याग दिया जाता है या इससे दूर रहा जाता है। उचित अवसर प्राप्त होने पर यह हिंसा का निषेध नही करता। सत्याग्रह सिद्धान्त: हिंसा का पूर्णत: परित्याग करने की बात करता है। यानि पूर्णत: अनुकूल परिस्थिति में भी यह हिंसा का निषेध करता है।
6. निष्क्रिय प्रतिरोध मे व्यक्ति की आन्तरिक शुद्धता और साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर बल नहीं दिया जाता। परन्तु सत्याग्रह में सत्याग्रही के नैतिक और आधात्मिक विकास और साधन और साध्य दोनों की शुद्धता पर बल दिया जाता है।
7. सत्याग्रह की तरह निष्क्रिय प्रतिरोध का प्रयोग अपने घनिष्ठ संबंधियों के विरूद्ध नही किया जा सकता। परन्तु सत्याग्रह का प्रयोग सार्वभौम रूप से किया जा सकता।

8. निष्क्रिय प्रतिरोध की अपेक्षा सत्याग्रह अन्याय और अत्याचार का अधिक निश्चित विरोध है।

7.10 सारांश

गाँधीजी के चिन्तन में सच की अवधारणा सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि उनके अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि और मानव अस्तित्व का मूल सत्य है। उनके लिए सत्य की खोज ही जीवन का लक्ष्य है व्यक्ति द्वारा अपने अनुभव पर प्राप्त सत्य पर चलना ही उसका धर्म है। गाँधीजी इस बात पर बल देते थे कि सत्य केवल अहिंसक और नैतिक साधनों के माध्यम से ही प्राप्त हो सकता है। उपर्युक्त सोच के आधार पर स्थिर रह कर अन्याय और अत्याचार का विरोध करना ही सत्याग्रह है। गाँधीजी के द्वारा प्रस्तुत सत्याग्रह में परम्परागत नैतिक मूल्य केवल व्यक्ति विशेष के लिए आध्यात्मिक प्रगति का साधन न होकर सम्पूर्ण समाज की प्रगति का साधन बना। यह कहना शायद सही है कि सत्याग्रह गाँधी की अहिंसक दर्शन का क्रियात्मक पहलू है जो अपने मूल में कुछ निश्चित नैतिक या आध्यात्मिक सिद्धान्तों को रखता है। इसकी सत्ता पर गाँधी इतना विश्वास था कि वह मानते थे कि यह व्यक्ति द्वारा अकेले में व समूह में सामना करने वाले विविध संघर्षों का शांतिपूर्ण तरीके से समाधान की सम्भावना और क्षमता रखता है। यह इसे अपनाने वाले को पूर्ण बनाने तथा साथ ही विरोधी को भी प्रेरित करती है कि वह स्वैच्छिक रूप से अन्याय और बुराई को त्याग दे। इस प्रकार स्वीकारकर्ता और विरोधी दोनों ही सत्याग्रह के स्वीकार करने तथा संघर्षों के समाधान के पश्चात अपने वास्तविक सामाजिक अस्तित्व में एक बेहतर स्तर पर पहुँचते हैं। इसलिए यह व्यक्तियों के बीच सामंजस्यवादी सम्बन्ध स्थापित करते हुए एक अच्छे समाज, राष्ट्र व विश्व का निर्माण करने की असीम सम्भावना है।

7.11 अभ्यास प्रश्न

1. सत्याग्रह अवधारणा को समझाइये और इसके विकास पर प्रकाश डालिये।
2. सत्याग्रह में अपनाये जाने वाले विभिन्न व्रतों के बारे में गाँधीजी के विचारों की विवेचना कीजिए।
3. निष्क्रिय प्रतिरोध और सत्याग्रह का अर्थ समझाइये और अन्त स्पष्ट कीजिए।

7.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम.के. गाँधी, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. एम.के. गाँधी, सत्याग्रह इन साऊथ अफ्रीका, अनु. वी.जी. देसाई, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1972
3. गोपीनाथ धवन : दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
4. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
5. नंदा, बी. आर. महात्मा गाँधी : ए बायोग्राफी, ओ.यू.पी., नई दिल्ली, 2009

6. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना 1986
7. बी. अरूण कुमार : गाँधीयन प्रोटेस्ट, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2008

इकाई - 8

सत्याग्रह के तकनीक

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 सत्याग्रह के प्रकार

8.2.1 शोधक और पश्चातापी युक्तियाँ

8.2.2 अहिंसक असहयोग

8.2.3 सविनय अवज्ञा

8.2.4 रचनात्मक कार्यक्रम

8.3 सारांश

8.4 अभ्यास प्रश्न

8.5 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.0 उद्देश्य

यह अध्याय गाँधी की सत्याग्रह की तकनीक से सम्बन्धित है। इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप -

- सत्याग्रह के विविध रूपों को समझ सकेंगे तथा
- सत्याग्रह की पद्धतियों के महत्त्व को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी का सबसे आरम्भिक योगदान उनका सत्याग्रह दर्शन रहा है। उन्होंने इसकी सत्-शक्ति, आत्म-शक्ति, तपस्या, धर्मयुद्ध आदि के साथ पहचान की है। उनका विश्वास था कि एक साधन के रूप में सत्याग्रह व्यक्ति के स्तर पर भी कई लक्ष्यों को मूर्त जन्म दे सकता है। उनका इस विश्वास की क्रियान्विति दक्षिण अफ्रीका और भारत में उनके निजी एवं सार्वजनिक जीवन के दौरान व्यापक रूप मे हुई। गाँधीजी ने अपने अनुभवों के आधार पर सत्याग्रह के दर्शन और तकनीक में निरन्तर नए आयाम प्रदान कर उन्हें समाज के लिए प्रासंगिक बनाये रखने का प्रयास किया।

8.2 सत्याग्रह के प्रकार

गाँधी ने उसके सत्याग्रह अभियान के दौरान बहुत से सिद्धान्तों को काम में लिया तथा व्याख्यायित किया। उन्होंने सत्याग्रह की तुलना एक पेड़ से की और सत्याग्रह के साधनों की तुलना उसकी विविध शाखाओं से की। यह सभी पद्धतियाँ एक समान है। साध्य और साधनों की एकता व शुद्धता के रूप में, अहिंसा से लगाव तथा देश-काल के समान उनके महत्व की दृष्टि में। हालांकि ये विविध रूप दो एकदम विपरीत सकारात्मक और नकारात्मक रूपों के बीच स्थित

है, सकारात्मक रूप ज्यादा व्यापक हैं । शैक्षणिक दृष्टि से राघवन एन. अय्यर ने इनको चार मुख्य रूपों में विभाजित किया है -

1. शोधक और पश्चातापी युक्तियाँ
2. अहिंसक असहयोग
3. सविनय अवज्ञा
4. रचनात्मक कार्यक्रम

8.2.1 शोधक एवं पश्चातापी युक्तियाँ

जहाँ तक शोधक एवं पश्चातापी युक्तियों का संबंध था यह कहा जा सकता है कि यह शक्ति प्रदत्त अभिकर्मक थे जो सत्याग्रही को न्यूनतम संभव समय में संघर्ष की स्थितियों से सबसे प्रभावी रूप से निपटने में सक्षम बनाता है और उसके शरीर जीवन एवं सम्पत्ति के नुकसान के रूप में सबसे कम संभव पीड़ा सहन करता है। गाँधी ने कई शोधक एवं पश्चातापी युक्तियों की वकालत की जिनमें - प्रतिज्ञाएं, प्रार्थनाऐं एवं उपवास आदि शामिल थे।

एक व्यक्ति को जो करना चाहिए उसको किसी भी कीमत पर करने का वचन देना ही प्रतिज्ञा कहलाती है। गाँधी ने इसे सत्याग्रह अभियान में सशक्त उत्पेरक तत्व के रूप में माना तथा स्व-अनुभूतिकरण व चरित्र निर्माण के लिए अपरिहार्य क्षमता के रूप में देखा। उनका विश्वास था कि इसके द्वारा इसके अभिग्रहणकर्ता न केवल आत्म-शुद्धीकरण व पूर्णता की ओर बढ़े बल्कि इस विकास क्रम के परिणाम के रूप में सत्याग्रह कार्यवाही ओर भी तीव्र, शक्तिशाली प्रभावी अभियान बन गयी। इस अनुशासन का प्रत्येक सत्याग्रही स्वयंसेवक में दिखाई देना जरूरी माना गया। गाँधी ने प्रतिज्ञाओं का एक ऐसा खाका तैयार किया जिसमें मन, वचन और कर्म से सत्य और अहिंसा की अनुपालना करना, सामुदायिक मित्रता को बढ़ावा देना, खादी स्वीकारना, अस्पृश्यता निवारण, देश और धर्म की रक्षा के लिए किसी भी प्रकार की पीड़ा को सहने का साहस स्वीकारना, संगठन के नेताओं के आदेशों की अनुपालना करना आदि शामिल है। जिन पर समय-समय पर विभिन्न प्रकार से जोर दिया गया। यह कोई महत्त्व नही रखता था कि कौनसी प्रतिज्ञाऐं की गई थी। गाँधी जी ने प्रत्येक प्रतिज्ञा को अपने कार्य में सत्याग्रह की सदभावना के भाग के रूप में देखा। जिसके समाधान में वह लगा रहा था जोकि सत्याग्रह अभियान के में चुने गऐ कार्यों के लिए कठोर परिश्रम करने हेतु साहसी और अहिंसक रूप से कार्य करने को तैयार हु आ। गाँधी संतुष्ट थे कि प्रतिज्ञाऐं सत्याग्रही की इच्छा शक्ति को सशक्त बनती है और उसको उन कार्यों को करने के लिए तैयार करती है जिनको शुरू करने की उसकी इच्छा थी। इन प्रतिज्ञाओं के आधार पर गाँधी ने देखा की सत्याग्रह अन्याय का प्रतिरोध है, विरोधी के जीवन, व्यक्तियों व सम्पत्ति को हिंसा से बचाता है और प्रसन्नतापूर्वक स्वयं उस कार्य के परिणामों की पीड़ा भोगता है। गाँधी ने एक अनुशासन संहिता तैयार की सत्याग्रही एक व्यक्ति के रूप में, एक कैदी के रूप में, इकाई के अंग के रूप में तथा सामुदायिक मैत्री को बढ़ावा देने के रूप में उसकी विभिन्न योग्यताओं को मानने के प्रति वचनबद्ध था।

हालांकि गाँधी के आस्तिक झुकाव ने उसे यह तर्क देने हेतु जोर डाला कि - कोई भी सर्वोत्तम मानवीय प्रयास का लाभ नही उठा सकता यदि उसके पीछे ईश्वर का आशीर्वाद नहीं हुआ तो। उनका विश्वास था कि एक व्यक्ति में उसने शारीरिक अस्तित्व के कारण कई कमजोरियां होती है और परिणामत: वह कभी कभी अपने को अपने जीवन में की गई प्रतिज्ञाओं को पूरा करने के प्रत्यन में कठिनाई यह महसूस करता है। ऐसी कमजोरियों से अपनी आत्मा के मुक्त होने और अपने जीवन में की गई प्रतिज्ञाओं के पूरा करने में सक्षम होने के क्रम में गाँधी ने माना कि एक व्यक्ति का भगवान का आशीर्वाद जरूरी है। उनका विश्वास था कि यह सर्वशक्तिमान ईश्वर की विनम्र प्रार्थना करके ही किया जा सकता था। ईश्वर में जीवित आस्था ही सत्याग्रही को सत्याग्रह के संघर्ष में सम्मिलित कठिनाईयों का काम करती है। गाँधी प्रार्थना की शरण लेने को ज्यादा अच्छे से अच्छा आचरण करना मानते थे। यह प्रार्थना जो आत्मा की लालसा दिखलाती थी, गाँधी ने जोर दिया कि वह मात्र मशीनी आविष्कार मात्र नहीं होनी चाहिए, जो नाटकीय प्रभाव के लिए स्वीकार की गई, बजाय जहां तक हो वहां तक भौतिक गतिविधियों का पूर्णरूपेण बहिष्कार होना चाहिए जो कि एक ही सत्ता के स्वामित्व में रखी हो और व्यक्ति को सभी शारीरिक कार्यों से पूर्णत: विलग कर लिया, जिससे वह अपने को सर्वोच्च स्तर की ओर उठ पाता है। उनका विश्वास था कि केवल ऐसी प्रार्थना ही व्यक्ति को इस चकाचौंध के स्तर से ऊपर उठाती है और सर्वोच्च सत्ता की चेतना ग्रहण की और दृष्टि की स्पष्टता उत्पन्न होगी। गाँधी ने यह भी देखा था कि यह विरोधी के हृदय में परिवर्तन लाने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है और इसे पर बडी उपलब्धियों की हासिल करने की क्षमता के साथ विद्यमान सता के रूप में भी विचार किया।

प्रार्थना के समान ही गाँधी ने उपवास (Fasting) को भी व्यक्तियों के तनाव को कम करने के साधन के रूप में पहचान दी। वे तो उपवास को प्रार्थना को सबसे सच्चे स्वरूप तक मान्यता प्रदान की। जब से उन्होने उपवास को सत्याग्रही के सभागार का सबसे शक्तिशाली साधन माना तब से वे इसके प्रयोग के दौरान ज्यादा सावचेत रहने और देखभाल रहने की सलाह दी। गाँधी ने समान रूप से सच्चे उपवास की विशेषताओं की रूप रेखा खींची। उन्होंने कहा कि “हालांकि केवल शरीर के लिए उपवास उसके पीछे विद्यमान इच्छा के अलावा कुछ नहीं है। आंतरिक उपवास की शुद्ध स्वीकारोक्ति सत्य को अभिव्यक्त करने की अदम्य लालसा ओर कुछ नहीं केवल सत्य है। इसलिए सत्य के कारण के लिए उपवास के सौभाग्य को केवल वे ही खोते है जो इसके लिए ही कार्य करते हैं और जो अपने विरोधी से भी प्रेम करता है जो पाश्विक आवेगों से मुक्त है और जो भौतिक स्वामित्वों, भावनाओं को पी जाते है। उन्होंने जोर दिया कि यह कोई यांत्रिक प्रयास या मात्र दिखावा नहीं बल्कि आत्मा की गहराई से उठने वाली तरंग होनी चाहिए। सभी उपवास समपरिणामी होने चाहिए, गाँधी सहमत थे कि व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार यह यह करे और पर्याप्त प्रशिक्षण से गुजरने के उपरांत अंतिम उपाय के रूप में इसका सहारा लेना चाहिए। उपवास की एक दूसरी अनिवार्य शर्त के रूप में गाँधी ने माना कि जो व्यक्ति उपवास के लिए अपने को तैयार करता है, उसके द्वारा ही उपवास किया जाना चाहिए और वह लोगों से जुड़ा होना चाहिए, वे लोग उसके विरूद्ध हो जिनके लिए उपवास किया जा रहा है और अंत में यह लोगों के उद्देश्यों से सीधा जुड़ा होना चाहिए। इस तथ्य की पहचान

की कि वास्तविक उपवास सबसे ज्यादा संभव चरित्रवान व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए, गाँधी की उपवास की वकालत सामान्यतया भोजन और तृष्णा की सीमाओं की पहचान से परे जाने की थी।

गाँधी ने सत्याग्रही के आध्यात्मिक अनुशासन के रूप में मौन की भी पहचान की। उन्होंने माना कि यह सत्याग्रही को सत्य की खोज एवं आध्यात्मिक विकास में न केवल अमूल्य सहायता देगा बल्कि ईश्वर के साथ सम्पर्क में भी बहुत सहायक है। उन्होंने यह भी माना कि सत्ता के रूप में यह व्यक्ति की ऐसी प्राकृतिक कमजोरियों, जैसे सत्य को सोच समझकर या बिना सोचे समझे बढ़ाचढ़ा कर पेश करने की, दबाने की या संशोधित करने की अद्योवृत्ति आदि, पर विजय की इच्छा रखने वालों के लिए जरूरी है।

8.2.2 अहिंसक असहयोग

गाँधी ने अहिंसक असहयोग को सत्याग्रह का एक गहन रूप माना। जो कि पूर्व निर्धारित रूप में राज्य जो कि असहयोगी की दृष्टि में भ्रष्ट हो चुका था, के साथ सहयोग के हाथ खींच लेने के राजनीतिक परिणाम रखता था। गाँधी इसकी प्रक्रियात्मक क्षमता के इस आधार से संतुष्ट थे कि - कोई भी जो स्थायी रूप से अशुभ कार्य करना चाहते थे वे तब तक सफल नही हो सकते है जब तक कि जिसके विरूद्ध यह कार्य निर्देशित थे वे उसका इच्छा पूर्वक सहमति या निष्क्रिय स्वीकारोक्ति नही दे देते है। इस प्रकार जब उत्तरवर्ती-पूर्ववर्ती को सहयोग करने से इनकार कर देता है, तो पूर्ववर्ती अपने निरतंर बुराई करने के कार्यों में विफलता पाता है और यह बुराई अपने आप अपने उद्भव बिन्दु पर प्रभावी रोक लगा लेती है।

असहयोग की मूल प्रकृति पर जोर देते हुए गाँधी ने कहा कि "असहयोग मेरे द्वारा प्रयुक्त अर्थ में अहिंसक रूप में प्रयुक्त होना जरूरी है और इसलिए न तो यह दण्डात्मक और न ही प्रतिशोधक न ही दुर्भावना, द्वेष या घृणा पर आधारित है।" सत्याग्रह एक सक्रिय सहयोग के रूप में देखा गया है बजाय विरोधी द्वारा पहले अपनी बुरी मनोवृत्तियों को त्याग करने के गाँधी का इस बात में पक्का विश्वास था कि कोई भी आदमी मुक्ति से परे हो गाँधी ने वकालत की कि असहयोगी निरंतर रूप से अन्यायकर्ता की राक्षसी अभिकल्पनाओं का विरोध करें, इसी दौरान चुपचाप विरोधी के आक्रामक कार्यों के कारण पीड़ा सहता रहे और प्रेम, स्व-पीडा एवं तार्किक विश्वास द्वारा उसे बुराईयों से परे हटाने का कार्य करता रहे। वे बहुत स्पष्ट थे कि असहयोगी को अपने विरोधी के प्रति मित्रवत व्यवहार करने व अच्छे इरादों के बारे में समझाने की बहुत आवश्यकता है। परिणामत: गाँधी ने वकालत की कि असहयोगी को जहां कहीं भी संभव हो मानवीय सेवा करते जगह बनाने की कोशिश करनी चाहिए। इस संदर्भ में गाँधी ने माना कि असहयोग हुल्लडबाजी द्वारा किसी को डराने की बजाय उसके हृदय को स्पर्श करने तथा विवेक की अनुरोध प्रक्रिया है।

गाँधी ने सद्भावना (Sincerity) को असहयोगी के लिए अपरिहार्य बताया। गाँधी ने असहयोग को एक सद्भावना का परीक्षण के रूप में मान्यता देते हुए कहा कि असहयोग कोई शेखी मारने, धौंस जमाने की प्रचण्डता का आंदोलन नहीं है। यह हमारी सद्भावना या ईमानदारी की परीक्षा है। यह मजबूत और मौन - त्याग चाहता है। यह राष्ट्रीय कार्य के लिए हमारी

ईमानदारी और क्षमता को चुनौती देती है। यह एक आंदोलन है जिसका लक्ष्य - विचारों को कार्यों में रूपांतरित करना है। गाँधी ने यह भी कहा कि असहयोगी को विनम्र और स्वत: प्रतिबंधित होना चाहिए और उसे असहयोग के सिद्धांत की मान्यता प्राप्त परिधि में ही कार्य करना चाहिए। असहयोग की उल्लेखित सीमाओं से परे के कार्य इसे अपराधी बनाएगे। यह गाँधी का पक्का विश्वास था कि जब असहयोग ऐसी मान्यता प्राप्त हदों में रहेगा तब उत्प्रेरणा के रूप में सेवा करते हुए वह व्यवरथा के बाहर एक सत्-व्यवस्था को विकसित करते हुए सेवा करेगा अहिंसक असहयोग के विविध साधन है, जिनका गाँधी ने मान्यता प्रदान की जैसे - हड़ताल, बहिष्कार, स्ट्राइक और हिजरत आदि।

हड़ताल में सामान्यत: व्यवसाय उत्तरदायित्व को रोकना सम्मिलित है। यह इसके अभिग्रहणकर्त्ताओं की सरकार या शासकों के कुछ अवांछित कानूनों या स्वेच्छाचारी आदेशों को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति को प्रदर्शित करता है।

बहिष्कार को गाँधी ने व्यक्ति या समुह द्वारा स्वीकृत एक साधन के रूप में जो बुराई या अन्याय के स्थायीकरण के विरूद्ध एक सशक्त इच्छा एवं घोषणा है। ऐसी मजबूत इच्छा और घोषणा द्वारा यह न्याय की स्थापना करना चाहता है।

असहयोग का एक दुसरा भी साधन है स्ट्राइक जिसकी गाँधी जी ने वकालत की थी। इसके अभिग्रहणकर्ता की और से इसके अनप्रयुक्त रूप में यह सहभागिता की समाप्ति का प्रतिनिधित्व करता है। और अशुभकर्ता की शैतानी अनुकल्पनाओ की ओर से यह उसको उसके कार्यों की मूर्खता का ज्ञान कराता है।

हिजरत असहयोग के पूर्वोक्त कथित रूपों से कुछ अलग था। गाँधी ने हिजरत को अंतिम साधन के रूप में स्वीकारने पर बल दिया यह उनके लिए था जो निरकुंश शासकों के उत्पीड़न और अन्याय के विरूद्ध अपने आपकी रक्षा करने में असक्षम पाते थे। इसके स्वीकारकर्ता अनैतिक कार्यों में सहभागिता की अनिच्छा जताते है, तथा शासकों और उनकी जमीन को गलत कार्यों से बचाने हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते है। हालांकि वे मानते थे कि सत्याग्रह के शुद्धता रूप में हिजरत की आवश्यकता नहीं होती थी। वे सत्याग्रही के स्वर के उस स्तर को प्राथमिकता देते थे जो बुराई से लड़ाई की प्रक्रिया में लगी सम्पूर्ण नैतिक शक्ति है। इस कारण संभवतया वे हिजरत को शुद्ध सत्याग्रह में वास्तविक या उचित स्थान नहीं रखने को मान्यता प्रदान की।

8.2.3 सविनय अवज्ञा

सत्याग्रह का अन्य रूप सविनय अवज्ञा था। सत्याग्रह की एक शाखा के रूप में सविनय अवज्ञा संवैधानिक कानून के उल्लघंन तथा अनैतिक कानून का संकेत करता है और प्रतिरोधकों के कानून से परे जाकर सभ्य एवं अहिंसक तरीके से प्रतिरोध के महत्त्व को बताता है। गाँधी ने इसे अहिंसा की सक्रिय अभिव्यक्ति के रूप में तथा अवज्ञा करने वालों के लिए अनिवार्य अनुशासन के रूप में मान्यता प्रदान की। उनके लिए यह एक तार्किक निष्कर्ष भी था। यह असहयोग का सबसे खतरनाक रूप था। उन्होंने इसे एक पूर्ण, प्रभावी एवं खून रहित सशस्त्र विद्रोह का विकल्प बताया। उन्होंने इसे उन्माध को सृजनात्मक ऊर्जा में बदलने की सर्वोच्च

पद्धति के रूप में मान्यता दी। गाँधी द्वारा सविनय अवज्ञा पर इस रूप में विचार किया गया कि यह कानून द्वारा प्रतिबंधों के बिना भय के स्वैच्छिक रूप से अवज्ञा करने की आदत की पूर्व मान्यता है तथा इसकी अंतिम अभ्यास के रूप में वकालत की तथा वह भी आरंभिक स्तर पर कुछ चुनींदा लोगों द्वारा। गाँधी द्वारा ऐसी वकालत का आधार यह विश्वास था कि सविनय-अवज्ञा के कार्य की मूल शर्त यह है कि प्रथम दृष्ट्या यह व्यक्तिगत स्तर या कुछ चुनिंदा व्यक्तियों तक आसानी से लगातार खोजी जा सकती है न कि यह आमजन तक विस्तृत रूप में खोजी जा सकती है। इसके अतिरिक्त गाँधी ने मान्यता दी कि अवज्ञा की कोई भी संभावना हिंसा या खुनी क्रांति को भड़का सकती है। जिसे आसानी से नियंत्रित किया जा सकता था जब अवज्ञा एकत्रित या कुछ चुनिंदा लोगों तक सीमित रहे। आमजन सविनय अवज्ञा आंदोलन में अन्तर्निहित खतरों के कारण गाँधीजी आमजन असहयोग आन्दोलन को वरीयता दी। असहयोग के कम खतरनाक तरीकों में प्रशिक्षण के द्वारा गाँधी को विश्वास हो गया था कि सविनय अवज्ञा के उद्यम के लिए जनता को अच्छी तरह तैयार किया जा सकता था।

सविनय अवज्ञा का चाहे जो भी प्रकार हो। गाँधी बहुत स्पष्ट थे प्रत्येक अवज्ञा का कार्य सविनय होना जरूरी है। जिसमें स्थितियाँ खुली हों और अहिंसा की ओर ले जाए। उन्होंने कहा कि हमें, इसे पूर्ण और ज्यादा महत्व किया जाना चाहिए, 'सविनय' के क्रिया विशेषण को बजाय अवज्ञा को। अवज्ञा बिना सविनयता, अनुशासन, विभेद, अहिंसा के निश्चित रूप से विनाश हैं। उन्होंने मान्यता दी कि सविनय अवज्ञा को कभी भी अव्यवस्था का अनुसरण नहीं करना चाहिए। यदि कुछ भी ऐसा होता है तो यह आपराधिक अवज्ञा में रूपांतरित हो जाती है जो कि निंदनीय है। मान लो कभी हिंसा अचानक फूट पड़े तो सविनय अवज्ञा के पक्के समर्थक इस हिंसा को रोकने के वास्तविक प्रयास करने चाहिए यदि चाहे उसका जीवन खतरे में ही क्यों न हो। इस प्रकार सविनय अवज्ञा के पवित्र उद्देश्यों को संक्षिप्त विवरण देते हुए गाँधी ने कहा कि "सविनय अवज्ञा की योजना में हिंसा को निष्प्रभावी एवं तात्विक रूप से पूर्णरूपेण अहिंसा द्वारा, घृणा को प्यार द्वारा और झगड़ो को समझौतो द्वारा हटाने की कल्पना की गई है। सविनय अवज्ञा के ऐसे पवित्र उद्देश्यों को, गाँधी ने प्रत्येक नागरिक का जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान की। हालांकि गाँधी ने यह माना कि व्यक्ति की दी हुई कमजोरी और देश-काल की अपेक्षा, विशेषज्ञ कार्य या कानून के संदर्भ में सविनय अवज्ञा का सहारा लेने की बुद्धिमता एक बहस का मुद्दा बन गया था तथा यह देरी व सावधानी की व्यावहारिक सलाह के लिए खुला है। उन्होंने माना कि अधिकारों पर अपने आप में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।

कर्तव्य प्रत्येक अधिकार की पूर्व कल्पना है। गाँधी का भी इस मत में विश्वास था। इस मान्यता को सविनय अवज्ञा के क्षेत्र में विस्तारित करते हुए गाँधी बहुत स्पष्ट थे- सविनय अवज्ञा के कार्य में लगाने से पहले व्यक्ति में राज्य के कानुनों के प्रति सहिष्णुता की भावना को पोषित करना जरूरी था। उन्होंने यह भी पहचान की कि - सविनय प्रतिरोधक को उग्र नेतृत्व का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि प्रतिरोधक केवल विनम्र एवं अहानिकारक पीड़ा द्वारा ही बुराइकर्ता, जो कि किसी प्रतिरोध की अनुपस्थिति में गलत कार्य करने का निढाल हो गया, को प्रभावी रूप से अशुभ कार्यो से दूर कर सकता था। उन्होंने निरतंर जोर देते हुए कहा कि यदि सविनय अवज्ञा वास्तव में सविनय है तो यह निश्चित रूप से

विरोधी में भी प्रकट होगी। वे महसूस करते है कि प्रतिरोध का इरादा उसको नुकसान पहुँचाना नहीं है। उन्होंने जोर दिया कि अवज्ञाकर्ता को इच्छा से कानूनों के उल्लघंन पर उपलब्ध प्रतिबंधों को स्वीकार और पुष्टि के उन सभी मामलों को छोड़कर जहां दण्ड ने व्यक्ति की गरिमा का और नैतिक आचार संहिता का उल्लघन हुआ। गाँधी ने इसे संवैधानिक विरोध का सबसे शुद्धतम रूप माना, शुद्धता, शक्ति, विकास के प्रयास के रूप में और सविनय प्रतिरोधक को परोपकारी और राज्य के मित्र के रूप में मान्यता प्रदान की।

गाँधी ने सविनय अवज्ञा के कई प्रकारों की पहचान की उनमें सबसे अधिक प्रभावी प्रकारों में शामिल है- धरना, बंद, रैलियों व बैठकों का आयोजन करना, करो की अदायगी नहीं करना, ओर कानून विशेष का विचार पूर्वक अवज्ञा करना।

गाँधी ने धरने की रक्षात्मक सविनय अवज्ञा के साधन के रूप में वकालत की क्योंकि यह सरकार पर सामाजिक- आर्थिक व राजनीतिक दबाव बनाते है साथ ही जनमत का निर्माण करते है और आत्म निर्भरता की भावना को बढ़ावा देता है।

सविनय अवज्ञा का एक दूसरा प्रकार बंद, रैलियों व बैठकों का आयोजन करना था जिसकी गाँधी ने काफी वकालत की और वास्तविक निर्माता भी थे। गाँधी ने इसके प्रयासों में सरकार के अन्यायपूर्ण प्रतिबंधात्मक आदेशों के विरूद्ध लोगों को एक जुट कर विरोध करना और सरकार के गलत कार्यों के विरूद्ध जनमत का निर्माण कार्यों में आदि को शामिल किया।

करो की अदायगी रोकने को भी गाँधी ने सविनय अवज्ञा का एक अन्य रूप में मान्यता प्रदान की। जिसमें सरकार द्वारा स्वीकारकर्ता पर लगाये जाने वाले पुर्व निर्धारित करों की अदायगी या सरकारी फीस वसूली जानें, जिनके लिए वे सोचते है कि यह अन्यायपूर्ण है, के लिए मना करना शामिल हे। इसका उद्देश्य अस्तित्व के महत्वपूर्ण स्त्रोतों का संरक्षण करना तथा सरकार को मजबूत बनाना जैसे - वित्त, और इसके माध्यम से सरकार पर प्रभाव डालना ताकि वह अन्यायपूर्ण आदेशों को खारिज कर दे।

करों की अदायगी रोकने के समान भी सविनय अवज्ञा का एक अन्य रूप राज्य के कानून विशेष की अवज्ञा करना था, जिसकी गाँधी ने वकालत की थी। इसमें उन कानूनों का चुनाव कर अवज्ञा की जाती है जो व्यक्तियों की मूलभूत आवश्यकता को पूरा करने में असफल रहे या जिन से व्यक्तियों की गरिमा का उल्लंघन किया। गाँधी ने वकालत की कि अवज्ञा हेतु कानून विशेष का चुनाव बड़े ध्यान एवं विवेक के साथ होना चाहिए। केवल ऐसे कानूनों की जो नागरिकों के हितों को नुकसान पहुचाते थे या जो न तो नैतिक थे न ही अनैतिक, अवज्ञा के लिए चुनाव किया जाना चाहिए। इसके अलावा उन्होंने जोर दिया कि ऐसे कानूनों का चुनाव हो जो लोगों की बड़ी संख्या में सहभागी बनने में भी सहायता करें।

8.2.4 रचनात्मक कार्यक्रम

सत्याग्रह की पद्धतियों के वर्गीकरण की अन्तिम श्रेणी में रचनात्मक कार्यक्रम को शामिल किया गया। इसने सम्भवत: सत्याग्रह अभियान को अधिक सकारात्मक स्वरूप प्रदान किया। गाँधी ने इसे बहादूर की अहिंसा के लिए प्रशिक्षण तथा स्वराज प्राप्ति के साधन के रूप में मान्यता प्रदान की। सत्याग्रह आन्दोलन के अनिवार्य भाग के रूप मे यह सत्याग्रहियों के बीच

अच्छी समझ पैदा करता है, और उन्हें आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बनाता है जिसको गाँधी सत्याग्रह अभियान के प्रभावी रूप से जारी रखने के लिए अपरिहार्य मानते थे। एक प्रशिक्षण प्रक्रिया के रूप में यह अनुशासन सैनिकों में सत्याग्रहियों की एक लम्बी पंक्ति की भर्ती करता है, इसकी खोज किसी भी सत्याग्रह अभियान को नैतिक रूप से पतन से लेकर दंगों जैसी हिंसक गतिविधियों की ओर बढ़ने से रोकने के लिए की गई थी। इसी तरह सत्याग्रही और विरोधी के बीच एक साधन के रूप में विरोधी को समझाने, कि विरोधी के प्रति सत्याग्रही की चिन्ता और इरादे अच्छे हैं, का काम करती है। यह समाज के बड़े स्तर पर सामुदायिक तनाव, अस्पृश्यता, अशिक्षा, बेरोजगारी आदि सामाजिक बुराइयों के समापन के लिए कार्य किया है। इसलिए इसमें विद्यमान व्यवस्था के पुनर्निर्माण के प्रयासों का प्रतिनिधित्व किया वही सत्याग्रह अभियान विद्यमान व्यवस्था में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक अन्याय के विरूद्ध अभियान था। 1941 में जब गाँधी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम के दर्शन की व्याख्या की, यह सत्य और अहिंसक साधन पूर्ण स्वराज जीतने के साधन के रूप में, तब उन्होंने 15 बिन्दुओं पर प्रमुखता से जोर दिया जिनकों उनके रचनात्मक कार्यक्रम में शामिल किया गया -

1. साम्प्रदायिक एकता के लिए कार्य करना,
2. अस्पृश्यता निवारण,
3. शराब बन्दी,
4. खादी की स्वीकारोक्ति
5. ग्रामीण उद्योगों का विकास
6. गाँवों की स्वच्छता,
7. मूल शिक्षा को प्रोत्साहन
8. प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन
9. महिला उत्थान,
10. स्वास्थ्य और स्वच्छता को बढ़ावा,
11. हिन्दुस्तानी भाषा की स्वीकारोक्ति हेतु प्रचार-प्रसार,
12. प्रान्तीय भाषाओं को प्रोत्साहन
13. आदिवासियों की सेवा,
14. श्रमिकों, किसानों व छात्रों को संगठित करना।

गाँधीजी के बाद उनके अनुयायियों ने इसको बढाते हुये इसमें पाँच अन्य कार्यक्रमों जैसे गो रक्षा, प्राकृतिक चिकित्सा को बढ़ावा देना, भूदान, ग्रामदान और शान्ति सेना का निर्माण करना को शामिल किया।

8.4 सारांश

गाँधीजी ने प्रतिरोध के लिए एक नैतिक व मूल्यवान साधन प्रदान किया है। जन चेतना जाग्रत करने, अनुशासित कर आत्म-पीड़न के लिए साहस प्रदान करने में सत्याग्रह का महत्वपूर्ण स्थान है। गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत सत्याग्रह संघर्ष-समाधान का अहिंसक प्रतिरोध है जो संघर्ष में

लिप्त सभी पक्षों और समाज को प्रगति की ओर ले जाने की सोच रखता है। इसका प्रयोग सार्वभौम रूप से किया जा सकता है। काई भी व्यक्ति जो सत्य और नैतिक मूल्यों के प्रति सच्ची आस्था रखता हो वह इसका सफल प्रयोग कर संघर्षों का शान्तिमय और प्रभावी समाधान ढूँढ सकता है। गाँधीजी ने जिन सत्याग्रह के तकनीकों का ज्ञान दिया है वे विभिन्न प्रकार के अन्तर-वैक्तिक और सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक संघर्षों के समाधन करने में सहायक हो सकते हैं। आवश्यकता यह कि कि इन्हें पूर्ण विवेक, सावधानी और इसके द्वारा अपरिहार्य माने जाने वाले सिद्धान्तों को पूर्ण इमान्दारी से अनुकरण किया जाये।

8.5 अभ्यास प्रश्न

1. सत्याग्रह के विभिन्न तकनीकों की चर्चा कीजिए।
2. असहयोग के विभिन्न तकनीकों पर प्रकाश डालिये।
3. सत्याग्रह के विविध शोधक एवं पश्चातापी युक्तियाँ की समीक्षा कीजिए।
4. सत्याग्रह के विविध सविनय अवज्ञा संबंधी तकनीकों की चर्चा कीजिए।
5. रचनात्मक कार्यक्रम के बारे में गाँधीजी के विचारों की विवेचना कीजिए।

8.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ट्र्चक, रोनाल्ड, गाँधीयन पॉलिटिक्स इन नॉन-डायमेंशन एण्ड प्रस्पेक्टिव इन गाँधिज्म, इन बी.टी. पाटिल (सम्पा.), इन्टर इण्डिया पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1989
2. गाँधी, एम.के. सर्वोदय, भारतरत्न कुमारप्पा (सम्पा.), नवजीवन, पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1964
3. बोस, एन.के., सलेकशन्स फ्रॉम गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाह, 1972
4. बोंदुरां, जे., कॉनवेस्ट ऑफ वायलेंस : द गॉधीयन फिलॉसॉफी ऑफ कालक्ट, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस न्यूजर्सी, 1958
5. अय्यर, राघवन ए द मोरल एण्ड पॉलिटिकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1973
6. भट्टाचार्य, बुद्धदेव, एवोल्यूशन ऑफ द पोलिटिकल फिलासफी ऑफ गाँधी, कलकत्ता बुक हाऊस, कलकत्ता, 1969

इकाई - 9

महात्मा गाँधी के धर्म संबन्धित विचार

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 सत्य
9.2.1 सत्य और ईश्वर
9.2.1.1 ईश्वर सत्य है।
9.2.1.2 सत्य ईश्वर है।
9.2.1.3 'ईश्वर सत्य है' से ' सत्य ईश्वर है। '
9.3 अहिंसा
9.4 धर्म
9.5 गाँधी से पूर्व विचारकों के धर्म सम्बन्धी विचार
9.5.1 दयानन्द
9.5.2 विवेकानन्द
9.5.3 अरविन्द घोष
9.5.4 तिलक
9.5.5 गाँधी के अनुसार धर्म
9.6 धर्म और राजनीति
9.7 सारांश
9.8 अभ्यास प्रश्न
9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:-

- गाँधी के धार्मिक विचारों को समझना।
- सत्य सम्बन्धी अवधारणा को समझना।
- 'ईश्वर सत्य है ' से 'सत्य ईश्वर ह ' । पहेली पर विचार करना।
- अहिंसा सम्बन्धी विचारों को जानना।
- धर्म और राजनीति के सम्बन्धों को समझना।

9.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी भारतीय जनमानस के सन्त, दार्शनिक, विचारक, सुधारक, धर्मपरायण, कर्त्तव्यनिष्ठ महामानव माने जाते हैं। भारतीय जनता को समस्त भौतिक कष्ट से मुक्ति दिलाकर सभी प्रकार से उनका कल्याण करना चाहते थे। वे संकीर्णवाद रूढ़िवाद और

सम्प्रदायवाद के खिलाफ थे। व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों में उचित सन्तुलन रखते हुए व्यक्ति का कल्याण चाहते थे। धर्म गाँधी के आदर्श समाज की आधारशिला है। उनकी दृढ़ मान्यता है कि "धार्मिक चेतना ही एक सुदृढ़ सामाजिक और राजनीतिक संरचना का विश्वसनीय आधार हो सकती है।" उनके अनुसार धर्म शाश्वत और, सार्वभौम नैतिक नियमों का संग्रह है। उन्होंने कहा "मेरे मत में धर्म का अर्थ है- नैतिकता। मैं ऐसे किसी धर्म को नहीं मानता जो भौतिकता का विरोध करता है या नैतिकता के परे कोई उपदेश देता है। धर्म तो वास्तव में नैतिकता को व्यवहार में घटित करने की पराकाष्ठा है।"

गाँधी की धर्म की धारणा, प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में प्रतिपादित धर्म की धारणा के अनुरूप है। भारतीय ग्रन्थों में धर्म को एक ऐसी सर्वोच्च विधि के रूप में चित्रित किया गया है जो व्यवस्था का मूल आधार है। उसमें नैतिक-मूल्यों, मानवता के सार्वभौमिक और शाश्वत सिद्धान्तों तथा मानवीय आचरण के विवेकसम्मत नियमों को सम्मिलित किया गया है। सत्य और अहिंसा गाँधीजी के अनुसार धर्म के दो मूल तत्व हैं। उनके अनुसार धार्मिक आस्था व्यक्ति के आचरण में मानव मात्र की समानता में विश्वास व ईश्वर की प्रत्येक रचना के प्रति असीम प्रेम के रूप में घटित होती है। उन्होंने कहा "धर्म हमें यह सिखाता है कि सभी आत्माओं का स्त्रोत एक है। व्यक्तियों के बीच भेद केवल क्षणिक है और भ्रम मात्र है।" महात्मा गाँधी ने समस्त विश्व को 'सत्य, अहिंसा और नैतिकता व शान्ति का संदेश दिया। गाँधी जी के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक विचार आज भी सम्पूर्ण मानव समाज के लिए उपयोगी एवं प्रासंगिक है।

9.2 सत्य

सत्य गाँधीजी के दर्शन का केन्द्रीय तत्व है। गाँधीजी ने सत्य के दो स्तरों को स्वीकार किया- निरपेक्ष व सापेक्ष। गाँधीजी के अनुसार निरपेक्ष सत्य का अर्थ है 'वह जो वास्तव में है' या "जिसकी सत्ता है। उनका मत है कि ब्रहम के अतिरिक्त अन्य समस्त तत्व नश्वर है इसलिये उनकी सत्ता वास्तविक नहीं है। अत: ब्रहम या ईश्वर को ही निरपेक्ष सत्य के रूप में समझा जा सकता है। गाँधी के अनुसार निरपेक्ष सत्य सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और शाश्वत होता है। इस निरपेक्ष सत्य को गाँधी ने इतना महत्वपूर्ण माना कि 'ईश्वर ही सत्य है' की अपेक्षा उन्होंने 'सत्य ही ईश्वर हैं, कहना अधिक उपयुक्त समझा। उन्होंने सत्य ही ईश्वर है।" उनके अनुसार सत्य ही वह तत्व है जिससे अन्य सभी तत्व निर्मित हुए हैं। इस प्रकार सत्य स्वयं अपनी शक्ति के कारण अस्तित्व में है। वह किसी अन्य तत्व व शक्ति के समर्थन पर निर्भर नहीं है, अपितु समस्त अस्तित्ववान तत्वों का मूल आधार है। केवल सत्य ही शाश्वत है और अन्य समस्त तत्व भंगुर हैं।

गाँधीजी के मत में व्यक्ति निरपेक्ष सत्य की ओर बढ़ने के लिये सापेक्ष सत्य को माध्यम बना सकता है। सापेक्ष सत्य पर चलना भी कोई सरल मार्ग नहीं है। उसके लिए पवित्रता, दृढ़ता और साहस की आवश्यकता होती है। उनका मत है कि सापेक्ष सत्य मानव जीवन में 'प्रेम' के आदर्श को अपना लेने से सिद्ध किया जा सकता है और प्रेम का अर्थ है कि व्यक्ति अहंकार से पूर्णत: मुक्त हो जाये और स्वयं का शून्य समझने लगे। गाँधी के अनुसार

सापेक्ष सत्य की प्रति निष्ठावान व्यक्ति प्राणि-मात्र के प्रति प्रेम को अपने जीवन में पूरी तरह अपना लेगा और प्रत्येक जीवित तत्व को अपना ही अंश समझने लगेगा।

गाँधी के मत में केवल सत्य बोलना, सत्य के प्रति निष्ठा का प्रमाण नहीं है। सत्यपरायण व्यक्ति मन, वचन और कर्म तीनों से सत्य के प्रति समर्पित रहेगा। मन की पवित्रता, कर्म की शुद्धता और वाणी की निर्मलता व्यक्ति के आचरण की सत्य-परायण्ता के तीन स्पष्ट मापदण्ड हैं।

गाँधी ने स्पष्ट किया कि सत्यपरायण व्यक्ति स्वार्थ, लोभ, भय और अहंकार से मुक्त होगा क्योंकि वह सापेक्ष सत्य पर आचरण तभी कर सकेगा, जब उसे प्राणि-मात्र के ईश्वर के अंश होने में विश्वास हो। इस प्रकार के सत्यपरायण व्यक्ति न तो स्वयं को किसी से हीन समझेगा और न ही किसी अन्य को स्वयं से हीन। ईश्वर में उसकी अगाध निष्ठा, उसे किसी भी भय से भयभीत नहीं होने देगी। इस प्रकार सत्यपरायण व्यक्ति दूसरों के प्रति पूरे आदर का भाव रखते हुए, किसी भी अन्याय के विरूद्ध पूरी तरह संघर्ष करने के लिये सदैव तत्पर रहेगा।

गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि सत्यपरायणता में पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों के लिये कोई स्थान नहीं होता। सत्य के प्रति निष्ठावान व्यक्ति विनम्रता से यह सदैव स्वीकार करेगा कि किसी स्थिति-विशेष में उसके दृष्टिकोण में अपूर्णता की संभावना हो सकती है। ऐसी स्थिति में, जब भी उसका निर्मल हृदय और अन्तरात्मा, उसे यह स्वीकार करने के लिये प्रेरित करे कि उसका पक्ष सत्य नहीं था, तो वह गलती को स्वीकार करने के लिये सदैव साहसपूर्वक तैयार रहेगा।

सत्य का ही अस्तित्व है और यही जीवन की वास्तविकता है अत: गाँधी के लिए सत्य ही सर्वोपरि सिद्धान्त है जिसके द्वारा सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड व्याप्त है। सत्य के बिना किसी दूसरे सिद्धान्त अथवा नियम का पालन सम्भव नहीं है। गाँधी के अनुसार जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप में, नीति-निर्माण में तथा जीवन की सभी गतिविधियों में सत्य का ही पालन होना चाहिए क्योंकि सत्य के अतिरिक्त और कुछ जानने योग्य, आचरण योग्य एवं प्राप्त करने योग्य है ही नहीं। सत्य हमारे सभी व्यवहारों की कसौटी है और परिणाम भी। अत: इसी सत्य को ढूँढने का, जानने का प्रयास होना चाहिए। यही कारण है कि सत्य की साधना ही गाँधी के समग्र जीवन का लक्ष्य बन गई।

गाँधी के अनुसार जीवन की सार्थकता उसकी सरलता में है और सत्य मार्ग ही इसकी प्राप्ति का स्त्रोत है। जीवन के प्रत्येक छोटे-बड़े कार्यों में सत्य का ही पालन होना चाहिए क्योंकि सत्य प्रेरित इन्हीं कार्यो की श्रृंखला ही व्यक्ति को सत्योन्मुख बनाती है। सत्य सम्बन्धी ऐसी धारणा उपनिषदों में भी मिलती है जहाँ कहा गया है कि 'जो व्यक्ति असत्य भाषण करता है, वह निश्चयपूर्वक मूलसहित सूख जाता है।' यजुर्वेद में कहा गया है कि ‘वाणी द्वारा सत्य व्यवहार की क्षमता मुझे प्राप्त हो।” गाँधी की सत्य की धारणा इन सभी धार्मिक ग्रन्थों से प्रभावित थी जहाँ सत्यवादिता का सत्य जीवन का प्रथम सोपान माना गया है। गाँधी के अनुसार सत्य वाणी ही वो कुंजी है जो जीवन की प्रत्येक कठिनाइयों को दूर कर देती है और जीवन की सरलता को यथार्थ बनाती है। मन-वचन-कर्म से जो व्यक्ति सत्योन्मुख होगा, वही पूर्णता को

प्राप्त कर सकेगा। तैत्तिरीय उपनिषद में लिखा है कि सत्य का ही पालन करो और सत्य मार्ग से कभी विचलित न हों।

सत्य और ईश्वर

ईश्वर सत्य है - इस वाक्य के द्वारा गाँधी यह बतलाना चाहते हैं कि ईश्वर को पारिभाषित करने का एकमात्र व्यापक शब्द ' सत्य' है। हिन्दू ईसाई या इस्लाम धर्मों में ईश्वर के जिन गुणों और नामों की चर्चा हुई है, वे ईश्वर को समुचित रूप से पारिभाषित करने में असमर्थ हैं क्योंकि अंतिम रूप से वे सत्य पर ही आश्रित हैं। ' ईश्वर सत्य है ' वाक्य के द्वारा ही ईश्वर का सबसे पूर्ण विवरण प्रस्तुत होता है।

'ईश्वर सत्य है ' वाक्य के विश्लेषण से कई प्रकार के अर्थ लगाए जा सकते हैं और तदनुरूप 'ईश्वर और सत्य' के बीच संबंध भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हो सकते हैं। सामान्यत: हमें ऐसा लगता है कि ईश्वर, वाक्य के उद्देश्य होने के कारण द्रव्य या सत्ता का द्योतक है तथा ' सत्य', वाक्य के विधेय होने के कारण गुण का सूचक है। इस अर्थ में 'ईश्वर और सत्य' में द्रव्य-गुण संबंध स्थापित हो जाता है। परन्तु यह व्याख्या सटीक और सुन्दर नहीं मालूम पड़ती। दूसरी व्याख्या, यह की जा सकती है कि 'सत्य' ईश्वर का गुण नहीं बल्कि ईश्वर ही है। गाँधी ने एक जगह ऐसा माना भी है। इस अर्थ को लेने पर ' ईश्वर' और ' सत्य' के बीच में तादात्म्य संबंध स्थापित होता है। यदि हम सत्य को ईश्वर का गुण नहीं मानकर ईश्वर मानते हैं तो यहाँ सत्य का अर्थ 'चरम तत्व ' या 'निरपेक्ष सत्य' हो जाता है। फिर निरपेक्ष सत्य को अनंत ज्ञात और अनत आनन्द सम्पन्न मानना ही पड़ेगा। अत: 'ईश्वर सत्य है' वाक्य का अर्थ हुआ 'ईश्वर सच्चिदानन्द है।' निरपेक्ष सत्य का कोई विशिष्ट रूप नहीं होता है। अत: ईश्वर एक प्रकार की निर्गुण भावात्मक सत्ता का रूप ले लेता है। इस प्रकार चाहे हम 'ईश्वर सच्चिदानन्द है' कहें या ' वह निर्गुण भावात्मक सत्ता है' कहें- दोनों के द्वारा यह सूचित होता है कि 'ईश्वर चरम तत्व है'।

'ईश्वर सत्य है ' वाक्य का एक तीसरा भी अर्थ लग सकता है। इस अर्थ के अनुसार नैतिक मूल्यों में सत्य को गाँधी ने सर्वोच्च माना है। इसीलिए वे जीवन भर सत्य के लिए कष्ट झेलते रहे। अपनी सभी गलतियों को पिता के सामने कहना, शिक्षक के बतलाने पर भी चोरी से नकल नहीं करना, सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र नाटक से प्रभावित होना और स्वराज्य की तुलना में सत्य को श्रेष्ठ मानना- इत्यादि ऐसे उदाहरण हैं जो सत्य के प्रति उनकी गहरी आस्था को व्यक्त करते हैं। अत: ' ईश्वर सत्य है' वाक्य का यह अर्थ हो सकता है कि सत्य ही आराध्य है'। यही वास्तव में ईश्वर है।' इस अर्थ में भी ईश्वर और नैतिक सत्य के बीच तादात्म्य संबंध ही स्थापित होता है।

इस प्रकार पहला अर्थ तात्त्विक दृष्टि को सामने रखता है, दूसरा धार्मिक दृष्टि को और तीसरा नैतिक दृष्टि को। अत: 'ईश्वर सत्य है' वाक्य में ईश्वर वस्तुत: धर्म और नैतिकता की गंगा-यमुना तथा सरस्वती के संगम पर खड़ा मालूम पड़ता है।

गाँधी के दर्शन को कुछ लोग जैसे बी.एम. दत्ता, धीरेन्द्र मोहन दत्त वैष्णव दार्शनिक मानते हैं। हालांकि गाँधी ईश्वर को नहीं मानकर उसको विचार और विधि का स्वरूप मानते हैं। गाँधी मानते हैं कि ईश्वर को परिभाषित करना असंभव है, लेकिन हम उनके अस्तित्व को महसूस करते हैं और केवल उसका ही अस्तित्व है। गाँधी ईश्वर को सत्य के रूप में भी परिभाषित करते हैं। 1925 में उन्होंने कहा कि ईश्वर और सत्य दोनों एक दूसरे की परिवर्तनीय इकाईयाँ हैं। 1931 में स्वीटजरलैंड में गाँधी ने कहा कि में यह चाहूंगा कि "ईश्वर सत्य है" की अपेक्षा सत्य ईश्वर है कहना अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि अनीश्वरवादी के लिए इसे अपनाना अधिक सुविधाजनक होगा। यह संसार ब्रह्मांड के नियमों से चल रहा है और उन नियमों को बनने और लागू करने का कार्य ईश्वरीय सत्ता के अलावा कोई शक्ति नहीं कर सकती। रोम्या रोला उन्हें एक रहस्यवादी मानते हैं कि क्योंकि गाँधी किसी भी निर्णय को लेने से पूर्व अपने अन्दर की आवाज का हवाला देते थे और अन्दर की आवाज उन्हें सही रास्ते पर ले जाती थी। महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में तप के द्वारा अपने आप व्यक्तित्व को इतना शुद्ध बना लिया था कि उनकी आवाज में ईश्वर की आवाज का आभास होता था। दार्शनिक सिद्धान्त में महात्मा गाँधी सत्य और अहिंसा को सर्वाधिक महत्व देते थे।

सत्य ही ईश्वर है - 'ईश्वर' और 'सत्य' का दूसरा सम्बन्ध 'सत्य ही ईश्वर है' वाक्य से प्रकट होता है जिसे गाँधी ने अपने बाद के जीवन में अनुभव किया। गाँधी के अनुसार यह सम्बन्ध अपेक्षाकृत अधिक उचित और पूर्ण है। इस वाक्य के भी भिन्न-भिन्न अर्थ लगाए जा सकते हैं। एक अर्थ तो यह लगाया जा सकता है कि "तथ्यात्मक संवाक्यों का विशेषण (सत्य) व्यक्तित्वपूर्ण आध्यात्मिक वास्तविकता (ईश्वर) है।

इस वाक्य का दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि 'सत्य शुभत्व के गुणों से सम्पन्न है'। 'ईश्वर सत्य है' वाक्य में ईश्वर को चरम तत्त्व माना गया था, परन्तु उस चरम तत्त्व का स्वरूप निरूपण नहीं हुआ था। ईश्वर को सर्व-शक्तिमान, सर्वज्ञाता, सर्वान्तर्यामी और सभी शुभ मूल्यों का संगम माना जाता है। सत्य का स्वरूप कुछ ऐसा ही है। अत: 'सत्य ही ईश्वर है' का अर्थ - 'सत्य' सभी शुभ मूल्यों से परिपूर्ण है। यह अर्थ लेने से 'सत्य' और ईश्वर में द्रव्य-गुण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। 'सत्य' द्रव्य, आधार और ईश्वर गुण या धर्म बन जाता है।

तीसरे अर्थ में 'ईश्वर' को 'सत्य' का एक उपलक्षण माना जा सकता है जो वियोज्य है। वस्तुत:'सत्य' एक व्यापक पद है। इसे शंकर और विनोबा के ब्रह्म के समान व्यापक मान सकते हैं। परन्तु ईश्वर उस सत्य के अन्दर की चीज है। शंकर और विनोबा दोनों ब्रह्म की तुलना में ईश्वर को कम व्यापक माना है। परन्तु ब्रह्म के सबसे समीप ईश्वर तत्त्व है। ठीक इसी प्रकार यह लगता है कि गाँधी का सत्य भी सर्वोच्च सत्ता है, जिसका वर्णन इसके समीप की सत्ता ईश्वर के द्वारा किया जा सकता है।

इस वाक्य का एक चौथा अर्थ भी किया गया है। 'ईश्वर सत्य है' वाक्य के द्वारा हम मात्र ईश्वर का विवरण सत्य गुण के आधार पर देते हैं। जो आवश्यक रूप से अन्य गुणों की अपेक्षा प्रमुख नहीं भी हो सकता है। अत: 'सत्य' के द्वारा 'ईश्वर' का आंशिक विवरण प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु जब हम 'सत्य ईश्वर है' वाक्य पर आते हैं तो सत्य और ईश्वर के बीच

सम्बन्ध पूर्ण हो जाता है। ‘ सत्य', ईश्वर का विवरण नहीं रह कर उसका सार बन जाता है, अत: यह ईश्वर की परिपूर्ण परिभाषा हो जाती है। इरा दृष्टि से ‘ सत्य ईश्वर है ’ का अर्थ यह हो सकता है कि ईश्वर सत्य के साथ तादात्म्य सम्बन्ध रखता है। ऐसी परिस्थिति में किसी भी सत्य प्रतिज्ञाप्ति को ईश्वर मानना पड़ेगा।

‘सत्य ईश्वर है ’ का एक अर्थ यह हो सकता है कि 'सत्य ’ से बढकर कोई फलदायक तत्त्व नहीं है। गाँधी के अनुसार सत्य पर चलने से असीम आत्मशक्ति प्राप्त होती है। असंभव से असंभव कार्य भी मनुष्य अपने जीवन में सत्य के बल पर कर लेता है जैसा गाँधी ने किया भी। अतएव जो शक्ति हमें ईश्वर-भजन, पूजा या ईश्वर कृपा से प्राप्त नहीं होती वह शक्ति हमें सत्याचरण से मिलती है। सत्य की साधना को गाँधी सर्वोच्च मानते भी हैं और इसके लिए निष्काम कर्म पर बल देते हैं। अत: ऊपर का वाक्य यह व्यक्त करता हुआ प्रतीत होता है कि जो कार्य ईश्वर में विश्वास करने से नहीं होता है वह कार्य सत्य में विश्वास करने से होता है। अत: ‘ सत्य ही ईश्वर है' कहना उन्होंने उचित समझा। इस अर्थ के अनुसार ‘ सत्य' और ईश्वर में कारण-कार्य संबंध स्थापित हो जाता है।

गाँधी 'ईश्वर सत्य है ' वाक्य से 'सत्य ही ईश्वर है ' वाक्य पर धारणा बदलने के कारण:-

1. ईश्वर शब्द स्वयं व्यापकता की दृष्टि से सत्य की तुलना में तुच्छ है क्योंकि ईश्वर में विश्वास करने वाले कुछ ही इने-गिने लोग हैं। परन्तु दर्शन के इतिहास में बहुत-से ऐसे निरीश्वरवादी देखने को मिलते हैं जो संशयवादी, अथवा अज्ञेयवादी होने पर भी सत्य में विश्वास करते हैं। ‘ सत्य' में ईश्वरवादी और निरीश्वरवादी- दोनों आस्था रखते हैं। अत: सत्य ईश्वर है विशेष उपयुक्त वाक्य है।
2. ईश्वर के नाम पर, दुर्भाग्य से ही सही, अनेक प्रकार के घृणित व्यवहार होते हैं, जिसका इतिहास साक्षी है। ईश्वर और धर्म के नाम पर अनेक खून खराबियाँ होती रहती हैं। इस्लाम और सिक्ख धर्म के प्रचार में खून-खराबी ही छिपा है। सत्य के नाम पर भी विज्ञान में प्रयोगादि में पशुओं के साथ क्रूरता बरती जाती है, परन्तु वह धर्म आदि के नाम पर हुई हिंसा की तुलना में नगण्य है। गाँधी की राय में जब हमारी बुद्धि ही सीमित है, तो किसी भी शब्द का प्रयोग हम क्यों न करें, उसमें कुछ त्रुटियाँ रहेंगी ही। परन्तु 'सत्य' सर्वश्रेष्ठ है।
3. पुन: गाँधी यह युक्ति देते हैं कि गुजराती में 'गॉड' का अर्थ ईश्वर (मालिक) से लिया जाता है जिसका अर्थ होता है शासक। यदि शासकों के शासक के अर्थ में ईश्वर को लिया जाए तो हमारी सम्पूर्ण नैतिकता का आधार ईश्वर दण्ड-भय हो जाएगा। फिर ईश्वर को शासकों का शासक मानना भी बोधगम्य नहीं है। अत: विशुद्ध शुभ को नैतिकता का आधार मानने तथा बोधगम्यता लाने के लिए 'ईश्वर की तुलना में सत्य' अधिक महत्वपूर्ण है।

4. यदि यह कहा जाए कि ईश्वर का दर्शन होता है, या हम ईश्वर की आवाज़ सुनते हैं, तो बात भले ही कुछ रहस्यवाकियों के अंतर्तम को स्पर्श करे किन्तु यह हमारी सामान्य बुद्धि को नहीं जँचती है।

5. हिन्दू और इस्लाम धर्मों में ईश्वर को निरपेक्ष सत्ता का भी सूचक माना गया है। उपनिषद में 'सत्य ज्ञानमनत ब्रह्म' है तो महाभारत में 'सत्य ब्रह्म सनातनम्' कहा गया है। अत: सत्य ब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त है। इस्लाम के कलाम में भी कहा गया है- एक ही ईश्वर सत्य है (ला इलाह इलल्लाह)। अत: गाँधी ने 'सत्य ही ईश्वर है' वाक्य को सबसे अधिक संतोषप्रद माना है।

6. तीसरी बात यह है कि ईश्वर-प्रत्यय कोई सर्वसम्मत प्रत्यय भी नहीं है। बहुदेवतावाद से एकेश्वरवाद का विकास एवं ईश्वर प्रत्यय के गुणों में जानने एवं मानने वालों के बीच अर्थ-परिवर्तन इस प्रत्यय को विवादास्पद बना देता है।

7. अंतिम बात यह है कि जो ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार भी करते हैं, वे उनके स्वभाव के विषय में नेति, अगोचर, अवाच्य, "अवर्णनोय घोषित कर उसे बुद्धि से परे मानते हैं।" इस प्रकार एक प्रकार का अज्ञेयवाद जो इमर्सन के परमात्मा (Lover Soul) स्पीनीजों के द्रव्य (Substania) कांट के वस्तुत्व (Noumena), स्पेन्सर के अज्ञात तत्व (Unknownable) एवं शोपेनहावर के संकल्प (Will) में भी है। "सारांश यह है कि ईश्वर का वर्णन किसी भी तरह किया जाय, उसमें कई कठिनाइयाँ हैं।"

8. लेकिन जब हम "सत्य ईश्वर है" - ऐसा कहते हैं तो उसमें सत्य के सिद्धान्तों के विषय में चाहे जितने ही दार्शनिक मतभेद रहे हों, लेकिन 'सत्य' रूपी तथ्यों के विषय में भरसक मतभेद नहीं हैं। सत्य की शक्ति और आवश्यकता पर किसी भी व्यक्ति को चाहे वह नास्तिक ही क्यों न हो, आपत्ति नहीं हो सकती। "ईश्वर सत्य है", लेकिन ईश्वर और भी बहुत कुछ है "मानव वाणी में सम्भवत: इसे ईश्वर की सर्वाधिक पूर्ण परिभाषा मानते हैं।" यहाँ सत्य और परमेश्वर पर्यायवाची शब्द हो जाते हैं। "यदि कोई परमेश्वर को न भी माने तो गाँधीजी के सत्य को कोई चोट नहीं पहुंचती, क्योंकि कोई ईश्वर को माने या न माने, सत्य को संसार का सारभूत तत्त्व मानना ही पड़ता है।"

9. "सत्य ईश्वर है" का यह भी अर्थ किया जा सकता है कि सत्य ईश्वर की तरह ही पूजनीय है। सत्य की नि:स्पृह पूजा ने ही गाँधीजी के लिये आस्तिकों के हृदय-मंदिरों में भी अपना स्थान बनाया और इसमें उन्होंने खोया ही क्या? बल्कि इसके विपरीत उन्होंने सत्य को ईश्वर मानकर ईश्वर की सीमित एवं संकीर्ण मर्यादाओं का विस्तार कर 'ईश्वर' के संकीर्ण अर्थ के कारण ही ईश्वर-भक्तों का इतिहास कलंकित होता है और मानवतावादी नास्तिक आदि तो व्यर्थ ही विलग हो जाते हैं।

10. "सत्य ईश्वर है" वाक्य की स्थापना कर गाँधीजी ने केवल तर्क शास्त्र के नियमों का ही पालन नहीं किया बल्कि एक नयी मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक तथा आध्यात्मिक भूमिका

का निर्माण कर मानवता के सामने भारतीय संस्कृति का चिरंतन संदेश- सत्यं, शिवं, सुन्दरम् को प्रस्तुत करते हुए एक नवीन आध्यात्मिक साधना का मार्ग प्रस्तुत किया।

गाँधी का 'ईश्वर सत्य है' वाक्य में 'सत्य ईश्वर है' वाक्य पर आना कई दृष्टियों में महत्त्वपूर्ण है। यहाँ मानों श्रद्धा से विवेक की ओर, धर्म से आध्यात्मिकता की ओर, ससीम से असीम की ओर तथा सापेक्ष नैतिकता से निरपेक्ष नैतिकता की ओर हम प्रगति कर रहे हैं। यह परिवर्तन मानों गाँधी के अखंड सत्य के प्रति शोध अथवा जीवन की गहरी अनुभूति का प्रतिफल है जिसे ज्ञात नहीं कहा जा सकता है। सचमुच यह ईश्वरवाद से अद्वैतवाद की ओर प्रगति है तथा अंधविश्वास और निष्क्रियता के ऊपर खुली दृष्टि तथा कर्त्तव्य-परायणता का प्रहार है। इसमें मात्र ईश्वर पर आधारित विवादास्पद दर्शन को सत्य पर आधारित सर्वमान्य समग्र-दर्शन से मिलाने का प्रयास है।

गाँधी के मतानुसार सत्य और ईश्वर समव्याप्त है क्योंकि सत्य ही ईश्वर है। परन्तु यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि सत्य और ईश्वर गाणितिक अर्थ मे नहीं बल्कि व्यावहारिक अर्थ में एक दूसरे के बराबर हैं। डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त यह मानते हैं कि आधार वाक्य 'ईश्वर सत्य है ' से निष्कर्ष वाक्य ' सत्य ही ईश्वर है' पर प्रस्थान आकारिक तर्कशास्त्र के नियम के भी विरूद्ध नहीं है क्योंकि यहाँ पर सरल आवर्त्तन तभी संभव होता है जब किसी वाक्य के उद्देश्य और विधेय की वस्तुवाचकता समान होती है। डॉ. दत्त शायद यह मान्य कर चुके हैं कि 'ईश्वर' और सत्य की वस्तुवाचकता समान है और इसीलिए वे सरल आवर्त्तन की बात करते हैं। यह ठीक है कि हमारे शास्त्रों ने ईश्वर को ' सत्य ज्ञान अनन्तम्' कहा है और गाँधी ने भी ईश्वर को सत्य स्वरूप समझा है, किन्तु वह व्यक्ति जो ईश्वर को मानता ही नहीं उसके लिए ' ईश्वर सत्य है ' वाक्य तो निरर्थक हो जायगा। शायद इसी कठिनाई को दूर करने के लिए उन्होंने 'ईश्वर सत्य है' की अपेक्षा 'सत्य ईश्वर है' कहना अधिक ठीक समझा। ईश्वर को लोग भले न माने, सत्य को तो कोई अस्वीकार नहीं करता।

'मंगल प्रभात ' नामक पुस्तक में सत्य की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है- साधारणत: सत्य का अर्थ है- सच बोलना मात्र ही समझा जाता है, लेकिन हमने विशाल अर्थ में ' सत्य' का प्रयोग किया है। विचार में, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही सत्य है। इस सत्य को सम्पूर्णत: समझने वाले के लिए और कुछ जानना शेष नहीं रहता, क्योंकि सम्पूर्ण ज्ञान उसमें समया हुआ है। उसमें जो न समाये, वह सत्य नहीं है, ज्ञान नहीं है तब फिर उसमें सच्चा आनन्द तो हो ही कहीं से सकता है। यदि हम इस कसौटी का उपयोग करना सीख जायें तो हमें यह जानने में देर नहीं लगे कि कौनसी प्रवृत्ति उचित है और कौनसी त्याज्य। " इस सत्य को जीवन में उतारना बड़ा कठिन काम है।

सत्य गाँधीजी के बारह व्रतों में से एक व्रत है। व्रत को गाँधीजी परिभाषित करते हुए कहते हैं कि-"जो आत्मा का धर्म है, लेकिन अज्ञान या दूसरे कारणों से आत्मा को जिसका भान नहीं रहता है, उसके पालन के लिए व्रत लेने की जरूरत होती है।" अर्थात् व्रत- स्वगुण धर्मो की अनुपालना के लिए नहीं। चूंकि सत्य मानव का स्वगुण धर्म है, इसलिए यह एक व्रत है। जिसकी अनुपालना अनिवार्य है। गाँधी ने संक्षेप में कहा कि " जो सब कुछ अस्तित्वमान है वह

सत्य है, सत्य सम्पूर्ण ज्ञान का आधार है, यह मनुष्यों की तात्विक वस्तुनिष्ठता की अनुभूति है। उन्होंने सत्य को ईश्वर के रूप में नास्तिकों को उद्देश्यों के लिए भी परिभाषित किया। उन्होंने कहा कि "जब आप ईश्वर के रूप में सत्य को खोजना चाहते हो तो प्रेम ही एक अपरिहार्य मार्ग दिखाई देता है जो कि अहिंसा है। साधन और साध्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, मुझे ईश्वर प्रेम है कहने में कोई संकोच नहीं होता है। इस प्रकार गाँधीजी सत्य को- व्यापक व मानवीय रूप मे परिभाषित करते हैं।

गाँधी का विश्वास था कि अलग-अलग व्यक्तियों के लिए ईश्वर का अलग-अलग अर्थ है। हमारी दृष्टि में ईश्वर अवर्णनीय एवं असमावेशनीय है। "मेरे लिए ईश्वर सत्य और प्रेम है, ईश्वर नीति शास्त्र एवं नैतिकता है।

9.3 अहिंसा

गाँधीजी के अनुसार अहिंसा वह साधन है जिसके द्वारा सत्य की साधना की जा सकती है।

गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि सत्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा अनिवार्य साधन है, अत: अहिंसा स्वयं में साध्य नहीं होते हुए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके बिना सत्य की साधना ही असंभव है।

अहिंसा गाँधी का अविष्कार नहीं है। अहिंसा का आदर्श भारतीय उपनिषदों और बुद्ध तथा महावीर के दर्शन में शताब्दियों पहले प्रतिपादित किया गया था। अहिंसा के सम्बन्ध में गाँधी का योगदान यह है कि उन्होंने नवीन सन्दर्भ में अहिंसा के सिद्धान्त को परिमार्जित किया और मानवीय आचार के एक जीवन्त नियम के रूप में उसकी पुनर्व्यख्या कर दी। परम्परागत अर्थ में अहिंसा एक शब्द है, जिसका अर्थ है 'हिसा न करना' अथवा हिंसा का अभाव। किन्तु गाँधीजी अहिंसा के नकारात्मक अर्थ को अपूर्ण मानते हैं। उन्होंने अहिंसा के नकारात्मक और सकारात्मक दोनों पक्षों पर बल दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि अहिंसा का मर्म किसी को क्षति न पहुँचाने की स्थूल व भौतिक क्रिया की की अपेक्षा, इस क्रिया के पीछे विद्यमान मन्तव्य में निहित है। इस प्रकार नकारात्मक विचार के रूप में अहिंसा का अर्थ है- किसी भी प्राणी को विचार शब्दों या कार्यों से हानि न पहुँचाना। किन्तु यह नकारात्मक अर्थ तभी पूर्ण होता है, जबकि इसके मूल में इस नियम की सकारात्मक प्रेरणा-प्राणी-मात्र के प्रति निरपवाद प्रेम आवश्यक रूप में विद्यमान हो।

गाँधीजी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के प्रति जागृत प्रेम या करूणा अहिंसा का सटीक मापदण्ड है। उन्होंने उदाहरण दिया: यदि मैं किसी ऐसे व्यक्ति पर, जो मुझ पर आक्रमण करने आये बदले में प्रहार करूँ, तो मेरा यह कृत्य अहिंसक हो भी सकता है, और नहीं भी। यदि में भय के कारण उस पर प्रहार नहीं करता तो यह निश्चित रूप से अहिंसा नहीं है। किन्तु पूर्णत: सचेतन होकर प्रहार करने वाले के प्रति करूणा और प्रेम के कारण उस पर हमला नहीं करता हूँ तो यह निश्चित रूप से अहिंसा है। गाँधीजी के अनुसार अहिंसा का सार शाश्वत प्रेम में समाविष्ट है। उन्होंने स्पष्ट किया कि अपने मित्रों और सम्बन्धियों से प्रेम करना तो सहज भाव है। सच्चा अहिंसक दृष्टिकोण वह है, जो व्यक्ति को अपने विरोधियों और शत्रुओं से भी प्रेम

करने के लिए प्रेरित करे। उन्होंने कहा, "अहिंसक उस व्यक्ति के प्रति प्रेम, संवेदना और सेवा के भाव में निहित है जिसे घृणा करने के कारण उपस्थित हों। ऐसे व्यक्ति के प्रति प्रेम करने में, जो उन्हें हमें प्रेम करता है, अहिंसा निहित नहीं है, अपितु यह तो स्वाभाविक नियम है। गाँधीजी के अनुसार सच्ची अहिंसा वह है जो निःस्वार्थ और निरपेक्ष हो। गाँधीजी की मान्यता है कि अहिंसा का विचार, कोई जड़ सिद्धान्त नहीं है, अपितु एक गत्यात्मक और नैतिक आस्था है। अत: विशिष्ट परिस्थितियों में अहिंसा का नियम किसी को को न मारने के स्थूल विचार की अपेक्षा, दूसरों के प्रति निःस्वार्थ प्रेम और उन्हें पीड़ा व कष्ट से मुक्त करने की निर्मल प्रेरणा से निर्दिष्ट होता है। उन्होंने ऐसी परिस्थितियों को स्वीकार किया जबकि किसी दूसरे प्राणी के शरीर को नष्ट कर देने अथवा उसके प्राण ले लेने को भी हिंसा न माना जाये। उन्होंने स्पष्ट किया कि यदि कोई प्राणी ऐसी पीड़ा से कराह रहा है जिसका उपचार असंभव है तो उसे असहनीय पीड़ा से मुक्त करने की दृष्टि से मार डालना हिंसा नहीं माना जायेगा। गाँधीजी ने अपने आश्रम में एक बछड़े को विष था कि उसकी पीड़ा को कम करना तथा उसके प्राणों को बचाना असंभव था।

गाँधीजो के लिए अहिंसा साधना व निष्ठा का हिस्सा है, कोई व्यावहारिक नीति नहीं है। नीति व्यक्ति के स्वार्थपरक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए परिवर्तित की जा सकती हैं; किन्तु एक नैतिक आस्था के रूप में अहिंसा के प्रति समर्पित व्यक्ति की अहिंसा के प्रति आस्था किसी कठिन से कठिन परिस्थिति में भी अडिग रहती है। गाँधी के अनुसार अहिंसा मानव के गरिमामय अस्तित्व का शाश्वत नियम है। किन्तु उनकी असीम शक्ति तभी सक्रिय हो सकती है, जबकि उसे अपनाने वाले व्यक्ति का मन, मस्तिष्क और अहिंसा के प्रति आस्था से पूरी तरह ओतप्रोत हो।

गाँधी की अहिंसा में कायरता के लिए कोई स्थान नहीं है। उन्होंने स्पष्ट किया कि अहिंसा एक ऐसा अस्त्र है जिसका प्रयोग केवल बहादुरों द्वारा किया जा सकता है। उनका दृढ विश्वास था कि भय और अहिंसा, एक दूसरे के बिलकुल विपरीत प्रवृत्तियाँ है। उन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक व्यक्ति पूरी तरह निर्भीक नहीं होगा वह सर्वोच्च मानवीय सद्गुण के रूप में अहिंसा की प्रभावकारी शक्ति को आत्मसात् ही नहीं कर सकेगा। उन्होंने कहा "अहिंसा सर्वोच्च सदगुण है, कायरता निकृष्टतं दुर्गुण है। अहिंसक कृत्य कभी नैतिक विषाद् उत्पन्न नहीं कर सकता, जबकि कायरतापूर्वक कृत्य सदैव नैतिक पतन का कारण होगा।

गाँधीजी का दृढ़ मत था कि अहिंसा का अभ्यास कायरों द्वारा किया जाना संभव ही नहीं हैं। किसी अन्याय का हिंसक साधनों के प्रतिकार करने वाले व्यक्तियों की तुलना में अहिंसा के अनुयायी को अनिवार्य रूप से अधिक साहस और शौर्य की आवश्यकता होगी। उनका मत था कि "एक व्यक्ति जो युद्ध के लिए हाथ में तलवार लिये हुए है, निश्चित रूप से बहादुर है, किन्तु वह व्यक्ति जो अपनी कनिष्ठिका को उठाये बिना भी और बिना किसी भय के मृत्यु का सामना करने के लिए तैयार है, निश्चित रूप से अधिक बहादुर है; जब तक कोई व्यक्ति अपने हाथ में तलवार रखना चाहता है, यह स्पष्ट है कि उसने पूर्ण निर्भयता की स्थिति प्राप्त नहीं की है। दूसरी ओर ऐसे व्यक्ति को कोई भय प्रभावित ही नहीं कर सकता जिसने स्वयं को अहिंसा की तलवार से सुसज्जित कर लिया है।"

गाँधीजी का मत है कि अहिंसा के साधक के समक्ष केवल एक ही भय होता है और वह है ईश्वर का भय। अहिंसक व्यक्ति को नश्वर शरीर की तुलना में आत्मा की शाश्वतता में विश्वास होता है। "आत्मा की शाश्वतता में विश्वास हो जाने मात्र से वह अपने नश्वर शरीर का मोह छोड़ देता है और वह इस सत्य को जान लेता है कि हिंसा के द्वारा, बाह्य, नश्वर और स्थूल चीजों की ही सुरक्षा की जा सकती है, जबकि अहिंसा के द्वारा आत्मा और आत्मसम्मान की रक्षा की जा सकती है।"

9.4 धर्म

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में 'धर्म' का महत्त्व स्वीकार किया गया है। 'धर्म एवं हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित:' अर्थात् धर्म मिटा देने पर मिट जाते हैं, धर्म की रक्षा करने पर रक्षा होती है। उसे वैदिक काल से ही भारतवासियों के जीवन की प्रेरक शक्ति तथा सामाजिक व्यवस्था का आधार माना गया है। इसका महत्त्व हिन्दू, बौद्ध, आधुनिक राष्ट्रवादी, मानवतावादी यहाँ तक कि क्रान्तिकारी विचारों से सम्बन्धित चिन्तन पर गहरा प्रभाव पड़ा है और उन सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोण से 'धर्म' की व्याख्या की है।

'धर्म' अपनी व्यापक व्याख्या में समस्त सृष्टि, चेतन अथवा अचेतन को समाहित कर लेता है। उसमें 'श्रेय' और 'प्रेय' अर्थात् पारलौकिक एवं लौकिक कल्याण दोनों शामिल माने जाते हैं। विशुद्ध या आत्मगत रूप में वह व्यक्ति के अन्तःकरण में रहता है।

भारत में 'धर्म' पश्चिम की तुलना में लोगों के मानस पर बहुत सूक्ष्म रूप से गहराई के साथ प्रभावी होता है। यहाँ 'धर्म' की पश्चिम के 'रिलीजन' (सम्प्रदाय या पन्थ या चर्च) के अर्थ में नहीं लिया जाता। अंग्रेजी में 'धर्म' को कोई समानार्थक शब्द नहीं है। 'धर्म का सम्बन्ध रिलीजियन अथवा नैतिकता अथवा आचरण के नियमों से होता है। वास्तव में उससे जीवन प्रणाली का बोध होता है। यह जीवन के अन्य लक्ष्यों में सामंजस्य तथा समन्वयन लाती है। यहाँ स्पष्टता के लिए 'धर्म' की उपर्युक्त धारणा को, पवित्र, व्यापक, शाश्वत अथवा सत्य आदि विशेषणों के साथ प्रयोग किया गया है। ऐसे 'धर्म' का क्षेत्र समस्त सृष्टि है- चाहे वह चेतन हो या अचेतन। उसमें समस्त सृष्टि के संचालन, रचना और स्वरूप के तत्त्व या सिद्धान्त आ जाते हैं। 'धर्म' में समस्त मानव-प्राणियों के लिए धारणीय नैतिकता, सत्य, ईश्वर का साक्षात्कार तथा तदनुरूप व्यवहार आ जाता है। इस दृष्टि से धर्म जाति, सम्प्रदाय, भाषा, देश, काल, रंगभेद, आर्थिक स्थिति या संस्कृति के भेदभाव बिना समस्त मानव-प्राणियों की ईश्वर प्रदत्त सम्पदा है। 'धर्म' की अनुपालना ब्रह्म, सत्य, परमतत्त्व आदि का साक्षात्कार करने के लिए आवश्यक है। यह स्वत: ही स्पष्ट है कि ऐसे धर्म का पालन करते रहने पर कहीं भी किसी प्रकार के संघर्ष, विवाद, ऊँच-नीच, भाव, कटुता आदि के लिए कोई स्थान शेष नहीं रहता। सभी व्यक्ति परस्पर भाई-चारे की भावना, सहयोग एवं शान्तिपूर्वक जीवन के उच्चतर लक्ष्यों को प्राप्त करने में लगे रहते है। सभी लोग आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपना जीवनयापन करते हैं। इस कारण उनमें आर्थिक असमानता, शोषण, भौतिकवादी प्रतिद्वान्दिता आदि नहीं पाये जाते। 'धर्म' की शाश्वत भावना के जगत में युद्ध, हिंसा, प्रजातिवाद, धध्वंसात्मक शस्त्र-निर्माण आदि कातिरोभाव

हो जाता है। गाँधीज़ी की 'धर्म ' की धारणा इसी व्यापक भाव को लिए हुए है। साथ ही वे 'धर्म ' के विशुद्ध अथवा आत्मगत स्वरूप को भी अपनाते हैं तथा हिन्दू-धर्म से भी अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं।

9.5 गाँधी से पूर्व विचारकों के धर्म सम्बन्धी विचार

भारत में पुनरुत्थान, पुन:जागरण का उद्भव 'धर्म' को आधार बनाकर हुआ है। भारतीय पुन:जागरण के पिता राजा राममोहन राय (1772-1833) ने विविध धर्मों का अध्ययन करने के पश्चात् 'धर्म' को आत्म साधना और आत्मजागृति का मार्ग बताया। वे मानव की सेवा को ही सच्ची ईश्वरोपासना मानते थे। इस पुन:जागरण के प्रमुख निर्माताओं का भी यही विचार था।

9.6.1 दयानन्द

प्राचीन आर्य धर्म के प्रतिपादक दयानन्द (1824-1883) ने पक्षपातरहित न्यायचरण, सत्यभाषण तथा वेदों से अविरुद्ध कर्म को 'धर्म' कहा है। वेद को वे ईश्वर द्वारा प्रदत्त ज्ञान मानते थे, इसलिए उनके अनुसार वेदोक्त आचरण मानव के लिए उपयोगी है। उनके लिए यही वेदोक्त ' धर्म' सभी आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक एवं साम्प्रदायिक समस्याओं का समाधान था। यद्यपि वे अपने आपको हमेशा अराजनैतिक कहते थे, किन्तु उनकी समग्र शिक्षाओं का प्रभाव भारतीय राष्ट्रवाद के उत्थान के रूप हुआ था।

9.6.2 विवेकानन्द:

'धर्म' का सर्वाधिक व्यापक एवं समग्रात्मक दृष्टिकोण विवेकानन्द (1863-1902) के विचारों में देखने को मिलता है। 'इस आशीर्वाद प्राप्त देश की नींव, रीढ़ की हड्डी और जीवन केन्द्र 'धर्म' है और केवल 'धर्म' है। उनके अनुसार 'धर्म' को गौण बनाते ही भारतवर्ष ने अपनी स्वतन्त्रता खो दी और अनेकानेक सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं में उलझ गया।

व्यक्ति की स्वतन्त्रता सबके लिए हैं क्योंकि सभी व्यक्ति ब्रह्म के अंश हैं और इसी नाते वे समान हैं किसी को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। सभी प्रकार के विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए तथा समाज के दलित, पीड़ित तथा शोषित व्यक्तियों को शिक्षा एवं भौतिक साधनों को प्रदान करके बराबर पर लाया जाना चाहिए।

ब्रह्म के इस सर्वव्यापी स्वरूप का अर्थ यह है कि धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष जीवन अथवा वस्तुओं में कोई अन्तर नहीं है। समस्त संसार के भीतर ब्रह्म के व्याप्त होने के कारण सभी सांसारिक गतिविधियाँ पवित्र अथवा धर्मपूर्ण हो जाती हैं तथा सभी निष्काम भाव से किये हुए कर्म पुजा बन जाते हैं। राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति के लिए विवेकानन्द ने सभी के लिए एक सामान्य धर्म की अवधारणा दी। इनके अनुसार सभी धर्मों अथवा सम्प्रदायों के सत्य को स्वीकार करते हुए धार्मिक एकता को प्राप्त किया जा सकता था। उन्होंने कहा कि मेरा मिशन यह बताना है कि प्रत्येक वस्तु धर्म है और प्रत्येक वस्तु में धर्म है।

9.6.3 अरविन्द घोष:

विवेकानन्द ने स्वयं को राजनीति से दूर रखा, किन्तु अरविन्द घोष (1872-1950) ने भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिए क्रान्तिकारी नेता बनकर सक्रिय राजनीति में भाग लिया। उनकी विचारधारा विवेकानन्द से मिलती जुलती किन्तु अधिक मौलिक, सक्रिय एवं चेतनापूर्ण थी। उनके अनुसार मानव को चाहिए कि वह सभी प्रकार की संकीर्णताओं को त्यागकर पराचेतन (Supera Consciousness) की स्थिति को प्राप्त करें। वे भारत की अन्तर्मुखी चेतना को पश्चिम की बहिर्मुखी उन्नति से मिलाकर एक नवीन संश्लिष्ट विचारधारा का निर्माण करना चाहते थे। उनका राष्ट्रवाद एवं मानवीय एकता का आदर्श ऋग्वेद एवं उपनिषदों पर आधारित था। वे सनातन 'धर्म' को ही राष्ट्रवाद मानते हुए कहते थे कि हिन्दू राष्ट्र सनातन धर्म के साथ उत्पन्न हुआ है।

9.6.4 बाल गंगाधर तिलक:

बालगंगाधर तिलक (1858-1920) ने भी 'धर्म' को अति व्यापक अर्थों में ग्रहण किया है। तिलक ने कहा कि 'धर्म' 'धृ' धातु से बना, जिसका अर्थ है धारण करना, ग्रहण करना या आत्मा को परमात्मा से जोड़ना, मनुष्य से मनुष्य को जोड़ना या एक साथ रखना। ऐसे 'धर्म' से हमें ईश्वर व मनुष्य के प्रति अपने कर्त्तव्य को बोध होता है।

तिलक ने हिन्दू सनातन धर्म को लिंग और जाति भेद से विमुक्त मानव-स्वतन्त्रता एवं समानता का पोषक माना है। उनके अनुसार धर्म स्त्री तथा पुरुषों के सम्बन्धों को आध्यात्मिक प्रगति की ओर अग्रसर करने वाला है। उनके अनुसार वर्ण व्यवस्था तथा कर्म-सिद्धान्त मानव को प्रगति की ओर ले जाता हे। सनातन धर्म मोक्ष को जीवन का लक्ष्य मानकर अर्थ तथा काम की पिपासा सन्तुष्ट करने का अवसर देता है, किन्तु उन्हें भी धर्म के नियमों की परिधि में रखता है। कर्म का सिद्धान्त चेतनामय जीवन को मोक्ष की ओर ले जाता है। तिलक के लिए सनातन धर्म विश्वधर्म है। कोई दूसरा 'धर्म' ऐसा नहीं है जो शाश्वत सत्य तथा परब्रह्म की सत्ता का इतना स्थायी एवं निर्मल विचार प्रस्तुत करता हो।

धर्म को वेदों में भी कही धारणा करना, कहीं धार्मिक अनुष्ठान, कहीं प्रार्थना, कहीं शाश्वत सिद्धान्त, कहीं आचरण के नियम से लिया गया है। अथर्ववेद में धर्म को ऐसे ब्राह्मणों में धार्मिक कर्मकाण्ड में माना गया है। गीता में स्वधर्म की अवधारणा है तो मनुस्मृति में मानव धर्म वैशविक में अम्युदय नि:श्रेयस' बौद्ध में 'धम्म ' आदि कहा गया है।

विधि, नैतिकता, सम्प्रदाय या न्याय की भांति धर्म को बाह्य तत्व नहीं है। यह आन्तरिक जीवन का अनावरण है जिससे हमारा बाह्य जीवन प्रभावित होता है। असल में धर्म शब्द से व्यवधान इसलिए होता है कि हम अंग्रेजी के रिलीजन शब्द को इसका पर्यायवाची शब्द मान लेते हैं। रिलीजन शब्द का अर्थ पंथ या सम्प्रदाय हो सकता है, धर्म नहीं। उसी तरह मजहब और दीन में फर्क है। दीन धर्म के अर्थ में होगा, मजहब तो पंथ के अर्थ में होता।

इस व्यापक दृष्टि से धर्म तो एक ही है, फिर धर्म को पंथ या सम्प्रदाय बनाने की कोशिशें में हम अन्याय करते है। सभी धर्मों के मूलाधार में नैतिकता एवं मानवता है तो फिर

कलह का कारण बेकार है। मनु बाल्मीकि रामायण, महाभारत में धर्म के जो 10-11 लक्षण गिनाये गये हैं वे सार्वभौमिक है। किसी भी ईसाई या मुसलमान को उसे मानने में कोई बाधा नहीं। इस दृष्टि से धर्म तो एक ही है और वह 'सेक्यूलर' है। पंथ और सम्प्रदाय भले ही घरौंदे कहे जा सकते हैं, धर्म तो अनन्त सागर है। चाहे अपरोक्षानुभूति का प्रण या वो भक्तिमार्ग की साधना, सबों का साध्य एक ही है। जैसा रहस्यवादी सूफी सभी कहते हैं- जब मैंने द्वैत को मन से बाहर निकाल दिया तब लोगों को एक ही देखा है। अत: एक ही देखता हूँ एक ही ढूंढता हूं एक को ही भजता हूँ इसलिए धर्म के नाम पर धर्म निरपेक्षता की बहस ही बेकार है। धर्म निरपेक्षता यदि पंथ निरपेक्षता का मान लिया जाय तो भी यह बात साफ हो जाती है कि धर्म, पंथ नहीं है। धर्म निरपेक्ष मनुष्य कैसे हो सकता है। भारतीय संस्कृति प्रारम्भ से ही सामाजिक संस्कृति रही है। इसलिए इसका धर्म भी सेक्यूलर होता है। अविश्वास प्रस्ताव के बहस के दौरान गैर सेक्यूलरवाद के आरोपों का जवाब देते हुए अटलजी ने ठीक कहा था 'हिन्दुस्तान सेक्यूलर था, सेक्यूलर है और सेक्यूलर रहेगा।' असल में भारतीय धर्म, भारतीय संस्कृति समन्वय की संस्कृति रही है। किसी पंथ या सम्प्रदाय में फंसना इसका अभीष्ट नहीं हो सकता। हिन्दू राजाओं के साथ यहां के मुस्लिम राजाओं ने भी सेक्यूलरवाद को माना। बाबर से लेकर औरंगजेब ने गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाये। कभी भी उन्होंने इस्लामी राज्य नहीं बनाया। हुकूमत के मामले में इन मुस्लिम राजाओं ने कट्टर मुल्लाओं की बात नहीं मानी। अलाउद्दीन खिलजी ने तो हुकूमत में पंथवाद को आने नहीं दिया। मोहम्मद बिन तुगलक ने, कहा 'हुकूमत के मामले में हिन्दू-मुस्लिम का सवाल नहीं। दोनों ओर की फौजों में हिन्दू और मुसलमान दोनों रहते थे। इस देश में सच्चे धर्म को मानने वाला सेक्यूलरवादी ही होगा।

गाँधी के अनुसार धर्म

गाँधीजी ने स्वीकार किया कि धर्म की इस व्यापक परिभाषा के अतिरिक्त प्रचलित सन्दर्भ में धर्म को, किसी व्यक्ति या समुदाय के द्वारा ईश्वर की साधना के लिए अपनाई जाने वाली पद्धति और उससे जुड़े विश्वासों के संग्रह के रूप में जाना जाता है। किन्तु गाँधीजी की यह भी दृढ़ मान्यता है कि कोई धार्मिक मत, तब तक धार्मिक होने का दावा कर ही नहीं सकता जब तक कि वह ईश्वर की सर्वोच्च सत्ता में विश्वास रखते हुए, सर्वोच्च मानव मूल्यों को, अन्य किसी भी बात की तुलना में अधिक प्रतिष्ठा न प्रदान करे। गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि धर्म ऐसी शक्ति है जो व्यक्ति को विवेकहीन मताग्रहों से मुक्त करती है। " विवेक और दृष्टिकोण की व्यापकता ऐसे दो आधार है जिन पर किसी भी धार्मिक मान्यता का परीक्षण करके ही उसे अपनाया जाना चाहिये, क्योंकि जो बात विवेक सम्मत न हो और संकीर्णता सिखाए वह धार्मिक हो नहीं सकती।"

गाँधीजी ने व्यक्त किया कि धर्म के प्रति विवेकसम्मत दृष्टिकोण का अर्थ होगा कि व्यक्ति सभी धर्मों की मूलभूत एकता को आत्मसात् कर लेगा और यह स्वीकार कर लेगा कि सभी व्यक्ति एक ही ईश्वर की सन्तान हैं। चाहे उनके धार्मिक विश्वास कोई भी हों, उनके बीच कोई भेदभाव किया जाना उचित नहीं है। धर्म का यह पक्ष सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सद्भाव को अनिवार्य बना देगा और धार्मिक दृष्टिकोण से प्रेरित व्यक्ति के मन- मस्तिष्क में,

किसी दूसरे धार्मिक मत के लिए घृणा या विद्वेष का कोई स्थान ही नहीं रहेगा। गाँधीजी ने कहा विभिन्न धर्म तो, एक ही लक्ष्य को प्राप्त करने के विभिन्न मार्ग हैं। जब हमारा लक्ष्य एक ही है तो इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम उसकी प्राप्ति के लिए अलग-अलग रास्तों पर चल रहे है।"

इस प्रकार गाँधीजी ने धर्म को व्यापक व व्यावहारिक बनाकर उसे सांसरिक बनाया तथा यही कारण है कि गाँधीजी ने राजनीति का आध्यात्मीकरण तथा धर्म का लौकिकीकरण किया तथा जैसा डॉ. राधाकृष्णन ने कहा है, "नैतिक व आध्यात्मिक क्रान्ति के महान देवता के रूप में गाँधीजी सदा स्मरण किये जाएंगे, जिसके बिना इस पथभ्रष्ट विश्व को शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।"

गाँधी की धर्म की धारणा, प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में प्रतिपादित धर्म की अवधारणा के अनुरूप है। भारतीय ग्रन्थों में धर्म को एक ऐसी सर्वोच्च विधि के रूप में चित्रित किया गया है जो व्यवस्था के मूल आधार हैं। उसमें नैतिक मूल्यों, मानवता के सार्वभौमिक और शाश्वत सिद्धान्तों तथा मानवीय आचरण के विवेकसम्मत नियमों को सम्मिलित किया गया है। सत्य और अहिंसा गाँधीजी के अनुसार धर्म के दो मूल तत्व हैं। उन्होंने कहा "धर्म हमें सबसे बढ़कर यह सिखाता है कि सभी आत्माओं का स्त्रोत एक है। व्यक्तियों के बीच भेद केवल क्षणिक हैं, और भ्रम मात्र है।"

गाँधीजी ने व्यक्त किया कि धर्म के प्रति विवेक सम्मत दृष्टिकोण का अर्थ होगा कि व्यक्ति सभी धर्मों की मूलभूत एकता को आत्मसात कर लेगा और यह स्वीकार कर लेगा कि सभी व्यक्ति एक ही ईश्वर की सन्तान हैं। चाहे उनके धार्मिक विश्वास कोई भी हों, उनके बीच कोई भेदभाव किया जाता उचित नहीं है। धर्म का यह पक्ष सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सद्भाव को अनिवार्य बना देगा और धार्मिक दृष्टिकोण से प्रेरित व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में, किसी दूसरे धार्मिक मत के लिए घृणा या विद्वेष का कोई स्थान ही नहीं रहेगा। सारे धर्म एक ही बिन्दु की ओर ले जाने वाले अलग-अलग मार्ग हैं। अन्त में यदि हम एक ही लक्ष्य पर पहुंचते हों, तो अलग-अलग मार्ग लेने से क्या हानि होने वाली है? सच पूछा जाय तो जितने ही मनुष्य हैं उतने ही धर्म हैं। धर्म के नाम पर विभिन्न धर्मावलम्बियों के मध्य वैमनस्य को गाँधीजी ने सर्वथा अनुचित मानते हुए लिखा: ईश्वर के लिए आत्माओं को जीतने की बात करना व्यर्थ है। क्या ईश्वर इतना लाचार और असहाय है कि वह अपने लिए आत्माओं को जीत नहीं सकता? प्रत्येक मनुष्य का धर्म उसकी अपनी व्यक्तिगत वस्तु है।"

एक बार डॉ. राधाकृष्णन ने धर्म के प्रति गाँधी के दृष्टिकोण के विषय में तीन स्पष्ट प्रश्न पूछे:

1. आपका धर्म क्या है?
2. आप उसके प्रति क्यों प्रेरित हुए हैं?
3. धर्म का सामाजिक जीवन पर प्रभाव क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर में गाँधी द्वारा की गई टिप्पणी में धर्म की प्रकृति और सामाजिक जीवन में उसके महत्व का मर्म समाविष्ट है। गाँधीजी ने स्पष्ट किया:-

1. मेरा धर्म हिन्दुत्व है, किन्तु मेरे लिये हिन्दुत्व मानवता का धर्म है, उसकी परिधि में उन सारे धर्मों के अच्छे सिद्धान्त सम्मिलित हैं, जिन्हें कि मैं जानता हूँ।
2. मैं अपने धर्म के प्रति सत्य और अहिंसा अर्थात् व्यापकतम अर्थ में प्रेम के आदर्श से प्रेरित होकर आकृष्ट हुआ हूँ।
3. इस धर्म का सामाजिक जीवन में व्यापक प्रभाव है; तथा इसे व्यक्ति के नित्य-प्रति के सामाजिक कार्यों में अनुभव किया जा सकता है। धर्म से प्रेरित व्यक्ति को दूसरों की सेवा के प्रति समर्पित होना चाहिये। सत्य का साक्षात्कार, तब तक संभव ही नहीं है जब तक व्यक्ति उन प्राणियों से अपने व्यक्तित्व का तादात्म्य स्थापित कर, स्वयं का ईश्वर की सत्ता से एकाकार करने के लिये समर्पित नहीं कर दे। एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति के रूप में मैं सेवा से पलायन कर ही नहीं सकता। मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि सेवा से अधिक प्रसन्नतादायक और कोई कार्य हो ही नहीं सकता।

गाँधीजी के अनुसार दूसरे धर्मावलम्बियों के प्रति सहिष्णुता, ईश्वर की अनिवार्य एकता में विश्वास तथा धर्म के प्रति एक ऐसा विवेकसम्मत दृष्टिकोण है कि व्यक्ति किसी अमानवीय और अविवेकपूर्ण धार्मिक विश्वास को अस्वीकार करने का साहस जुटा सके, व्यक्ति के लिए धार्मिक आचरण के जीवन्त मापदण्ड हैं।

गाँधीजी ने स्वयं अपने जीवन में धर्म के प्रति इसी उदार और विवेकशील दृष्टिकोण को अपनाया। उन्होंने यह दावा किया कि वे निष्ठावान हिन्दू हैं, किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि “उनका हिन्दुत्व उन्हें अनिवार्य रूप से इस बात की प्रेरणा देता है कि वे दूसरे धर्मावलम्बियों के प्रति भी समान स्नेह और सहिष्णुता का भाव रखें।" यह स्पष्ट है कि गाँधीजी के लिए धर्म ईश्वर की प्रति समर्पण का पर्याय है। उनका दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर के प्रति समर्पित व्यक्ति मानव मात्र के प्रति सेवा-भाव को ईश्वर की साधना का मार्ग बना लेगा। गाँधीजी ने कहा कि “दरिद्र नारायण की सेवा ही ईश्वर की भक्ति का सबसे अच्छा मार्ग है।”

धर्म गाँधीजी के अनुसार एक ऐसी शक्ति है जो व्यक्ति की ईश्वर से एकाकार हो जाने में सहायता करती है। धर्म की यह आस्था, मत-मतान्तरों और संकीर्ण विश्वासों की सीमाओं से परे व्यक्ति के दृष्टिकोण में उदारता और सहिष्णुता उत्पन्न कर देती है, चाहे वह स्वयं किसी भी सम्प्रदाय के प्रति आस्था रखता हो । गाँधी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि उन्हें दुनिया के अन्य धर्मों की तुलना में हिन्दू धर्म के दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता और आदर का भाव तथा उदात्त मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पण सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध हुआ, और इसी कारण उनकी हिन्दू धर्म में आस्था दृढ़ बनी रही। उन्होंने स्पष्ट किया हिन्दू धर्म की यह उदार प्रवृत्ति उन्हें प्रेरित करती थी कि वे दुनिया के सभी धर्मों के अच्छे सिद्धान्तों को ग्रहण करने के लिए तत्पर रहें। उनका मत था कि दूसरे धर्मों के प्रति घृणा और असहिष्णुता हिन्दु धर्म से असंगत है। उन्होंने कहा “मेरा हिन्दू धर्म सर्वव्यापी है। यह दूसरे धर्मों के प्रति विरोध का समर्थन नहीं करता। सभी धर्म एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। कोई भी व्यक्ति प्रत्येक धर्म के अच्छे सिद्धान्त खोज

सकता है। किसी एक धर्म को दूसरे धर्म से ऊँचा मानना, सन्तुलित धार्मिक दृष्टि-कोण नहीं कहा जा सकता है। वास्तव में सभी धर्म, शाश्वत सिद्धान्तों की दृष्टि से एक-दूसरे के पूरक हैं। अत: किसी एक धर्म के विशिष्ट लक्षण को दूसरे धर्मों का निषेध नहीं माना जा सकता है। सही दृष्टिकोण तो यह होगा कि किसी विशिष्ट धर्म के जो विशिष्ट लक्षण शाश्वत सिद्धान्तों के अनुकूल हों, उन्हें व्यक्ति को अपने स्वयं के धार्मिक विश्वासों के साथ ही पवित्र मानकर स्वीकार कर लेना चाहिये।"

गाँधी ने अन्तर्राष्ट्रीय बंधुत्व संघ के सम्मुख भाषण देते हुए 1928 में कहा था कि "सभी धर्म सच्चे हैं। सब धर्मों में कोई न कोई खराबी है। सभी धर्म मुझे उतने ही प्रिय हैं जितना मेरा हिन्दू धर्म। मैं अन्य मतों का भी उतना ही आदर करता हूँ जितना अपने मत का, अत: मेरे लिए धर्म परिवर्तन का विचार ही असम्भव है। उनका मत था कि अन्य व्यक्तियों के लिए हमारी प्रार्थना यह नहीं होनी चाहिए कि भगवान उन्हें वही प्रकाश दे जो मुझे दिया है, अपितु यह होनी चाहिए कि उन्हें वह प्रकाश और सत्य दो जो उसके श्रेष्ठतम विकास के लिए आवश्यक है। उन्होंने कहा मेरा धर्म वह सब कुछ प्रदान करता है जो मेरे आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है, क्योंकि वह मुझे उपासना करना सिखाता है। मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करें जिससे एक ईसाई अच्छा ईसाई बने सके तथा एक मुसलमान अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा एक दिन हमसे यह पूछेगा कि हम क्या हैं और क्या करते हैं, न कि वह नाम जो हमने अपने को और अपने कामों को दे रखा है।

धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण को अपना लेने से दूसरे धर्मों के प्रति असहिष्णुता, घृणा और विरोध का कोई स्थान नहीं रहता। गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि दूसरे धर्मों के प्रति सम्मान और सद्भाव, शांतिमय सामाजिक व्यवस्था की पूर्व शर्त है। उन्होंने कहा कि सच्चे धर्म का सार, दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सकारात्मक दृष्टिकोण में निहित है। उनका विश्वास था कि घृणा और वैमनस्य से किसी भी धर्म की रक्षा नहीं की जा सकती।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म को गाँधीजी एक ऐसी शक्ति के रुप में स्वीकार करते हैं जो समाज को एकता के सूत्र में बाँध सकती है। धर्म की उनकी धारणा में संकीर्णता, भेदभाव और वैमनस्य के लिए कोई स्थान नहीं है। गाँधीजी ने धर्म के प्रति एक मौलिक दृष्टिकोण अपनाया। व्यक्ति के अन्तःकरण की प्रेरणा के रूप में उन्होंने धर्म के रूप में उन्होंने धर्म को ऐसे नैतिक चेतना का पर्यायवाची माना, जो मनुष्य में एक दिव्य सत्ता के प्रति विश्वास के माध्यम से, दूसरे व्यक्तियों के प्रति प्रेम और सौजन्य का भाव जागृत करे। सामाजिक व्यवस्था में आधारभूत तत्व के रूप में धर्म को उन्होंने एक ऐसी आस्था के रूप में परिभाषित किया जो सामाजिक बन्धनों में समानता, सहिष्णुता और पारस्परिकता के भाव को सुनिश्चित करे।

9.6 धर्म और राजनीति

गाँधीजी ने धर्म और राजनीति के मध्य सम्बन्ध को अनिवार्य माना तथा धर्मविहीन राजनीति को मृत्युजाल की संज्ञा दी। उन्होंने घोषित किया कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानवीय

गतिविधियाँ धर्म से ही अनुप्रमाणित होनी चाहिये। चाहे वे गतिविधियाँ राजनीतिक हों, अथवा सामाजिक व आर्थिक।

गाँधीजी धर्म और राजनीति के मध्य सम्बन्ध को इतना स्वाभाविक मानते थे। राजनीति में धर्म के समावेश को आवश्यक मानते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि वे राजनीति में साम्प्रदायिकता के समावेश के पक्षधर नहीं हैं। उन्होंने कहा 'धर्म का अर्थ संकीर्ण सम्प्रदायवाद नहीं है। यह शाश्वत मानव धर्म, हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाइयत से परे जाता है। यह उनका निषेध नहीं करता, उनका विरोध भी नहीं करता। वह तो उन सबके मध्य तादात्म्य स्थापित करता है और मानवीय क्रियाकलाप में नैतिक और मानवतावादी आग्रहों को सर्वोपरि महत्व प्रदान करके इन धर्मों को वास्तविक बनाता है।" वस्तुत: उन्होंने धर्म-निष्ठता करे, साम्प्रदायिक सद्भाव की अनिवार्य पूर्व शर्त माना।

धर्म के इसी व्यापक पक्ष पर बल देकर ही गाँधीजी ने दावा किया कि राजनीति के प्रति उनके दृष्टिकोण को नैतिकता, आध्यात्मिकता और धर्म से पृथक् नहीं किया जा सकता। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति जीवन के किसी भी क्षेत्र में निष्क्रिय नहीं रह सकता। क्योंकि ईश्वर के प्रति आस्था, उसे जीवन के किसी भी क्षेत्र में विद्यमान बुराई का प्रतिकार करने के लिए अनिवार्य रूप से प्रेरित करेगी।

राजनीति और धर्म दोनों ही उनके अनुसार ऐसे मानवीय अध्यवसाय थे जो एक समान प्रयोजन- मानव के कल्याण के प्रति समर्पित हैं। अत: उन्होंने राजनीति और धर्म को परस्पर निर्भर और पूरक माना। उन्होंने कहा " धर्मविहीन राजनीति में सढांध आती है, और राजनीति से पृथक् किया हुआ धर्म निरर्थक है। राजनीति का अर्थ है- जनता के कल्याण के लिए सक्रियता। कोई भी व्यक्ति जो ईश्वर की साधना करना चाहता है, इस सत् कार्य के प्रति उदासीन कैसे रह सकता है? और क्योंकि मेरे लिये सत्य और ईश्वर एक ही है। अत: मेरी यह आकांक्षा रहेगी कि राजनीति के प्रत्येक क्षेत्र में सत्य के नियम की प्रतिष्ठा हो।"

गाँधीजी के लिए धर्म का मर्म है- मानव मात्र की सेवा के प्रति समर्पण। अत: उनका यह स्वाभाविक निष्कर्ष है कि धर्मविहीन राजनीति अनर्थकारी है और सामाजिक व राजनीतिक सक्रियता की प्रेरणा से शून्य धर्म निरर्थक है। उनके अनुसार राजनीति, शक्ति अर्जित करने अथवा सत्ता प्राप्त करने के लिए नही है अपितु वह तो जनता की सेवा का ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं अपने धर्म का पालन कर सकता है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि ऐसी राजनीति जो धर्म को सुरक्षित नहीं करती, वह निन्दनीय और घृणित है।

गाँधीजी ने धर्म और राजनीति के मध्य अन्तर्सम्बन्ध को आवश्यक मान कर राजनीति को नैतिकता के रूप में परिभाषित कर दिया और उसे मानव कल्याण का साधन बना दिया। राजनीति को सत्य की साधना के आवश्यक साधन के रूप में चित्रित करके गाँधीजी ने उसे एक आध्यात्मिक स्तर प्रदान कर किया। उन्होंने राजनीति की कालिमा को सत्य और अहिंसा के निर्मल प्रभाव से धोकर उसे एक पवित्र मानवीय अध्यवसाय बना दिया। उन्होंने कहा " जब तक मैं अपने आपको, सम्पूर्ण मानव जाति से एकाकार न कर लूँ तब तक मेरे जीवन को धार्मिक जीवन नहीं माना जा सकता और ऐसा मैं यह तब तक नहीं कर सकता जब तक मैं राजनीति

में भाग नहीं लूँ। आज मनुष्य की गतिविधियों का रूप एक अपृथक्करणीय समग्रता बन गया है। सामाजिक, राजनीतिक और शुद्ध धार्मिक कार्यों को, जीवन के पूर्णत: पृथक-पृथक खानों में बांटा ही नहीं जा सकता। मैं ऐसे किसी धर्म को स्वीकार नहीं करता जो मनुष्य के कल्याण के लिए सार्थक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कर्मशीलता की प्रेरणा न देता हो।"

सर्वधर्म समभाव गाँधी के राजनीतिक और धार्मिक विचारों में केन्द्रीय महत्व रखता है। गाँधीजी के धर्म सम्बन्धी विचारों में संकीर्ण सम्प्रदायवाद के लिये कोई स्थान नहीं है। गाँधी के लिए धर्म की साधना का मर्म एक आध्यात्मिकत सत्ता में आस्था होने तथा इस आस्था के मानवीय स्वरूप के घटित होने में समाविष्ट है। धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण को अपना लेने से दूसरे धर्मों के प्रति असहिष्णुता, घृणा और विरोध का कोई स्थान नहीं रहता। गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि दूसरे धर्मों के प्रति सम्मान और सद्भाव, एक शांतिमय सामाजिक व्यवस्था की पूर्व शर्त है। उन्होंने कहा कि सच्चे धर्म का सार, दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सकारात्मक दृष्टिकोण में निहित है। उनका विश्वास था कि घृणा और वैमनस्य से किसी भी धर्म की रक्षा नहीं की जा सकती।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म को गाँधीजी एक ऐसी शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं जो समाज को एकता के सूत्र में बांध सकती है। धर्म की उनकी धारणा में संकीर्णता, भेदभाव और वैमनस्य के लिये कोई स्थान नहीं है। गाँधीजी ने धर्म के प्रति एक मौलिक दृष्टिकोण अपनाया। धर्म का सम्बन्ध विश्व की नैतिक अवस्था से है, मानव धर्म से है, सभी धर्म अच्छे हैं। सभी धर्मों का उद्देश्य एक ही है- मानव कल्याण। उस उद्देश्य को पाने के विभिन्न मार्ग हैं। कोई भी धर्म ऊँचा-नीचा नहीं है। इसलिए गाँधीजी "सर्वधर्म समभाव" की बात करते हैं। समाज की सामाजिक व्यवस्था को बनाएं रखने के लिए सभी धर्मों का समान आदर-सम्मान होना चाहिए। गाँधीजी ने राजनीतिक एवं धार्मिक समस्याओं का अनुभवमूलक समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

9.7 सारांश

महात्मा गाँधी बहु-आयामी व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे। गाँधी के धार्मिक विचारों का आधार स्तम्भ सत्य, ईश्वर और अहिंसा माने जाते हैं। सत्य और ईश्वर के बिना धार्मिक विचारों के बिना समझना असम्भव व अधूरा सा प्रतीत होता है। उनका सम्पूर्ण जीवन धर्म आधारित रहा है। जीवन के सभी पहलुओं (सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक) की सभी गतिविधियों का उद्देश्य धर्म की स्थापना करना था। धर्म का सम्बन्ध विश्व की नैतिक व्यवस्था से है। सभी धर्म अच्छे हैं, सभी धर्मों का उद्देश्य एक ही है- मानव कल्याण। उस उद्देश्य को पाने के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। इसलिए गाँधीजी "सर्व-धर्म समभाव" पर ज़ोर देते हैं। धर्म के प्रति उनका उदार दृष्टिकोण है। गाँधीजी का यह मानना है कि मानव की गतिविधियों को अलग-अलग करके नहीं देख सकते, सभी गतिविधियों का उद्देश्य मानव का कल्याण करना है।

9.8 अभ्यास प्रश्न

1. महात्मा गाँधी के धार्मिक विचारों को समझाइए।

2. महात्मा गाँधी के सत्य एवं अहिंसा सम्बन्धी विचारों का परीक्षण कीजिए।
3. "ईश्वर सत्य हैं" से "सत्य ईश्वर है" ऐसा करने के कौन से कारण उत्तरदायी रहे हैं। स्पष्ट कीजिए।
4. धर्म सम्बन्धी विचारों की विवेचना कीजिए।
5. महात्मा गाँधी के राजनीतिक आध्यात्मीकरण से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
2. गोपीनाथ धवन : दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
3. सिंह, रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986
4. कुमार, रविन्द्र गाँधीवादी दर्शन, नया विश्व नए पड़ाव कल्याण पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2008
5. रविन्द्र कुमार, महात्मा गाँधी और अहिंसा, कल्याण पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1981
6. प्रभाकर, विष्णु, गाँधी : समय, समाज और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
7. पाण्डे, बी.एन., महात्मा गाँधी समग्र चिन्तन, गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, 1946

इकाई - 10

स्वदेशी पर गाँधी के विचार

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 स्वदेशी का अर्थ व परिभाषा

10.3 स्वदेशी की अवधारणा

10.4 स्वदेशी समाज के उद्देश्य

10.5 स्वदेशी द्वारा समाज की प्राप्ति

10.6 खादी व स्वदेशी

10.7 स्वदेशी की महती आवश्यक्ता

10.8 सारांश

10.9 अभ्यास प्रश्न

10.10 सन्दर्भ ग्रंथ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई से हमारा उद्देश्य है कि आपको गाँधीजी की स्वदेशी समाज व्यवस्था से परिचय करवाना। इस इकाई का अध्ययन कर लेने पर आपको निम्नलिखित बातों का ज्ञान हो जायेगा।

- गाँधी जी में स्वदेशी सम्बन्धी विचार क्या थे।
- विकास के बदलते स्वरूप क्या है।
- स्वदेशी का महत्व।

10.1 प्रस्तावना

स्वदेशी का शाब्दिक अर्थ है- 'जो अपने देश का हो' अर्थात अपने देश में ही बना हो। परन्तु गाँधी जी इसे धार्मिक अनुशासन मानते हैं और इसका पालन शारीरिक कष्ट उठाकर भी करने की सलाह देते हैं। वे इसे जीवन का नियम मानते है और उनका विचार है कि यह नियम मनुष्य के मूलभूत स्वभाव में सन्निहित है। स्वदेशी का अर्थ है कि हम दूसरे देशों की अपेक्षा अपने देश की तथा अपने देश के अन्दर भी दूर के स्थानों की तुलना में अपने निकट के पडोसी की सेवा करनी चाहिये। अपने देश व देश की चीजों के प्रति सम्मान और गौरव की भावना रखना ही स्वदेशी का अर्थ है। गाँधी जी के अनुसार “ आत्म बलिदान का तर्कसंगत परिणाम यह है कि व्यक्ति अपने अपने को समाज के लिये बलिदान कर दे, समाज अपने को जिले के लिये, जिला प्रदेश के लिये, प्रदेश राष्ट्र के लिये और राष्ट्र संसार के लिये अपने को बलिदान कर दे।" इस तरह मानव स्वदेशी का पालन कर समाज, देश और विश्व सेवा में अपने को लगा सकता है।

10.2 स्वदेशी का अर्थ व परिभाषा

स्वदेशी आंदोलन (1905) महात्मा गाँधी के पहले ही अस्तित्व में आ चुका था। स्वदेशी आंदोलन मुख्यत: एक राजनैतिक आंदोलन था किन्तु स्वदेशी आंदोलन का मूल था विदेशी का बहिष्कार और भारत का सर्वांगीण पुनरून्ययन। किन्तु उस पुनरून्ययन की रूपरेखा, उसकी गति और दिशा क्या हो इसका स्पष्ट निरूपण महात्मा गाँधी द्वारा प्रस्तुत 'स्वदेशी' की धारणा से हुआ। गाँधीजी के अनुसार - स्वदेशी, विदेशी, का बहिष्कार नहीं है और न ही इसका मतलब विदेशी के प्रति घृणा है। स्वदेशी का अर्थ स्वदेश की बनी हुई वस्तुओं का प्रयोग करना है। किन्तु एक धारणा के रूप में स्वदेशी का अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक है। स्वदेशी एक भावना, आस्था और दृष्टिकोण है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने को उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं तक सीमित रखता है जो उसके निकटवर्ती वातावरण में पायी जाती है। उदाहरण के लिये यदि गांव का लुहार कोई यंत्र बना सकता है, तो गांव के बाहर बने यंत्र का चाहे वह स्वदेश में ही क्यों न बना हो, प्रयोग स्वदेशी की भावना के प्रतिकूल है। स्वदेशी इस दृष्टिकोण से वह भावना है जिसमें समीपस्थ पडोसी की सेवा का भाव प्रधान है। गाँधीजी ने स्वदेशी की परिभाषा बताते हुए कहा था कि "स्वदेशी हमारे अंतराल की वह भावना है जो कि सुदूर की अपेक्षा हमारे निकटतम पर्यावरण के प्रयोग के लिये सीमित करती है।" गाँधी जी के अनुसार- ....स्वदेशी तो शाश्वत धर्म है..... स्वदेशी आत्मा है, खादी इस युग के लिये उसका शरीर। ......स्वदेशी एक सेवा धर्म है... ..स्वदेशी में स्वार्थ नहीं शुद्ध परमार्थ है।"

स्वदेशी इस दृष्टिकोण से वह भावना है, जिसमें निकटतम पडौसी की सेवा का भाव प्रधान है। यह भावना इस शर्त पर आधारित है कि हर व्यक्ति मूलत: अपने पडौसी की ही सेवा करेगा और बदले में पडौसी उसकी सेवा करेगा। यह स्वदेशी का नैतिक पक्ष है और सेवा के द्वारा मुक्ति की साधना उसका आध्यात्मिक पक्ष। इसलिये गाँधी जी ने स्वदेशी को स्वधर्म कहा है और स्वदेशी को धर्म के रूप में अपनाने की प्रेरणा दी है। वह गीता का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए (स्वधर्मे: निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह), बतलाते हैं कि अपने कर्तव्य या स्वधर्म पालन में मृत्यु भी श्रेयकर है, परन्तु दूसरे का कर्तव्य (परधर्म) भयपूर्ण है अर्थात् भय देने वाला है, क्योंकि अपने निकटवर्ती वातावरण के सम्बन्ध में स्वदेशी ही स्वधर्म है।

स्वदेशी का अर्थ मुख्य रूप से देश के प्रति राष्ट्रीय प्रेम एवं श्रद्धा की भावना रखना है। गाँधी जी ने स्वदेशी का प्रयोग न केवल आर्थिक क्षेत्र में ही किया था, अपितु धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में भी किया था। उनके अनुसार आर्थिक क्षेत्र में इसका अर्थ है- अपने देश में बनी हुई वस्तुओं का प्रयोग करना। धार्मिक क्षेत्र में इसका अर्थ है- अपने वंश परम्परागत धर्म में आस्था रखना। राजनीतिक क्षेत्र में इसका अर्थ है- अपने देश की राजनीतिक संस्थाओं को स्वीकार करना तथा देश के लिये अपनी प्राचीन परम्पराओं पर आधारित विधान का निर्माण करना और अपने देश में गणराज्यों की स्थापना करना। राजनीतिक उद्देश्य के अतिरिक्त गाँधीजी ने स्वदेशी का आध्यात्मिक उद्देश्य भी बताया है। आध्यात्मिक क्षेत्र में स्वदेशी का अर्थ मनुष्य को उसकी अन्य प्राणियों के साथ आत्मिक एकता की अनुभूति करना है। स्वदेशी का आत्मा के

लिये अन्तिम अर्थ है- सारे स्थूल सम्बन्धों से आत्यान्तिक मुक्ति। देह भी उसके लिये परदेशी है। इसका अन्य उद्देश्य है, बडे उधोगों एवं लाभ कमाने के उद्देश्य को समाप्त करना और समाज को आत्म-निर्भर बनाना तथा देश की पूंजी का देश में ही रहना, विदेशों में न जाना। इसके अतिरिक्त इसका उद्देश्य लोगों में आत्म विश्वास, साहस एवं निर्भीकता उत्पन्न करना भी है।

10.3 स्वदेशी की अवधारणा

भारत के स्वाधीनता संग्राम में स्वदेशी का विशेष योगदान रहा है। गाँधी जी के स्वदेशी पर संकुचित होने का आरोप लगाया जाता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि "सेवा की शुद्धता स्वदेशी का सार तत्व है। इस प्रकार स्वदेशी का आदर्श जन समुदायों के संकीर्ण व स्वार्थपूर्ण हितों को आगे बढाने की बात को और देश के या मनुष्य जाति के हित की उपेक्षा को प्रोत्साहन नहीं देता।" स्वदेशी की व्यापक व्याख्या करते हुए गाँधीजी ने एक बार कहा था कि ".. विदेशी वस्तुओं की जगह सारी वस्तुऐं देश की बनी ही प्रयोग की जायें। देशी वस्तुओं का उपयोग उद्योगों की रक्षा के लिये आवश्यक है, उन उद्योगों की रक्षा के जिनके बिना भारत दरिद्र हो जायेगा। परन्तु विदेशी वस्तुओं को सिर्फ विदेशी होने के कारण अस्वीकार करना उतनी ही बडी मूर्खता है जितना कि देश में ऐसी चीजें पैदा करने के लिये धन लगाना, जिनकी जरूरत न हो। "

स्वदेशी स्वराज्य का आधार है और देशभक्ति स्वदेशी का आवश्यक अंग है। देशभक्ति में निश्चय ही देश पहले आता है, किन्तु देशभक्ति का अर्थ अन्य देशों से बैर नहीं है।

इससे तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का यह एक मुख्य मंत्र था, जिसने भारत की अर्थव्यवस्था सुधारने तथा राष्ट्रीयता व देशभक्ति की प्रबल भावना उत्पन्न करने में सहायता की थी। खादी, ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योग आदि के उत्थान की भावना को स्वदेशी ने ही जन्म दिया है। खादी का उदाहरण देते हुए महात्मा गाँधी ने कहा है कि "इससे पहले न तो लंकाशायर और मैंनचेस्टर के कपडा मिलों को नुकसान है और न भारत के कपडा मिलों को। भारत के कपडा मिल तो अर्द्धस्वदेशी हैं लेकिन वे भी ग्राम के शोषण पर आधारित हैं। यदि चोर चोरी की हुई वस्तु उसके मालिक को दे दे तो इसमें चोर का नुकसान नहीं, उसका उद्धार है। स्वदेशी इस प्रकार शोषक और शोषितों के कल्याण का नैतिक माध्यम है।"

स्वदेशी की भावना अहिंसा पर आधारित है और अहिंसा में किसी के बहिष्कार और किसी के प्रति द्वेष का स्थान ही नहीं है। स्वदेशी का मतलब अपने निकटतम क्षेत्र में मिलने वाली सेवाओं और वस्तुओं को ही प्राथमिकता देना और जो वस्तुएं एवं सेवायें अपने निकटतम क्षेत्र में न मिल सकें, उन्हें बाहर से लेना। स्वदेशी का आधार पहले परिवार है, फिर गाँव और फिर राष्ट्र और फिर सारा संसार। जहां तक हो सके निकटतम पर्यावरण से ही आवश्यक वस्तुओं को लेना स्वदेशी है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जो वस्तुयें निकटतम पर्यावरण में ना बन सकें, उनके बनाने पर व्यर्थ में समय व धन व उर्जा बरबाद करना। ऐसा करने से स्वदेशी स्वधर्म ना रहकर हठधर्म हो जायेगा। हाँ यह आवश्यक है कि जहां तक हो सके स्वदेशी का पालन अवश्य किया जाये चाहे उससे कष्ट ही क्यों न हो। अत: स्वदेशी का मुख्य आधार है- आत्मनियंत्रण, अस्तेय व अपरिग्रह। आत्मनियंत्रण अर्थात् व्यर्थ की इच्छाओं का दमन।

आवश्यकतायें जितनी कम होंगी उतना ही स्वधर्म के रूप में स्वदेशी का अधिक पालन हो सकेगा। अस्तेय साधारणत: चोरी नहीं करने से संबन्धित है। परन्तु गाँधी जी के अनुसार किसी व्यक्ति की अनुमति के बिना उसकी कोई वस्तु छूना या लेना भी अथवा निर्जन स्थान में पडा देख कर घर में रख लेना भी अस्तेय है। किसी से छिपाकर कुछ खाना या जरूरत से अधिक कोई भी चीज अपने पास रखना अस्तेय प्रवृति का द्योतक है। अन्य की वस्तु को देखकर ललचाना भी अस्तेय का उदाहरण है। अपरिग्रह आवश्यक्ता से अधिक के प्रति मोह त्याग है। इन्द्रिय निग्रह पर जोर देना आवश्यक है। मानव का शरीर केवल श्रम के लिये नहीं बल्कि सेवा के लिये बना है। अपरिग्रह का अर्थ है जड पदार्थों के प्रति मोह अथवा आश्रयभाव का त्याग। इस प्रकार स्वदेशी सम्पूर्ण मानव जीवन के उत्थान की प्रक्रिया है।

10.4 स्वदेशी के उद्देश्य

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान गाँधीजी ने स्वदेशी को ब्रिटिश शासन के विरूद्ध एक सशक्त साधन के रूप प्रयुक्त किया। यद्यपि उनके सार्वजनिक जीवन में स्वदेशी प्रधानत: राजनीतिक उद्देश्य के लिये प्रयुक्त किया गया, तदापि गाँधीजी ने इसके सामाजिक और आर्थिक उद्देश्य को भी स्वीकारा है।

(अ) सामाजिक उद्देश्य

स्वदेशी का सामाजिक उद्देश्य लोगों का आत्मनिर्भर बनाना है। गाँधीजी ने सामाजिक समरसता की स्थापना के लिये सर्वोदय एवं अन्त्योदय की परिकल्पनायें प्रस्तुत की। गाँधी जी ने सर्वोदय का अर्थ व्यक्ति समाज और पूरे राष्ट्र के विकास से लिया है, एवं अन्त्योदय अर्थात जो गिरा हुआ है, सर्वप्रथम उसका उदय। गाँधीजी इस मूल समतावादी विचार का प्रतिपादन करते हुए सबके लिये सामाजिक न्याय एवं अवसर की समानता के पक्षधर थे। उनका विश्वास था कि जब तक विश्व में एक भी व्यक्ति भूखा है जब तक उन्हें भरपेट भोजन करने का अधिकार नहीं है, जब तक एक भी व्यक्ति दुखी है, तब तक उन्हें हंसने का अधिकार नहीं है।

गाँधी जी ने शिक्षा में भी स्वदेशी को अपनाने की सलाह दी। शिक्षा में स्वदेशी का अर्थ है- शिक्षा का भारतीयकरण, ताकि भारतीय शिक्षा व्यावहारिक जीवन के समीप आ सके तथा भारतीय भाषाओं व आयुर्वेद का विकास हो सके और उन सभी परम्परागत प्रथाओं का पुनरून्नयन हो सके जो स्वदेशी की आत्मा को प्रोत्साहित करने के लिये आवश्यक है। शिक्षा के स्वदेशीकरण नें 'बेसिक शिक्षा' अर्थात् बुनियादी शिक्षा को जन्म दिया। जिसे गाँधीजी की ' वर्धा शिक्षा योजना' के नाम से भी जाना जाता है। उन्होंने बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में घरेलु उद्योग धन्धों को सहायता देने वाले शिल्पकायों को स्थान किया है जिससे कि शिक्षा द्वारा स्वदेशी की भावना का विकास हो सके।

गाँधी जी ने स्वदेशी को काफी व्यापक बनाने की प्रेरणा दी। यहां तक कि उन्होंने दाँत साफ करने के ब्रुश के स्थान पर दातुन और फाउण्टेन पैन के स्थान पर सेते की कलम को महत्ता दी। इस प्रकार गाँधी जी के स्वदेशी समाज में एक ऐसे सामाजिक ढांचे की कल्पना निहित है जिसमें व्यक्ति अथवा समूहों के हित के मुकाबले में समूचे समाज के हित को प्रधानता दी जाये।

(ब) आर्थिक उद्देश्य

गाँधीजी के चिंतन में मानवीयता एवं लोककल्याणकारी प्रवृत्तियों की प्रधानता थी। वे भारतीयों की राजनीतिक पराधीनता तथा आर्थिक पराधीनता दोनो के लिये चिंतित रहा करते थे। आर्थिक पराधीनता से मुक्ति के लिये ही उन्होने स्वदेशी आंदोलन का प्रसार किया। स्वदेशी आंदोलन पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा था- "स्वदेशी हमारे अंतराल की वह भावना है जो कि हमको सुदूर की अपेक्षा हमारे निकटतम पर्यावरण के प्रयोग एवं सेवा के लिये प्रेरित करती है।" वे प्रत्येक गांव को उत्पादकता से जोडना चाहते थे उनकी धारणा थी कि प्रत्येक गांव को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये स्वयं उत्पादन करना चाहिये। इसी सन्दर्भ में वे आर्थिक विकेन्द्रीकरण का भी पक्ष लिया करते थे। मशीनों द्वारा किये जाने वाले उत्पादनों की अपेक्षा वे लघु कुटीर उद्योगों पर बल देते थे। आर्थिक क्षेत्र में उनके अनुसार यही स्वदेशी है।

आर्थिक दृष्टिकोण से स्वदेशी का मतलब अपने निकटतम पड़ोसी द्वारा निर्मित वस्तुओं का ही प्रयोग करना और उन उद्योगों को प्रोत्साहन देना जिनसे हमारे निकटवर्ती पर्यावरण में हमारे लिये वस्तुओं का निर्माण होता है। गाँधीजी उस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के विकास के पोषक है जिसमें न तो व्यक्ति-व्यक्ति का शोषण करता है और न देश-देश का। उन्हीं के शब्दों में - "मैं अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र में कोई भेद नही करता। वह अर्थव्यवस्था जिससे किसी व्यक्ति या देश की नैतिकता को क्षति पहुँचे, अनैतिक और पापमय है। जो अर्थव्यवस्था एक दूसरे को देश का शोषण करने के लिये प्रेरित करे, वह भी अनैतिक है। शोषित श्रम से बनी वस्तुओं को खरीदना ओर उनका उपयोग करना पाप है।" स्वदेशी के माध्यम से गाँधीजी ने उस आर्थिक व्यवस्था की परिकल्पना की है जिसमें पूंजीवादी शोषण, साम्यवादी सामूहिक अनुशासन और शोषण से उत्पन्न गरीबी नही है। वे उस आदर्श समाज के पक्ष में है जिसमें व्यक्ति की आधिभौतिक नही आध्यात्मिक उन्नति हो, जहां व्यक्ति नैतिकता की उस पराकाष्ठा पर पहुँच जाये कि समाज में एक प्रकार की नैतिक स्वचालिता आ जाये।

स्थानीय उद्योग-धंधो में गाँधीजी खादी को अत्यधिक महत्तव देते थे। खादी के अर्न्तगत स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार वस्त्र निर्माण, मधु बनाना, चटाई बनाना, मिट्टी के बर्तन, खेती के औजार आदि या जो स्थानीय स्तर पर एक-दूसरे के उपयोग में आता हो। इस प्रकार उनका आर्थिक दृष्टिकोण अपरिग्रह, अस्तेय, शरीर श्रम और स्वदेशी के आदर्शो से निर्धारित हुआ था। आर्थिक समता का आदर्श उन्हें प्रिय था, क्योंकि विलासिता और भुखमरी का वह अस्तित्व शोषण और जीवन की निष्फलता का द्योतक है और धनी एवं गरीब दोनो के लिये आध्यात्मिक एकता की अनुभूति को कठिन कर देता है।

(स) राजनैतिक उद्देश्य

गाँधी जी आर्थिक स्वतंत्रता के साथ ही राजनैतिक स्वतंत्रता भी चाहते थे। उन्हीं के शब्दों में- "राजनैतिक स्वतंत्रता का अभिप्राय स्वराज्य की प्राप्ति है, न कि मात्र मताधिकार के समान खुद सुविधाओं की प्राप्ति।" बिना स्वराज्य की प्राप्ति के कोई जनसमूह अपने कष्टों का निवारण नहीं कर सकता और जब तक मानवों के कष्टों का निवारण नहीं हो जाता, तब तक वे आत्मविश्वास प्राप्त नहीं कर सकते। राजनैतिक क्षेत्र में स्वदेशी का उद्देश्य है देशज संस्थाओं का

सुधार करके उनका पुनरुन्नयन। दूसरे शब्दों में अपने देश की राजनीतिक संस्थाओं को स्वीकार करना तथा देश के लिये अपनी प्राचीन परम्पराओं पर आधारित विधान का निर्माण करना और अपने देश में गणराज्यों की स्थापना करना।

उनके असहयोग आंदोलन में राजनैतिक बहिष्कार का उद्देश्य है, विदेश सरकार द्वारा स्थापित संस्थाओं तथा पदों का परित्याग करना तथा ऐसी संस्थाओं का उपयोग ना करना जिनका लाभ शोशकों तथा अन्यायियो को होता है। ऐसा करने से गाँधीजी लोगों का ब्रिटिश शासन के विरूद्ध खडा करना चाहते थे क्योंकि स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से देशभक्ति की भावना को बल मिलता है।

स्वदेशी केवल भौतिक वस्तुओं तक ही सीमित नही है। स्वदेशी का सम्बन्ध केवल भौतिक वस्तुओं तक ही नही है। स्वदेशी का सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवन से है। स्वदेशी के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक उद्देश्य के अलावा सामाजिक-सांस्कृतिक तथा धार्मिक उद्देश्य भी हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष में स्वदेशी का उद्देश्य है शुद्ध भारतीय सामाजिक संस्थाओं का सुधारवादी पुनरून्नयन। धर्म में स्वदेशी का मतलब है अपने प्राचीन धर्म के प्रति व अंधविश्वास, हठ और साम्प्रदायिकता रहित आस्था जो अपने स्वर्णिम अतीत की विवेचना और उसे देश-काल के अनुसार वर्तमान में पुन: जीवित करना स्वदेशी धर्म की मुख्य प्रेरणा है। यदि धर्म में कमी है तो आवश्यकतानुसार उसमें सुधार स्वदेशी की मांग है।

गाँधी जी ने स्वदेशी में धर्म कहकर एक राजनैतिक शस्त्र के रूप में अपनाया था न कि किसी कट्टरवादी प्रतिक्रिया के रूप में उन्होंने व्यक्तिगत आचरण से आध्यात्मिकता की सर्वोपरिता का उदघोष किया, राजनीतिक षडयन्त्रों और कुटिलता के क्षेत्र में उन्होंने निर्भयता से सरल जीवन और ईमानदारी का संदेश प्रचारित किया।

10.6 खादी व स्वदेशी

खादी और चरखा आंदोलन महात्मा गाँधी द्वारा निरूपित स्वदेशी की धारणा भी एक सक्रिय अभिव्यक्ति है। गाँधीजी के लिये खादी और चरखा स्वदेशी सिद्धान्त के व्यवहारिक प्रतीक है। खादी और चरखा का परित्याग करके भारत ने जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित खादी और चरखे को अपना कर ही हो सकता है। चरखे का विनाश ही भारत विनाश का कारण बना है। खादी और चरखे का प्रयोग गाँधीजी इसलिये चाहते हैं ताकि भारत के भूखे लोगों को रोटी मिल सके। भूखे पेट में न तो राजनीति समा सकती है और ना ही भूखे के लिये स्वतन्त्रता का कोई अर्थ है। भारत के मिलों का बना कपडा स्वदेशी है क्योंकि स्वदेशी की कसोटी किसी घरेलू वस्तु का प्रयोग नहीं वरन् उसके उत्पादन की सार्वभौमिकता है।

उपर्युक्त का आशय यह कदापि नहीं है कि गाँधीजी यंत्रीकरण व मशीनीकरण के विरोधी थे, बल्कि उनका मानना था कि यंत्रीकरण उस देश विदेश के लिये उपयोगी हो सकता है जिस देश में श्रम की कमी एवं पूंजी की प्रचुरता हो, परन्तु भारत जैसे देश में जहां श्रम का अधिक्य एवं पूंजी की न्यूनता है, भारी मशीनों एवं यंत्रों का प्रयोग मानवीय अस्तित्व के लिये पूर्णतया अभिशाप है। गाँधी जी का कहना था कि " यंत्रीकरण उस स्थिति में अच्छा सिद्ध होता है जब

काम की मात्रा के अपेक्षाकृत काम करने वालों की संख्या बहुत कम होती है, परन्तु जब काम करने वालों की संख्या अधिक होती है, जैसा कि भारत में, तब यंत्रीकरण एक बुराई होती है।"

गाँधी जी के अनुसार चरखा मशीन का विरोधी नहीं वरन् मशीन का सहायक है। चरखा खुद ही एक मशीन है, किन्तु ऐसी मशीन नहीं जो शोशण को जन्म देती है। चरखे से श्रमिक अपने श्रम के महत्तव का आभास होता है। चरखा गरीब के लिये कामधेनु के समान है तथा सूत कातना यज्ञ के समान है क्योंकि उससे अपनी और दूसरों की सेवा होती है। खादी और चरखा तब तक स्वदेशी के अंग हैं जब तक भारत के लाखों गरीबों को लाभदायक जीविका का कोई अन्य साधन नहीं मिलता।

खादी और चरखा कोई राजनैतिक चाल नहीं हैं यद्यपि उनका राजनैतिक और राष्ट्रीय महत्तव अवश्य है। खादी और चरखा भारत के आर्थिक विकास के प्रतीक हैं। वह आर्थिक विकास जो मूलत: स्वदेशी है जिसमें विदेशी वस्तुओं की अपेक्षा, घरेलु उद्योग-धंधों से बनी वस्तुओं के प्रयोग की प्रेरणा है, विशेषत: उन उद्योगों की रक्षा के लिये जिनके बिना भारत दरिद्र हो जायेगा। घरेलू उद्योग धंधों से गाँधी का तात्पर्य जातिगत तथा परम्परागत ग्रामीण उद्योगों से है।

स्वदेशी व स्वराज

'स्वराज' एक राजनैतिक धारणा है और स्वदेशी उसका मूल। स्वदेशी के बिना स्वराज का कोई मूल्य नहीं है। गाँधीजी की स्वराज की परिभाषा थी- "ऐसा समाज जहां सबसे निर्धन की सुनवाई हो, समाज में कोई उँचा अथवा नीचा ना हो और पूर्ण सौहार्द हो, अष्पृश्यता और नशीले पदार्थों का कोई स्थान ना हो और स्त्रियों को पुरूष के समान अधिकार प्राप्त हो।" जिस स्वराज की कल्पना गाँधीजी ने की थी, ग्राम पंचायत उसका एक अभिन्न अंग थी। ग्राम पंचायत का पुनरूत्थान गाँधीजी के कार्यक्रम का एक मुख्य आधार है क्योंकि ग्राम पंचायतें प्राचीन ग्राम-व्यवस्था का एक अंग थी।

वर्ण सिद्धांत की व्याख्या में भी गाँधीजी ने इस बात पर जोर दिया है कि व्यवस्था के द्वारा तभी समता आ सकती है जब प्रत्येक निर्वाह-भित्ति (Living Wage) से अधिक धनोपार्जन न करें। पूंजीवादी व्यवस्था में ऐसा सम्भव नही है क्योंकि पूंजीवादी व्यवस्था के आधार मुनाफाखोरी, निरंतर बढती हुई आधिभौतिक आवश्यकतायें, मशीनोत्पादन और मुनाफा तथा धनसंचय के लिये निरीह प्रतियोगिता है। पूंजीवाद में प्रत्येक पेशे के लिये मिलने वाला वेतन भी असमान है और इस कारण, वहां सभी पेशों की समानता न होने के कारण, असमानता को प्रोत्साहन मिलता है। भारत की प्राचीन ग्राम व्यवस्था में, जैसा कि गाँधीजी ने कहा है, वर्ण-सिद्धांत के तत्व मौजूद है। वर्ण-सिद्धांत तभी सफलतापूर्वक चल सकता है, जब उसके आवश्यक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व धार्मिक पहलू भी उपस्थित हों। स्वदेशी की धारणा से गाँधीजी ने उस प्राचीन सामाजिक व्यवस्था के पुनरूत्थान का प्रयास किया जिसमें वर्ण-सिद्धांत लागू किया जा सके।

स्वराज की व्याख्या करते हुए गाँधीजी ने कहा है कि -"यदि प्रादेशिक भाशाओं के लिये हमारे दिलों में कोई स्थान नहीं है, यदि हमें अपने कपडों से घृणा है यदि हमारी वेशभूषा

हमें क्षुब्ध करती है, अगर पवित्र शिखा धारण करने में हमें शर्म आती है, यदि हमारा भोजन हमें स्वादिष्ट नहीं लगता है, यदि हमारे देशवासी असभ्य और हमारे साहचर्य के अयोग्य है, यदि हमारी सभ्यता हमें दोषपूर्ण और विदेशी आकर्शक लगती है, संक्षेप में, यदि सभी कुछ देशज हमें बुरा और विदेशी सुखदायक लगता है, तो मैं नहीं जनता कि स्वराज का हमारे लिये क्या अर्थ होगा।" यदि विदेशी सभ्यता को अपनाना हमारे लिये आवश्यक है तो फिर गुलामी भी हमारे लिये आवश्यक है, क्योंकि विदेशी सभ्यता जनता तक पहुँची ही नहीं और न वह जनता तक पहुँच ही सकती है। जनता के पास तो स्वदेशी ही है। अत: स्वदेशी के प्रति प्रेम और लगाव के बिना स्वराज की महत्ता को समझा ही नहीं जा सकता है। स्वराज राष्ट्रीयता का आधार है। जिस किसी देश ने भी स्वराज-आंदोलन लडा है, उसने स्वदेशी का महत्तव पहले समझा है।

गाँधी जी ने 'स्वराज' की धारणा को भारतीयता के सर्वागीण विकास का आधार बनाया। भारत के परमपरागत सामाजिक (वर्ण व्यवस्था), सांस्कृतिक (कला-कौशल इत्यादि), धार्मिक (वेदान्तवादी, हिन्दुत्व), राजनैतिक (पंचायतीराज) तथा आर्थिक (प्राचीन ग्रामीण अर्थव्यवस्था) आधारों के सुधारवादी पुनरूत्थान को गाँधी जी ने स्वदेशी का आदर्श बनाया और उसी से भारत के सांस्कृतिक पुनरूत्थान को नवजागृति तथा रचनात्मक स्थान देकर उसे व्यावहारिक स्तर पर लाने का प्रयास गाँधी जी का अपना योगदान है।

10.7 स्वदेशी की महती आवश्यकता

स्वदेशी एक प्रकार से, सत्य की तलाश है- उस सत्य की जो अपने में है और जो अपने लिये लाभदायक है। अपने में सत्य को पाने का मतलब है अपने को पहचानना और अपने में जो लाभकारी सत्य है उसे उभारना। स्वराज्य के दृष्टिकोण से सत्य यही है कि स्वदेशी का निर्माण मूलत: राष्ट्रीय स्तर पर ही हो सकता है। स्वदेशी और विदेशी अलग-अलग है और परस्पर विरोधी है। स्वदेशी का मुख्य आधार यह मान्यता है कि जो कुछ भी स्वदेशी है, वह लाभदायक है और स्वस्थ है और उसी को अपनाकर भारत का कल्याण हो सकता है। स्वदेशी आत्म विकास की प्रक्रिया है। स्वदेशी तभी लाभप्रद हो सकता है जब उसे आवश्यक्तानुसार विकसित किया जाये। अत: इस प्रकार स्वदेशी की भावना आत्मविकास का व्रत है तथा आज की आवश्यकता भी है।

10.8 सारांश

इस इकाई में हमने स्वदेशी की अवधारणा, सिद्धान्त व स्वदेशी के उद्देश्यों को जानने का प्रयास किया है। गाँधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन में स्वदेशी पर अधिक बल दिया। गाँधी जी के स्वदेशी का अर्थ था- विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था, ग्राम और स्थानीय सामुदायिक विकास, सबको रोजगार और स्वावलम्बन। इसका अर्थ है स्थानीय आत्मनिर्भरता और सहभागिता। उनके अनुसार शोषणमुक्त वैश्वीकरण का आरम्भ बिन्दु स्वदेशी ही हो सकता है। सामान्यत: हम स्वदेशी को संकुचित अर्थ में समझते हैं, परन्तु गाँधीजी के लिये स्वदेशी का अर्थ काफी व्यापक था। उनके अनुसार जो वस्तु करोडों भारतीयों के किलों का संवर्धन करती हो, भले ही उसमें लगी पूंजी का कौशल विदेशी हो, वह स्वदेशी है। अलबत्ता वह पूंजी और कौशल भारतीय नियंत्रण के

अधीन होना चाहिये। गाँधीजी ने कहा है कि स्वदेशी की भावना का न केवल उत्पादन क्षेत्र में बल्कि उपभोग में भी गंभीरता से पालन किया जाना चाहिये। दूसरे शब्दों में गाँधीजी का यह विश्वास था कि भारत के आर्थिक विकास के लिये अनिवार्य है कि उपलब्ध साधनों पर आधारित उत्पादन इकाईयां ही विकसित की जानी चाहियें और दैनिक आवश्यक्ताओं की पूर्ति भी देश में उत्पादित वस्तुओं के उपभोग से ही की जाये। गाँधीजी ने कहा था कि स्वदेशी एक सर्वकालिक सिद्धान्त है, स्वदेशी की उपेक्षा के परिणाम स्वरूप मनुष्य जाति ने अपरिमित, असीमित दुख भोगे हैं। स्वदेशी का अर्थ है अपनी आवश्यकताओं की वस्तुओं का उत्पादन अपने देश में ही हो और उन्हीं का वितरण और उपभोग किया जाये क्योंकि गाँधीजी का मानना था कि देश में निर्मित वस्तुओं के उपभोग से देश के निवासियों में राष्ट्रभक्ति की भावना ज्यादा प्रबल होती है।

10.9 अभ्यास प्रश्न

1. महात्मा गाँधी की स्वदेशी विचार पर एक लेख लिखिये।
2. स्वदेशी और स्वराज में अन्तरसम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
3. खादी का स्वदेशी आंदोलन में योगदान स्पष्ट कीजिये।
4. गाँधी जी के स्वदेशी आंदोलन के उद्देश्य बताइये।

10.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एम.के. गाँधी, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
2. एम.के. गाँधी, इण्डिया ऑफ मय ड्रीम्स, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 19971.
3. एण्ड्रयू, सी. एफ. महात्मा गाँधीज़् आइडियाज़्, जार्ज एलन अनविन लिमिटेड, लन्दन, 1949
4. धवन, जी. एन., द पॉलिटिकल फिलॉसॉफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1962
5. वर्मा, वी. पी., फिलोसफिकल एण्ड सोशलॉजिकल फाउण्डेशन आफ गाँधीज्म, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1981
6. वर्मा, वी. पी., द पॉलिटिकल फिलॉसॉफी ऑफ गाँधी एण्ड सर्वोदय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1986

इकाई - 11

गाँधी एवं ट्रस्टीशिप

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 ट्रस्टीशिप का अर्थ एवं परिभाषा
11.3 ट्रस्टीशिप आर्थिक समानता का दर्शन
11.4 ट्रस्टीशिप का आधार
11.4.1 सबका मालिक ईश्वर
11.4.2 कानूनी आधार
11.4.3 हिन्दू कौटुम्बिक जीवन
11.4.4 सम्पत्ति का अर्जन समाज के सहयोग से संभव
11.4.5 दान प्रथा
11.4.6 सम्पत्ति का उत्तराधिकारी सम्पूर्ण समाज
11.4.7 तेनव्यक्तेन भुजिंथा
11.5 ट्रस्टीशिप का आर्थिक स्वरूप
11.6 ट्रस्टीशिप के उद्देश्य
11.7 ट्रस्टीशिप की विशेषताएँ
11.7.1 समाज परिवर्तन का माध्यम
11.7.2 समाज के हित में सम्पत्ति रखने का अधिकार
11.7.3 सम्पत्ति ट्रस्ट के रूप में
11.7.4 साध्य और साधनों की पवित्रता पर बल
11.7.5 कानूनों का प्रयोग
11.7.6 राज्य का हस्तक्षेप
11.7.7 आर्थिक स्वतन्त्रता और विकेन्द्रीकरण
11.7.8 समानता, अहिंसा व स्वराज्य
11.7.9 दान या दया से भिन्न
11.7.10 मानसिक दृष्टिकोण के परिवर्तन पर बल
11.8 सारांश
11.9 अभ्यास प्रश्न
11.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत गाँधी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त को समझ सकेंगे। इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप-

- ट्रस्टीशिप का अर्थ एवं परिभाषा को समझ सकेंगे,
- ट्रस्टीशिप आर्थिक समानता के दर्शन की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- ट्रस्टीशिप के आधार क्या-क्या हैं? की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- ट्रस्टीशिप का आर्थिक स्वरूप समझ सकेंगे,
- ट्रस्टीशिप सिद्धान्त की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

11.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी एक ऐसा व्यक्तित्व था, जिसने मानव समुदाय को समग्र रूप से अर्थात् आध्यात्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक रूप से पूर्ण विकसित होने का आचार व विचार दिया। आर्थिक क्षेत्र में गाँधी के विचारों का आंकलन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि गाँधी के आर्थिक विचार मात्र आर्थिक प्रश्नों की शास्त्रीय व्याख्या पर आधारित नहीं है। चूंकि गाँधी जीवन को समग्र दृष्टिकोण से देखते थे अत: उन्होंने नैतिक आस्थाओं को भी आर्थिक क्षेत्र में लागू करने का प्रयास किया। इसी कारण गाँधी आर्थिक विचारों की पद्धति को ' मानवीय अर्थशास्त्र ' की संज्ञा दी जाती है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि आर्थिक सम्बन्धों में सत्य और अहिंसा की प्रयुक्ति मानवीय अर्थशास्त्र का आधार है। उनका विशद् आर्थिक चिंतन केवल "आर्थिक मानव" से नहीं वरन् " पूर्ण मानव" से संबंध रखता है। वह मानव और पर्यावरण, मानव और मशीन, श्रम और पूँजी तथा गाँव और नगर के बीच के संबंधों में आने वाली विकृतियों के निराकरण का रचनात्मक अवसर उपलब्ध कराता है।

गाँधी के आर्थिक विचार न तो पूँजीवाद से और ना ही समाजवाद से प्रभावित थे वस्तुत: उनके आर्थिक विचारों को मानवतावाद, व्यक्तिवाद और समाजवाद का संगम कहा जा सकता है। अपने आर्थिक विचारों में गाँधी, जॉन रस्किन से सर्वथा प्रभावित थे। गाँधी ने उनकी कृति "Unto the Last" का 'सर्वोदय' के नाम से अनुवाद किया जो उनके आर्थिक सिद्धान्तों की आधारशिला बना। गाँधी के इस सर्वोदयी अर्थशास्त्र का स्वरूप दो महान् कसौटियों पर कसा जा सकता है-अहिंसा और सत्य। सत्य की खोज अहिंसा के द्वारा गाँधी ने की थी। गाँधी एक ऐसी अर्थव्यवस्था के पक्षधर थे, जिसमें संसाधनों पर किसी का एकाधिकार नहीं हो, उत्पादन एवं पूँजी का केन्द्रीयकरण नहीं हो तथा आर्थिक संरचना एवं आर्थिक प्रणाली में अपरिग्रह, सम्पत्ति के समान वितरण, ट्रस्टीशिप, स्वदेशी व सर्वोदय पर विशेष बल किया। श्रम विभाजन के साथ समवेतन पर भी उनका विशेष आग्रह था।

प्रकृतितादी अर्थशास्त्रियों की नीति आर्थिक क्रियाओं के मूल स्रोत को गाँधी समझा। अन्न व वस्त्र की मूलभूत आवश्यकताओं का स्रोत ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सक्षम बनाने के लिए उन्होंने बहुत बल दिया। उन्होंने कुटीर उद्योगों पर आधारित एक ऐसी विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का प्रतिपादन किया, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक गाँव एक आर्थिक इकाई के रूप में

कार्य करे। वे खादी को आर्थिक समस्याओं का हल मानते थे क्योंकि वह स्वावलम्बन का प्रतीक थी। गाँधी की स्वदेशी की अवधारणा उत्पादक वर्ग अर्थात् श्रमिकों व कृशंकों की प्रतिष्ठा को बनाए रखती है व उनका ट्रस्टीशिप का विचार आर्थिक समानता का मार्ग प्रशस्त करता है। अत: गाँधी एक ऐसी अर्थनीति चाहते थे जिसमें कार्य के समान अवसर प्राप्त हो, स्थानीय आवश्यकतानुसार स्थानीय स्तर पर उत्पादन का भी न्यायोचित वितरण हो, व्यक्ति एवं परिवार अपनी जीविका पर समुचित नियंत्रण रख सके तथा जो मानव के व्यक्तित्व विकास के अनुकूल स्थिति की सृष्टि करे।

वस्तुत: गाँधी ने सत्य, अहिंसा के आधार पर जिस अहिंसक राज्य की संकल्पना प्रस्तुत की, उसमें स्वतन्त्रता, समानता, बंधुत्व, आपसी सहयोग, प्रेम, समन्वय को नींव के पत्थरों के रूप में स्थापित किया। गाँधी की मान्यता थी कि यही वे नींव के पत्थर हैं, जिन पर अहिंसक राज्य रूपी महल को खड़ा किया जा सकता है और जब तक आर्थिक समानता समाज में व्याप्त नहीं होती, तब तक अहिंसक समाज एक कल्पना मात्र ही है। आर्थिक समानता की स्थापना हेतु गाँधी ने ट्रस्टीशिप नामक अहिंसक समाधान प्रस्तुत किया।

वर्तमान आर्थिक जगत् में मुख्य रूप से दो विचारधाराएँ प्रचलित थीं-पूँजीवादी व समाजवादी। पूँजीवादी विचार व्यक्तिगत स्वामित्व का समर्पण करता है। इसमें व्यक्ति को अपनी क्षमता के आधार पर सम्पत्ति के अर्जन का अधिकार है। ऐसी अर्थ-रचना का मुख्य आधार मांग-पूर्ति का नियम है। लेकिन इस प्रकार की व्यवस्था का परिणाम प्रतिस्पर्धा, उपनिवेशवाद, आर्थिक विषमता एवं शोषण ही होता है। परन्तु इसकी एक विशेषता यही है कि यह व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार उत्पादन करने की छूट देता है। इस विचार से राष्ट्रीय व व्यक्तिगत आय में वृद्धि होती है। दूसरा विचार समाजवादी है जो व्यक्तिगत सम्पत्ति का घोर विरोधी है। यह उत्पादन-वितरण पर पूरी तरह राज्य का अधिकार स्वीकारता है। ऐसी व्यवस्था व्यक्ति की स्वाभाविक उत्पादन की प्रेरणा को समाप्त कर देती है। इस विचारधारा का मुख्य उद्देश्य तो आर्थिक समानता की स्थापना करना होता है लेकिन वह हिंसात्मक उपायों का भी समर्थन करता है। गाँधी इन दोनों विचारधाराओं की बुराइयों को परिश्कृत कर, इसकी विशेषताओं को अपनाकर, एक पूर्ण अहिंसक तरीके द्वारा आर्थिक समानता को स्थापित करने का प्रयास करते हैं, जिसमें व्यक्तिगत स्वामित्व, समाजवाद का समाज-कल्याण तथा साथ ही अर्थविमुखता, त्यागमय जीवन का भी समावेश होता है।

11.2 ट्रस्टीशिप का अर्थ एवं परिभाषा

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त एक अहिंसक समाजवाद है। शब्द ‘ ट्रस्टीशिप ’ का निर्माण 'ट्रस्ट' से हुआ है, जिसका कानूनी अर्थ है-वह कर्त्तव्य भार जो सम्पत्ति के स्वामित्व से जुड़ा रहता है। इसमें सम्पत्ति स्वामी के पास इस विश्वास पर रहती है कि वह उस सम्पत्ति का उपयोग दूसरे के लाभ हेतु करेगा। इस बात का वह ऐलान करता है व उसे स्वीकार करता है। 'ट्रस्ट' की इसी परिभाषा के आधार पर गाँधी की मान्यता है कि सामाजिक परिस्थिति या स्वयं के पुरुषार्थ से जो कुछ भी मनुष्य को प्राप्त हो, वह उसे समाज की धरोहर समझे। प्रत्येक मनुष्य के पास

उपभोग के बाद जो सम्पत्ति शेष रह गई है, उसको वह मुनाफा, दलाली, ठेका एवं ब्याज के लिये प्रयोग में न लेकर, स्वयं को उस सम्पत्ति का संरक्षक समझे तथा इस धन को राष्ट्र निर्माण, सामाजिक कल्याण व लोकोपकार में व्यय करे। यही गाँधी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त है। गाँधी के इस सिद्धान्त में व्यक्तिगत स्वामित्व सामाजिक धरोहर के रूप में रहता है। सम्पदा का प्रयोग भोग के लिए नहीं, अपितु जन-कल्याण के लिए किया जाता है। गाँधी ने सम्पत्ति, भूमि, श्रम, बुद्धि आदि सभी को ट्रस्टीशिप का अंग समझा और कहा कि मनुष्य इन सबका केवल संरक्षक मात्र है अत: उसे समाज को लौटा देना चाहिए। दामोलकर के अनुसार " प्रतिफल की अपेक्षा शक्ति रहित विशेषाधिकार व प्रतिष्ठा का स्वेच्छिक समर्पण ट्रस्टीशिप है।" इसी प्रकार गाँधी ने भी कहा कि प्रत्येक प्रतिभाशाली व्यक्ति अपनी प्रतिभा का समुचित उपभोग करे, किन्तु उन्हें इस बात का ध्यान देना चाहिए कि वे अपनी आवश्यकता की पूर्ति के पश्चात् शेष सम्पदा का संरक्षक बन कर रहे अर्थात ट्रस्टीशिप के नियम का पालन करे। गाँधी नें ट्रस्टी को राज्य की सलाह से अपना उत्तराधिकारी जनता को ही मानने की सलाह दी और राज्य को यह सलाह दी कि यदि ट्रस्ट की सम्पत्ति का दुरूपयोग होता है तो वह आवश्यक हिंसा के प्रयोग द्वारा राज्य उसे अपने अधिकार में ले सकता है।

11.3 ट्रस्टीशिप आर्थिक समानता का दर्शन

गाँधी का अहिंसात्मक आर्थिक चिंतन मूलत: पूर्ण समानता के आदर्श पर आधारित है। उनके अनुसार जब तक समाज के वर्गों में ऊँच-नीच का भेद बना रहेगा तब तक सर्वोदय की स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती। आर्थिक समानता की व्याख्या को स्पष्ट करते हुए गाँधी ने कहा था- " आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूँजी और मजदूरी के बीच के झगड़े को हमेशा के लिए मिटा देना, जिसका अर्थ यह होता है कि एक ओर जिन मुट्ठी भर पैसे वाले लोगों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का बड़ा भाग इकट्ठा हो गया है, उनकी सम्पत्ति को कम करना और दूसरी ओर जो करोड़ों लोग अधपेट खाते और नंगे रहते हैं, उनकी सम्पत्ति में वृद्धि करना। जब तक मुट्ठी भर धनवानों और करोड़ों भूखे रहने वालों के बीच बेइन्तहा अन्तर बना रहेगा, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राज व्यवस्था कायम नहीं हो सकती। स्पष्ट है कि गाँधी की आर्थिक समानता की भावना इसमें निहित है कि समाज के पूंजीपति और श्रमिक दोनों ही वर्गों की समाप्ति। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप समाज में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया, जो राष्ट्र की तीन-चौथाई से अधिक सम्पत्ति व संसाधनों का उपयोग करता है। फलस्वरूप आम जनता को भरपेट भोजन की प्राप्ति भी दुर्लभ हो जाती है। एक वर्ग में सम्पत्ति के केन्द्रीकरण से अमीर और अधिक अमीर होते चले गए और गरीबों की स्थिति और दयनीय होती चली गई। इसीलिए गाँधी का यह प्रयास था कि जिनके पास सम्पत्ति का केन्द्रीकरण है, उसे कम करना और दूसरी ओर जनसंख्या के उस बड़े भाग की सम्पत्ति में वृद्धि करना जो भूखा रहता है। समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता का समाधान गाँधी ऐसे साम्यवादी तरीके से नहीं करना चाहते, जिसके अंतर्गत धनिकों से धन बलपूर्वक छीनकर सार्वजनिक हित के प्रयोग में लाए जाने की बात की जाए। गाँधी ने समाज की आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए

सत्य एवं अहिंसा पर आधारित 'ट्रस्टीशिप' का आदर्श प्रस्तुत किया। उनकी मान्यता थी कि आर्थिक विषमता की समस्या का समाधान संरक्षणकर्त्ता (ट्रस्टीशिप) के सिद्धान्त के अनुसरण से ही हो सकता है।

11.4 ट्रस्टीशिप का आधार

गाँधी ने ट्रस्टीशिप की कल्पना इंग्लैण्ड में अपने कानून के अध्ययन के सिलसिले में ग्रहण की थी। भगवद् गीता और उपनिषदों में भी इसका भाव उन्हें मिला था। वे अपने इस सिद्धान्त में यह दिखाने का प्रयास करते थे कि सामाजिक व्यवस्था को यदि प्रेम व विश्वास के आधार पर बढ़ाया जाए तो यह सम्भव है कि धनिकों को यह समझ आ जाए कि उनका आर्थिक वैभव वस्तुतः उनके पास समाज की धरोहर है, जिसका उपयोग जनहित व कल्याण कार्यों में करना चाहिए। गाँधी का मानना था कि चूंकि जब प्रत्येक व्यक्ति में अनिवार्य रूप से शुभत्व विद्यमान रहता है तो निश्चित रूप से अमीर एवं पूंजीपति व्यक्तियों में भी शुभत्व का भाव निहित है। यदि प्रेम, व्यवहार व विश्वासपूर्ण आचरण से उनके शुभत्व को जागृत किया जा सके, तो उन्हें यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि उनके पास जो सम्पत्ति है, वह श्रमिकों के श्रम के आधार पर जमा की गई है। पूंजीपतियों के मन में यह अनुभूति जागृत करनी होगी कि उनके पास संचित धन मात्र उनके वैयक्तिक अपव्यय का उपादान नहीं है वरन् उसकी उपयोगिता जनहित में है। इसके लिए गाँधी सत्य और अहिंसा द्वारा हृदय परिवर्तन का शस्त्र सुझाते है, जिससे पूंजीपति निःशस्त्र किए जा सकते हैं। यहाँ यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि यदि यथेष्ट प्रयत्न के बाद भी धनिक वर्ग निर्धनों के संरक्षक ना बने तो क्या किया जाए? इस समस्या के समाधान के रूप में गाँधी 'अहिंसक असहयोग' और 'सविनय अवज्ञा' का अमोघ समाधान प्रस्तुत करते हैं। चूँकि धनवान लोग समाज के गरीबों के सहयोग बिना धन संग्रह नहीं कर सकते अतः यदि यह ज्ञान गरीबों को हो जाएगा तो वे अहिंसक असहयोग द्वारा असमानताओं से मुक्त हो जायेंगे।

गाँधी ने अपने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के निम्नलिखित आधार प्रस्तुत किये-

11.4.1 सबका मालिक ईश्वर

ट्रस्टीशिप का पहला आधार उनकी ईश्वर संबंधी धारणा थी। गाँधी की मान्यता थी कि संसार की सभी वस्तुओं का वास्तविक मालिक ईश्वर है, जिसने इनका सृजन किया है। उसने विश्व का सृजन किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं किया, बल्कि सभी प्राणियों के लिए किया है। वह सर्वशक्तिमान होते हुए भी संग्रह नहीं करता है। रोज का काम रोज करता है। मनुष्य तो ईश्वर का एक छोटा-सा रूप है। अतः उसे भी उत्पादन समाज हित की भावना से करना चाहिए, स्वार्थ की भावना से नहीं। संग्रह न करके उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद जो धन शेष बचे उसे अपना न मानकर ट्रस्ट की सम्पत्ति मानना चाहिए और स्वयं को उसका ट्रस्टी तथा उसका उपयोग समाज हित में करना चाहिए। गाँधी के अनुसार यदि यह भावना समाज में सभी मनुष्यों में व्याप्त हो जाए तो आर्थिक विषमता मिट कर रहेगी।

11.4.2 कानूनी आधार

गाँधीजी बैरिस्टर थे, अत: उन्हें ट्रस्ट संबंधी कानून का पूरा ज्ञान था। वे ट्रस्ट के प्रचलित लौकिक व पारलौकिक विचार से अवगत थे। उन्होंने प्रचलित धारणा में प्रेम, त्याग, उत्साह आदि नवीन भावना का समावेश कर उसे नया आयाम दिया। उनके अनुसार ट्रस्ट भाव केवल प्रेममय सेवा भाव से ही संचालित होना चाहिए। इसी आधार पर उन्होंने ट्रस्टीशिप की रचना की।

11.4.3 हिन्दू कौटुम्बिक जीवन

हिन्दू कौटुम्बिक जीवन का अनुभव भी ट्रस्टीशिप का एक प्रमुख आधार बना। गाँधी ने देखा कि संयुक्त परिवार के लोग आपस में प्रेम, सौहार्द के साथ रहते हैं तथा अपनी शारीरिक व बौद्धिक क्षमता के अनुसार कार्य करते हैं। सभी सदस्यों द्वारा उत्पादित सम्पत्ति परिवार के मुखिया के हाथ में रहती है, जिसको वह आवश्यकतानुसार परिवार के कल्याण के लिए खर्च करता है। परिवार के बाकी सदस्यों में परस्पर प्रेम व सौहार्द की भावना होती है। गाँधी समाज को भी एक परिवार के रूप में देखते थे, जिसके सभी सदस्यों के कार्य करने की क्षमता अलग-अलग होती है। गाँधी के अनुसार जिस प्रकार परिवार में सभी सदस्यों की उत्पादित सम्पत्ति का उपभोग सभी सदस्य बिना भेदभाव के अपनी आवश्यकतानुसार मिलकर करते हैं, उसी प्रकार समाज के सभी सदस्यों को अपने द्वारा उपार्जित धन का प्रयोग अपनी आवश्यकतापूर्ति के बाद स्वयं को समाज का मुखिया या उस धन का ट्रस्टी समझते हुए समाज के सभी सदस्यों के कल्याण के लिए करना चाहिए।

11.4.4 सम्पत्ति का अर्जन समाज के सहयोग से संभव

गाँधी की मान्यता थी कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का अर्जन समाज के सहयोग के बिना नहीं किया जा सकता है। धन अर्जन या अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से दूसरों के सहयोग से ही करता है। इसलिए व्यक्ति अपनी सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकारी नहीं होता है, वह व्यक्ति सम्पत्ति पर तभी तक अधिकार रख सकता है जब तक उसे समाज का विश्वास मिला हुआ है। लेकिन तब भी वह सम्पूर्ण सम्पत्ति को निजी भोग के लिए प्रयोग में नहीं ले सकता। वह उतनी ही सम्पत्ति का अधिकारी है, जितनी दूसरों को प्राप्त है। शेष सम्पात्ति का प्रयोग उसे समाज-हित में ही करना होगा। लोगों का विश्वास प्राप्त करने के बावजूद सम्पत्ति पर उसे हमेशा के लिए अधिकार प्राप्त नहीं होंगे और यह अधिकार बिना मुआवजे दिये बदला भी जा सकता है।

11.4.5 दान प्रथा

गाँधी ने देखा कि भारत में दानी मनुष्यों में दूसरे मनुष्यों के लाभ के लिए दान देने की क्षमता व इच्छा है। अतएव दानी स्वयं को सम्पत्ति का ट्रस्टी समझता है।

गाँधी के अनुसार जब मनुष्य में अपनी सम्पत्ति के कुछ अंश को दान में देने की क्षमता है, तो ऐसी स्थिति भी आ सकती है कि व्यक्ति अपने दानांश को इतना बढ़ा दे कि

अपनी अवश्यकता पूर्ति पश्चात् बचा पूरा धन ही समाज को समर्पित कर दे। इस भावना से प्रभावित होकर गाँधी ने लोगों को स्वयं को समझने का परामर्श दिया।

11.4.6 सम्पत्ति का उत्तराधिकारी सम्पूर्ण समाज

गाँधी के अनुसार जब व्यक्ति समाज की सहायता से ही सम्पत्ति अर्जन करता है तो सम्पत्ति पर किसी व्यक्ति का पैतष्क अधिकार नहीं हो सकता। इसलिए एक धनी व्यक्ति की मृत्यु के बाद सम्पत्ति का अधिकार उसकी संतति को मिलना अमानवीय और असामाजिक है। गाँधी मानते थे कि सम्पत्ति और महान् उपलब्धियों के सभी रूप प्रकृति या सामाजिक जीवन की देन है। अत: अर्जित सम्पत्ति किसी एक की न होकर सम्पूर्ण समाज की होती है और उनका उपयोग पूरे समाजहित में होना चाहिए। इसी आधार पर गाँधी ने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का प्रादुर्भाव किया।

11.4.7 तेनत्याक्तेन भुजिंथा

ट्रस्टीशिप का एक महत्वपूर्ण आधार ईश्वस्योपनिषद् का प्रथम श्लोक था, जिसमें कहा गया था कि इस संसार में जो कुछ भी है, ईश्वर का है। इसलिए ईश्वर के नाम से त्याग करके तुम यथासंभव वस्तुओं का उपयोग करो, किसी का धन लेने की इच्छा न करो। इस श्लोक से गाँधी के मन में यह विचार प्रस्फुटित हुआ कि जब सम्पूर्ण सम्पत्ति का मालिक ईश्वर है तो सम्पत्ति रखने वाला उसका ट्रस्टी ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त गाँधी गीता के इस विचार से भी प्रभावित हुए थे कि जिसके पास करोड़ों रुपये हैं, उसके पास उनमें से एक भी पाई उसकी अपनी नहीं होती। उसके अनुसार व्यक्तिगत स्वामित्व भी समाज की धरोहर के रूप मे रहता है। इसलिए सामाजिक सम्पत्ति उपभोग के लिए नहीं, जन-कल्याण के लिए होती है।

11.5 ट्रस्टीशिप का आर्थिक स्वरूप

गाँधी ने आर्थिक स्वरूप की व्याख्या में इस बात पर बल दिया कि जिसके पास धन है, वह उसे अपना समझकर फिजूल व्यय न करे। धन को लोक-कल्याण में खर्च करे। जब तक धनिक वर्ग स्वेच्छा से अपना धन त्याग नहीं देते, अथवा उसे जनता की अमानत समझकर नहीं खर्च करते, तब तक हिंसात्मक क्रान्ति अनिवार्य है। धनाढ्य वर्ग के लोग यदि जन-सामान्य की तरह सादगी से रहते और कम करते हैं तो वे जनता के ट्रस्टी कहे जा सकते हैं। जो ट्रस्टीशिप की भावना रखेगा, वह लोगों को दबाकर उनका शोषण करके धन नहीं जमा करेगा। मैं धनाढ्य वर्ग की जायदाद बिना कारण अपहृत करने के पक्ष में नहीं हूँ। मेरे कितने ही पूंजीपति मित्र हैं और वे जानते हैं कि में पूँजीवाद समाप्त करने के लिए साम्यवादी से भी ज्यादा उत्सुक हूँ पर पूंजीवादी को समाप्त करने का मेरा तरीका अलग है और वह ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त पर निर्भर है

ट्रस्टीशिप या धरोहरदारी की भावना उच्च चरित्र की निशानी है। अमीरों को चाहिए कि वह अपने धन को जनता की धरोहर समझकर खर्च करें। अमीर जिस तरह गरीबों से अपने को और दूर रखते हैं उससे उनका भविष्य अंधकारमय दिखता है। अमीरों को धन के गर्व में अपना

मानसिक संतुलन नहीं खोना चाहिए, क्योंकि धन तो उनका है ही नहीं। हर अमीर और धनाढ्य को यह बात गांठ बांध रखनी चाहिए कि मनुष्य पहले है और सेठ-साहूकार बाद में।

आर्थिक समानता की जड़ में धनिक का ट्रस्टीशिप निहित है। इस आदर्श के अनुसार धनिक को अपने पड़ोसी से एक कौड़ी भी ज्यादा रखने का अधिकार नहीं है। तब उसके पास ज्यादा है, जो क्या छीन लिया जाए? ऐसा करने के लिए हिंसा का आश्रय लेना पड़ेगा और हिंसा द्वारा ऐसा करना संभव हो, तो समाज को उससे कुछ फायदा होने वाला नहीं है, क्योंकि द्रव्य इकट्ठा करने की शक्ति रखने वाले एक आदमी की शक्ति को समाज खो बैठेगा। इसलिए अहिंसक मार्ग यह हुआ कि जितनी मान्य हो सके उतनी अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के बाद जो पैसे बाकी बचें, उसका वह प्रजा की ओर से ट्रस्टी बन जाए। अगर वह प्रामाणिकता से संरक्षक बनेगा तो जो पैसा पैदा करेगा उसका सद्व्यय भी करेगा। जब मनुष्य अपने आपको समाज का सेवक मानेगा, समाज के खातिर धन कमायेगा, समाज के कल्याण के लिए उसे खर्च करेगा, तब उसकी कमाई में शुद्धता आयेगी। उसके साहस में भी अहिंसा होगी। इसी प्रकार की कार्य-प्रणाली का आयोजन किया जाए तो समाज में बगैर संघर्ष के एक क्रान्ति पैदा हो सकती है।

प्रत्येक व्यक्ति समाज में एक-दूसरे की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहायता से सम्पत्ति या भौतिक वस्तुओं का अर्जन करता है। मनुष्य की कोई भी शक्ति बिना एक-दूसरे की सहयता के अर्जित नहीं होगी। सभी के पास पेट और शरीर की प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। इन आवश्यकताओं की किसी देश और समाज में पूर्ण तृप्ति होती है और किसी में नहीं। ऐसी स्थिति में उत्पादित शक्ति का कुछ भाग किसी-न-किसी रूप में समाज के कुछ समर्थ व्यक्तियों के पास सम्पत्ति या धन के रूप में एकत्रित हो जाता है। इस सम्पत्ति या साधन का स्वामित्व उस व्यक्ति का नहीं अपितु सारे समाज का होता है। वह व्यक्ति तो केवल थाती के रूप में अपने पास रखता है ताकि उसका प्रयोग समाज के लिए किया जा सके। सन्त विनोबा भावे के 'दान' की आधारशिला यहाँ थातेदारी का विचार है। भूमि, सम्पत्ति, श्रम, बुद्धि, साधन, यह सब व्यक्ति-विशेष के पास संरक्षण के लिए रखा हुआ है। व्यक्ति विशेष उसे समाज को लौटा दे। वह उसके उपभोग के लिए नहीं है। यह एक समाज परिवर्तन का आर्थिक विचार है। इनके द्वारा मनुष्यों के सम्पत्ति के प्रति क्या दृष्टिकोण हैं, इसका स्पष्टीकरण होता है। प्राचीन काल में स्वामित्व और सम्पत्ति दोनों प्रतिष्ठा और पराक्रम के प्रतीक थे। व्यवस्थित व्यय स्वयं प्रेरणा अभिक्रम, उद्योगशीलता और पुरुषार्थ से सम्पत्ति और स्वामित्व की प्राप्ति होती है। पुराने अर्थशास्त्र में जीवन, सम्पत्ति और सुख-ये तीन मनुष्य के मौलिक अधिकार हैं। लेकिन समाजवादी विचारधारा ने इस विचार का खण्डन किया। उन्होंने सम्पत्ति को शोषण रूप माना। सम्पत्ति को चोरी माना, सम्पत्ति को हत्या माना। इस प्रकार से पुराने आर्थिक विचार में और समाजवादी विचार में एक घोर मतभेद उत्पन्न होता है।

गाँधी ने अपने एकादश व्रत में इस विचार को जोड़ दिया और परिग्रह स्तेय है ऐसा उन्होंने माना। परिग्रह के दो प्रमुख कारण हैं-एक लोभ तथा दूसरा रक्षा, क्योंकि समाज में आवश्यकताओं की तषप्ति का आष्वासन नहीं है। सम्पत्ति न तो पूर्णतया लोभ का परिणाम है

न ही पूर्णतया मनुष्य के पुरुशार्थ या मितव्ययता का परिणाम है। इसका प्रमुख कारण यह पूँजीवादी समाज है जो मनुष्यों की आवश्यकताओं की तषप्ति का आश्वासन नहीं देता है। इसलिए लोग संग्रह करते हैं और इस संग्रह को इसलिए चोरी कहा जा सकता है कि एक तरफ तो अभाव आवश्यकता है और दूसरी तरफ आधिक्य और विपलुता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्पत्ति और स्वामित्व चोरी और अनैतिकता है। गाँधी ने इसमें एक कड़ी और जोड़ दी और कहा कि जो उत्पादक बिना शरीर श्रम किये खाता है, वह चोर है। ऋग्वेद में यह भी कहा गया है कि जो अकेला खाता है, वह चोर है (केवलाद भवति केवलादो-ऋग्वेद)। उन्होंने यह बराबर माना है कि जिसके पास सम्पत्ति और स्वामित्व होता है, वह सदैव दुष्ट नहीं होता है। इसलिए थातेदारी का सिद्धान्त उन्होंने रखा। अस्तेय और अपरिग्रह आर्थिक रचना के मूल सिद्धान्त हैं। समाजवादी अर्थशास्त्र में तो आवश्यकता के अनुसार लेना और सामर्थ्य के अनुसार देना लक्ष्य निर्धारित हुआ। यही लक्ष्य समस्त आर्थिक संयोजन का होना चाहिए। व्यक्तिगत सम्पत्ति और स्वामित्व के कुप्रभावों और विकृत स्वभाव से अधिकांश अर्थशास्त्री ऊब गये हैं, इसलिए जान स्टुअर्ट मिल ने भी कहा है कि यदि व्यक्तिगत स्वामित्व एक व्यक्ति द्वारा दूसरे के शोषण के उपकरण बनते हैं तो इन्हें हड़प लेना चाहिए। हेनर्जी जार्ज ने 'प्रोग्रेस ऑफ प्रोपर्टी' अपनी पुस्तक में भी इस प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। फिजियोक्रेट्स और सिसमंडी ने भी इस प्रकार के विचारों का बीजारोपण किया है। गाँधी ने अपरिग्रह अस्तेय को थातेदारी के सिद्धान्त में मिला दिया है। समाजवादियों ने तो अपने वर्गभाव में स्वामित्व और सम्पत्ति को श्रमिक वर्ग के हाथ में दे दिया और उनकी प्रतिष्ठा बढायी। लेकिन अमीरों और पूँजीपतियों के वर्ग से सम्पत्ति और स्वामित्व को छीनकर श्रमिकों के हाथ में दे देना, यह भी उसी प्रकार से अनर्थकारी है, जैसी पहले की व्यवस्था। इस अनर्थ को मिटाने का उत्तर थातेदारी के सिद्धान्त में प्राप्त होता है। विशेषकर लोकशाही में, जिसमें सत्ता तो लोक-मूलक हो गयी, सार्वत्रिक हो गयी, परन्तु सम्पत्ति लोक-मूलक नहीं हुई। अभी यह व्यक्तिगत है। यह विरोध है और यह विरोध भी अब अधिक नहीं टिक सकता। इसलिए अब कोई विकल्प नहीं है, सिवाय इसके कि हम कहें कि हम अपनी सम्पत्ति को समाज की सम्पत्ति मानते हैं किन्तु महाप्रयत्न करने पर भी धनिक संरक्षक न बने, और भूखे मरते हुए करोड़ों को अहिंसा के नाम पर और अधिक कुचलते जाएँ तब क्या करें? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने में ही अहिंसक कानून भंग हुआ। कोई धनवान गरीबों के सहयोग के बिना धन नहीं कमा सकता। मनुष्य को अपनी अहिंसा- शक्ति का भान है, क्योंकि वह उसे लाखों वर्षो से विरासत में मिली हुई है जब उसे चार पैर की जगह दो पैर और दो हाथ वाले प्राणी का आकार मिला, तब उसमें अहिंसक शक्ति भी आयी। अहिंसा-शक्ति का भान धीरे-धीरे किन्तु अचूक रीति से रोज-रोज बढ़ने लगा। वह भान गरीबों में प्रसार पा जाए, तो बदलाव बने और आर्थिक अमानवता को जिससे कि वे शिकार हुए हैं, अहिंसक तरीके से दूर करना सीख लें।

सामाजिक परिस्थिति या स्वयं के पुरुषार्थ से जो कुछ भी मनुष्य को प्राप्त हो उसे वह धरोहर माने। इसी प्रवृत्ति का 'ट्रस्टीशिप' है। प्रत्येक व्यक्ति के पास जो सम्पत्ति और स्वामित्व है, उसे वह अपने उपभोग के लिए न समझे और न उसे व्याज, किराया, मुनाफा, ठेका या

दलाली द्वारा बढाने का प्रयत्न। करे। इस थातेदारी के सिद्धान्त को गाँधी ने सामाजिक परिवर्तन का साधन माना। गाँधी अस्तेय और अपरिग्रह के आधारभूत सिद्धांतों को थातेदारी में इस प्रकार जोड़ देते हैं कि स्वामित्व और सम्पत्ति की भूमिका और उसका आशय ऐसा परिवर्तित होता है कि स्वामित्व और सम्पत्ति का लगभग विसर्जन हो जाता है।

आज के समाज में अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि मजदूर को ' पूँजी' काम देती है । इसलिए पूँजी मालिक है और मजदूर नौकर है। इस आशय को गाँधी बल देते हैं। वे परिश्रम को प्रधानता देते हैं। परिश्रम प्रधान है और परिश्रम पूँजी का उपभोग करेगा। श्रम के लिए पूँजी का प्रयोग होना चहिए न कि पूँजी के लिए श्रम का। यहाँ पर श्रम को भी एक महान् सम्पत्ति गाँधी ने माना और श्रमिक को भी एक ट्रस्टी माना । गाँधी ने सृष्टि के प्रति जिस प्रकार का आदर माना है, उसी प्रकार का आदर उपकरण और श्रम के प्रति, समस्त वस्तु के प्रति भी माना है ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है। जिस प्रकार से यह हमारा शरीर ट्रस्टी है उसी प्रकार से समस्त वस्तुएँ ट्रस्टी के रूप में हैं। इससे एक नई भावना पैदा होती है कि हर मनुष्य अपनी शक्ति भर काम करेगा और केवल आवश्यकता भर उपभोग करेगा। जब यह भाव मनुष्य में पैदा होगा तो वह अपने को स्वामित्व और सम्पति से स्वत: अलग कर लेगा। प्रत्येक मनुष्य अपनी स्वतंत्र प्रेरणा से अपनी शक्ति व रुचि के अनुसार उन्नतिशील ढंग से काम करेगा और अधिक से अधिक समाज को देगा और कम से कम उससे लेगा। यह प्रत्यार्पण की भावना मनुष्य जब अपने मन में लाता है तो अपनी कला, प्रतिभा और श्रम समर्पित कर देता है, जैसे व्यक्ति अपने कुटुम्ब, अपने पड़ोसियों के लिए समर्पण की भावना रखता है। उसे गाँधी ने अर्थशास्त्र की भाषा में स्वदेशी कहा है। सन्त विनोबा भावे ने तीन माताएँ मानी है-जननी, जन्मभूमि और गाय। इसलिए इन तीनों की मालकीयत नहीं हो सकती।

गाँधी ने कहा मेरा ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त कोई ऐसी चीज नहीं है, जो काम निकालने के लिए आज गढ़ लिया गया हो। अपनी मंशा छिपाने के लिए खड़ा किया गया आचरण तो वह हरगिज नहीं है। मेरा विश्वास है कि दूसरे सिद्धान्त जब नहीं रहेंगे तब भी वह रहेगा। उसके पीछे तत्त्वज्ञान और धर्म के मालिकों ने इस सिद्धान्त के अनुसार आचरण नहीं किया है, इस बात से यह सिद्ध नहीं होता कि वह सिद्धान्त झूठा है, इससे धन के मालिकों की कमजोरी मात्र सिद्ध होती है। अहिंसा के साथ किसी दूसरे सिद्धान्त का मेल, ही नहीं बैठता। अहिंसक मार्ग की खूबी यह है कि अन्यायी यदि अपना अन्याय दूर नहीं करता तो वह अपना नाश खुद ही कर डालता है, क्योंकि अहिंसक असहयोग के कारण या तो वह अपनी गलती देखने और सुधारने के लिए मजबूर हो जाता है या वह बिल्कुल अकेला पड़ जाता है।

आज का अर्थशास्त्र अन्न से ज्यादा महँगा कच्चा माल, कच्चे माल से महँगा पक्का माल और पक्के माल से महँगा व्यापारिक माल को मानता है। इस आज के अर्थशास्त्र को गाँधी ने उलट दिया है, क्योंकि वे भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत इस अन्न को प्रदान किये गये महत्त्व को पूर्णतया स्वीकार करते हैं। इसीलिए गाँधी का अर्थशास्त्र आज के अर्थशास्त्र से भिन्न पड़ता है। आज का अर्थशास्त्र अभाव और अकाल के समय जो कण्ट्रोल और राषनिंग करता है, उसके पीछे भी थातेदारी का सिद्धान्त और उसके द्वारा आवश्यक वस्तुओं को सबको उपलब्ध

कराया जाता है। समाजवाद और साम्यवाद में सम्पत्ति के निर्माण करने के साधनों का स्वामित्व न तो व्यक्तिगत होगा और न कौटुम्बिक होगा। लेकिन भोग्य वस्तुएँ और उपयोगी वस्तुओं का व्यक्तिगत और कौटुम्बिक स्वामित्व होगा। भोग्य और उपयोगी वस्तुओं का यह स्वामित्व कभी-कभी हमें अतिसंग्रह की ओर ले जाता है। यह अति संग्रह कुसंस्कार और दोश है, क्योंकि मनुष्य की उपभोग क्षमता सीमित होती है। ये उपभोग की वस्तुएँ सामाजिक प्रतिष्ठा की प्रतीक बनती है, लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य का सांस्कृतिक विकास होता है, वैसे-वैसे इन उपभोग्य वस्तुओं के कारण सामाजिक प्रतिष्ठा कम होती चलती है। लेकिन मनुष्य का यह स्वभाव नहीं है, क्योंकि भोग क्षमता सीमित होने के कारण मनुष्य भोग्य पदार्थों के संग्रह को मर्यादित कर देता है। ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त इन भोग्य पदार्थों को भी ट्रस्टी के रूप में देखता है और वस्तु के प्रति आदर की भावना, वस्तु को समर्पण करने की भावना प्रत्येक व्यक्ति में पैदा कर देता है। ज्योंही इनके प्रति आदर की भावना होती है, त्योंही इनका दुरूपयोग समाप्त हो जाता है और हम कभी वस्तु को बरबाद और नष्ट नहीं होने देते।

अन्त में यही सर्वोतम मंत्र है ‘त्येन त्यक्तेन भुँजीथा' त्यागकर उसका भोग करो। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य भले ही करोड़ों की सम्पत्ति अर्जित करे, परन्तु यह बराबर ध्यान रखे कि यह अर्जित सम्पत्ति उसकी नहीं है, अपितु सारे समाज की है। उसमें अपनी उचित आवश्यकताओं की तृप्ति के लिए कुछ रखकर शेष सारी सम्पत्ति सारे समाज को अर्पित कर दे। इस प्रकार की प्रवृत्ति प्रत्येक मनुष्य में होनी चाहिए। उसके पास जो कुछ भी है, वह उसका ट्रस्टी है। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसके पास कोई-न-कोई शक्ति हो। ये जितनी शक्तियाँ हैं, उन सबका मनुष्य समाज में स्वामी बनकर इसका केवल ट्रस्टी बने। ये शक्तियाँ उसे इसलिए प्राप्त हुई हैं कि इनके द्वारा वह उत्पादन करे और अपनी आवश्यकता के अनुकूल इनका उपयोग करे। वह उन शक्तियों की वृद्धि और संरक्षण करे ताकि अधिक से अधिक समाज आर्थिक कल्याण की वषद्धि की कल्पना सरकार कर सके, जिससे आज के जघन्य स्वार्थ, विरोध, आर्थिक संघर्ष समाप्त हो जाए और एक नये आर्थिक समाज का विकास हो। इस विषय में दो मत नहीं है कि जब प्रत्येक व्यक्ति अपने को ऐसा समझेगा तब समाज से सर्वोदय की अर्थव्यवस्था होगी और उसके तीन आधार होंगे-

- अहिंसा,
- शोषणविहीनता और
- समता।

ये उपरोक्त आधार तभी प्राप्त होंगे जब मनुष्य अपनी इच्छाओं का नियमन करेगा। सेवामूलक स्वामित्व रहेगा, सेवाशून्य स्वामित्व नष्ट होगा।

11.6 ट्रस्टीशिप के उद्देश्य

गाँधी ने ट्रस्टीशिप के उद्देश्यों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया-

1. ट्रस्टीशिप एक साधन है, जिसके द्वारा वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था पर आधारित समाज को समता की सामाजिक व्यवस्था में बदला जा सकता है। ट्रस्टीशिप वर्तमान स्वामीवर्ग को अपने को शुद्ध करने और सुधारने का अवसर प्रदान करता है। यह सिद्धान्त इस

बात में अटल विश्वास रखता है कि मनुष्य की प्रकृति में सामाजिक, आर्थिक भावना अर्थात् परमार्थ की भावना स्वाभाविक एवं शाश्वत है। आज कितना भी स्वार्थी व्यक्ति हो, इस सिद्धान्त के द्वारा उसमें आन्तरिक हृदय एवं भावनाओं का परिवर्तन होता है।

2. यह सिद्धान्त किसी भी व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्वामित्व को मान्यता नहीं देता है । केवल उसी सीमा पर स्वामित्व के अधिकार को स्वीकार करता है। जिस सीमा तक समाज कल्याण को देखते हुए स्वामित्व की स्वीकृति देगा।

3. यह सिद्धान्त राजकीय कानून द्वारा निर्धारित स्वामित्व को स्वीकृति नहीं देता। इसका अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति को स्वतन्त्रता नहीं है कि वह अपनी सम्पत्ति का उपभोग मात्र करे। कोई भी व्यक्ति हो यदि वह केवल अपनी सम्पत्ति का प्रयोग वासना तृप्ति के लिए करता है तथा सामाजिक हित का ध्यान नहीं देता तो समाज उसे ऐसा करने से रोक सकता है।

4. यह सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति के लिए कार्य करना आवश्यक मानता है, उसके एक निर्वाह योग्य, कुशल क्षेम के लिए साधन भी निर्धारित करता है, ताकि कोई भी समाज में अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए दुःखी न हो सके। साथ ही साथ एक अधिकतम आय की सीमा भी समाज में निर्धारित करता है।

5. इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी वस्तु का उत्पादन केवल व्यक्तिगत लाभ-वासना की तृप्ति के लिए नहीं होगा, अपितु सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होगा।

6. प्रत्येक नागरिक का मर्यादित जीवन होगा ताकि वह अपनी आर्थिक शक्ति का सही प्रयोग कर सके। यदि कोई व्यक्ति इन शक्तियों का दुरूपयोग करता है तो वह अपने व समाज के प्रति अन्याय करता है और उसे अनैतिक कार्य माना जायेगा।

7. प्रत्येक व्यक्ति उस सम्पत्ति का जो उसके पास है स्वामी नहीं होगा, बल्कि सम्पत्ति का प्रयोग समाज के लिए करने के लिए उत्तरदायी होगा। उस सम्पत्ति में से एक मर्यादा के भीतर ही कुछ भाग वह स्वयं के उपभोग में लगायेगा।

8. यह सिद्धान्त अपने समाज तथा प्रकृति के प्रति उत्तरदायी होने की बात करता है। शरीर की रक्षा करना व्यक्ति का पुनीत कर्त्तव्य है। व्यक्ति को अपना उत्पादन समाज को समर्पित करके ही उसका उपभोग करना चाहिए। वस्तुओं का निर्धारण समाज की जरूरत से निश्चित होगा, न कि व्यक्ति की सनक या लालच से।

11.7 ट्रस्टीशिप की विशेषताएँ

गाँधी आर्थिक सन्दर्भ में ट्रस्टीशिप या संरक्षणकर्त्ता के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। इसे वह आर्थिक विषमता के प्रतिकार का साधन मानते हैं। वह निजी सम्पत्ति के अधिकार के पक्षधर थे, लेकिन सम्पत्ति के निरंकुश मालिकाने की अवधारणा के विरूद्ध थे। वह मानते-थे कि यदि किसी को उसके उपभोग की आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति उत्तराधिकारी में मिली या उसने व्यापार से कमाया है तो उस सम्पत्ति का मालिक नहीं न्यासी, संरक्षक या ट्रस्टी है। अत: व्यक्ति अपने को उसका स्वामी नहीं समझकर न्यासी भावना से काम करे। इससे सम्पत्ति उसके पास जरूर रहेगी, लेकिन समाजहित में उसका उपयोग होगा। वह अपने उपभोग के लिए

आवश्यक सम्पत्ति के अंश को अपने पास रखे और शेष सम्पत्ति का निवेश उसे लोक-कल्याण में करना चाहिए।

गाँधी का संरक्षता का सिद्धान्त अपरिग्रह का भावना पर आधारित है। अपरिग्रह की भारतीय संस्कृति में स्थापित प्रतिष्ठा रही है, जिसके अनुसार व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक का संग्रह नहीं करना चाहिए। इस तरह गाँधी 'सबै भूमि गोपाल की' जैसी सोच के तहत प्रंकारान्तर से सम्पत्ति के सामाजिक स्वामित्व को व्यक्ति की नैतिक शक्ति के सहारे प्रतिष्ठित करते हैं। ट्रस्टीशिप के इस सिद्धान्त के द्वारा वह पूंजीवाद के विष का शमन कर उसे परिमार्जित करना चाहते हैं। इसी लक्ष्य हेतु मार्क्स के हिंसा के मार्ग के विपरीत गाँधी एक नैतिक माध्यम का आश्रय अपनी ट्रस्टीशिप की अवधारणा में लेते है।

अत: गाँधी के न्यासिता के सिद्धान्त की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

11.7.1 समाज परिवर्तन का माध्यम

गाँधी ने ट्रस्टीशिप को समाज परिवर्तन का माध्यम कहा। उनके अनुसार ट्रस्टीशिप का विचार पूँजीवादी समाज को समतावादी समाज में बदलने का एक माध्यम है और समाज में ऐसा परिवर्तन तीन प्रकार से किया जा सकता है- (1) हृदय परिवर्तन, (2) कानून परिवर्तन, (3) सत्याग्रह। गाँधी ने हृदय परिवर्तन के द्वारा इस विचार को लागू करने की बात कही। परन्तु साथ ही यह भी कहा कि यदि धनी लोग स्वेच्छा से इसे नहीं अपनाते तो इसके लिए लोकमत का दबाव डालना होगा। आवश्यक होने पर असहयोग और सत्याग्रह का भी प्रयोग किये जाने की बात गाँधी ने कही।

11.7.2 समाज के हित में सम्पत्ति रखने का अधिकार

ट्रस्टीशिप की विचारधारा एक सीमा तक ही सम्पत्ति रखने के अधिकार को स्वीकार करती है। एक व्यक्ति को तब तक सम्पत्ति रखने का अधिकार है जब तक कि उसे समाज का विश्वास मिला हुआ है और उसकी सम्पत्ति समाज के विरुद्ध नहीं जा रही।

11.7.3 सम्पत्ति ट्रस्ट के रूप में

गाँधी के धन के समान वितरण की इस योजना का उद्देश्य अहिंसात्मक तरीके से पूँजीवादी प्रणाली के प्रमुख दोष अन्यायपूर्ण वितरण को समाप्त करना था। इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त निजी सम्पत्ति को एक ट्रस्ट के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए और पूंजीपतियों का यह कर्त्तव्य है कि वह ट्रस्ट की सम्पत्ति की उचित रूप से देखभाल करे। पूंजीपतियों का यह भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वे राष्ट्रीय सम्पत्ति को राष्ट्र के हितों को ध्यान में रखते हुए प्रयोग में लाए। इस सिद्धान्त में पूंजीपतियों का सम्पत्ति पर उतना अधिकार रहेगा, जिससे वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके व शेष धन का वे ट्रस्टी के रूप में देखभाल करेंगे, जिसका प्रयोग समाज हित में किया जायेगा।

11.7.4 साध्य और साधनों की पवित्रता पर बल

गाँधी ने न केवल साध्य, बल्कि उसकी प्राप्ति हेतु प्रयोग किये जाने वाले साधनों की पवित्रता पर भी बल दिया। उनका विचार था कि ट्रस्टीशिप के लिये यह आवश्यक है कि सम्पत्ति की प्राप्ति उचित वैधानिक तरीके से की जाये। और दूसरों के हितों को नुकसान पहुँचाए बिना एक सीमा से अधिक सम्पत्ति अर्जित करना सम्भव नहीं है।

11.7.5 कानून का प्रयोग

गाँधी ट्रस्टीशिप के विचार को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए कानून बनाने के विरोधी नहीं थे। यह सही है कि वे चाहते थे कि स्वेच्छा से ही धनिक वर्ग को इस विचार को स्वीकार करने हेतु तैयार किया जाए, परन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि आवश्यक होने पर कानून बनाकर इसे लागू किया जाये। इस प्रकार इस विचार को लागू करने के लिए कानून की सहायता ली जा सकती है।

11.7.6 राज्य का हस्तक्षेप

गाँधीजी जानते थे कि पूंजीपति अपनी पूँजी का त्याग स्वैच्छिक रूप से नहीं करेंगे, अत: उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राज्य के सीमित हस्तक्षेप का समर्थन किया। इस तरह राज्य द्वारा संचालित ट्रस्टीशिप व्यवस्था में कोई भी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को समाज के हितों का ध्यान रखे बगैर अपने स्वार्थों की पूर्ति करने के लिए स्वतन्त्र नहीं होगा। उन्होंने कहा कि "मेरी योजना में राज्य जनता की इच्छा पर चलेगा और अपनी इच्छा जनता पर नहीं थोपेगा।" इस प्रकार गाँधी ने राज्य को जनता के हित में कार्य का अधिकार देने की बात कही।

11.7.7 आर्थिक स्वतन्त्रता और विकेन्द्रीकरण

गाँधी का मानना था कि जब व्यक्ति मूलत: स्वतंत्र और सुव्यवस्थित होगा तभी समाज के प्रत्येक अंग का स्वाभाविक विकास हो सकता है। इसी कारण वे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे। उनके अनुसार शक्ति और अधिकार का विकेन्द्रीकरण, स्वार्थ और हित का विकेन्द्रीकरण तथा पूँजी और उत्पादन के साधनों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। विकेन्द्रीकरण के माध्यम से समाज का प्रत्येक वर्ग ऐसी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके, जिसमें जीवन के संचालन के लिए किसी पर निर्भर न रहना पड़े, साथ ही किसी वर्ग विशेष का हित दूसरे वर्ग के विकास व उसके हित में बाधक न बने। गाँधी के अनुसार आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना सामाजिक स्वतन्त्रता का उदय होना संभव नहीं है। आर्थिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति तभी संभव है जब मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य किसी पर निर्भर न हो तथा उत्पादन एवं व्यवस्था का संचालन उसी के हाथ में हो।

11.7.8 समानता, अहिंसा व स्वराज्य

समानता, अहिंसा व स्वराज्य ट्रस्टीशिप के आधार हैं। गाँधी समानता की स्थापना के लिए अहिंसात्मक तरीकों के प्रयोग के पक्ष में थे। समानता की स्थापना अहिंसात्मक तरीकों के

प्रयोगों को संभव बनाती है। गाँधी के अनुसार "जिस सीमा तक हम समाज में समान वितरण के लक्ष्य की प्राप्ति करेंगे उतना ही समाज में सन्तोष और प्रसन्नता जन्मेगी और उतना ही हम अहिंसात्मक समाज की स्थापना में सफल होंगे।

11.7.9 दान या दया से भिन्न

गाँधी के अनुसार ट्रस्टीशिप को दान या दया समझना गलत है। यह तो शोषण समाप्ति का एक ऐसा माध्यम है, जो व्यक्ति के व्यवहारों को सामाजिक हितों के अनुरूप बनाकर समानता स्थापित करने में सहायक है। वैसे भी प्रकृति या सामाजिक सहायता के बगैर कोई भी सम्पत्ति अर्जित नहीं कर सकता। अत: अर्जित सम्पत्ति का उपभोग समाज के हितों के लिए करके वह समाज पर किसी प्रकार की दया नहीं करता।

11.7.10 मानसिक दृष्टिकोण के परिवर्तन पर बल

गाँधी ने धनी लोगों के मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन करके ट्रस्टी के विचार को लागू करने पर बल दिया। इस हेतु वे धनिक वर्ग पर कोई दबाव डालने से यथासंभव बचना चाहते थे इस परिवर्तन के लिए तैयार करने के लिए कुछ समय भी देने को तैयार थे।

11.8 सारांश

एक विकासवादी क्रांतिकारी के रूप में गाँधी ने सम्पत्ति के स्वामित्व की समस्या का समाधान भी अहिंसक तरीके से प्रस्तुत किया। उनका ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि हिंसा के अभाव में भी निर्धन, धनिकों के धन का लाभ उठा सकते हैं। यदि धनिक सम्पत्ति को निजी संपत्ति न मानकर उसे समाज की धरोहर मानें। हरमन फाइनर के अनुसार " व्यक्ति उच्च स्तर की आकाँक्षा को लेकर जीवित रहता है और यही लालच उसकी अधिकांश वर्तमान राजनीतिक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का कारण है। " अत: गाँधी ने धनिकों के लिए स्वैच्छिक नियंत्रण आवश्यकताओं को न्यून करने का सुझाव दिया और कहा कि अधिक सम्पत्ति का प्रयोग समाज हित में करो, क्योंकि आवश्यकताओं में वृद्धि का अनियंत्रित विकास प्रकृति के विरूद्ध है और ईश्वर जितनी आवश्यकता है, उससे अधिक का सृजन नहीं करता। गाँधी का यह सिद्धान्त अपरिग्रह का तथा भारतीय धर्म व दर्शन की स्वीकृति पर आधारित है। गीता व अंग्रेजी कानून में यह बीज रूप में मिलता है। यदि कुछ धनिक भी न्यासी के रूप में व्यवहार करना प्रारम्भ कर दें तो पृथ्वी पर समानता व प्रेम का राज्य स्थापित हो जाये। एक न्यासी का जनता के अतिरिक्त कोई उत्तराधिकारी नहीं होता। यदि धनिक स्वयं न्यासी नहीं बनेंगे तो जनता का असहयोग उन्हें न्यासी बनने के लिए विवश कर देगा। गाँधी के इस सिद्धान्त में जहाँ स्वयं कार्य करने की प्रेरणा व कुशलता के संरक्षण की, जो पूंजीवाद का लक्षण है, की पूर्ति हो जाती है वहीं समानता की स्थापना भी शान्तिपूर्ण तरीके से संभव हो जाती है। इस प्रकार यह अहिंसक क्रान्ति का उपकरण प्रतीत होता है।

आर. बी. उपाध्याय ने अपनी पुस्तक "सोशल रेस्पोन्सिबिलिटी ऑफ बिसनेस एण्ड ट्रस्टीशिप : थ्योरी ऑफ महात्मा गाँधी" में लिखा है कि न्यासिता मात्र एक विचार न होकर

जीवन दर्शन है जो सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के निदान का एक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार महात्मा गाँधी ने जिस सर्वोदय समाज की संकल्पना प्रस्तुत की थी उसी सर्वोदय समाज के आर्थिक पक्ष का एक आधार स्तम्भ 'ट्रस्टीशिप' हैं, जिसके माध्यम से उन्होंने आर्थिक समानता को स्थापित करने का प्रयास किया।

11.9 अभ्यास प्रश्न

1. न्यासिता (ट्रस्टीशिप) के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं?
2. न्यासिता के सिद्धान्त का आर्थिक उद्देश्य क्या है?
3. गाँधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त की विशेषताओं का वर्णन करो।
4. गाँधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त का आर्थिक स्वरूप स्पष्ट करो।

11.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, रामजी, गाँधी और भावी विश्व व्यवस्था, दया पब्लिषिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2000.
2. सिन्हा, वी.सी., मौद्रिक अर्थशास्त्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.
3. हजेला, तिलकनारायण, आर्थिक विचारों का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1978.
4. सिंह, रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986.
5. रामचन्द्रन, जी., गाँधीवादी अर्थशास्त्र का मर्म, खादी ग्रामोद्योग, नवजीवन प्रकाशन, 1969.
6. नागर, विष्णुदत्त, प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1997.
7. दशोरा, एन. के., आर्थिक विचारों का इतिहास, हिमांशु पब्लिकेशन्स दिल्ली, 1992.
8. चतुर्वेदी डी.एन., गाँधी अर्थनीति, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, 1991.
9. गाँधी एम. के., त्याग का सन्देश, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1971.
10. गाँधी, म. के., मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1960.

इकाई - 12

रोटी के लिए श्रम

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 गाँधी जी के प्रमुख आर्थिक विचार

12.3 रोटी के लिए श्रम का सिद्धान्त

12.4 सारांश

12.5 अभ्यास प्रश्न

12.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 उद्देश्य

सामान्यत: गाँधीजी को हम राष्ट्रपिता तथा एक महान पुरूष के रूप में जानते है। अहिंसा, सत्याग्रह तथा असहयोग आन्दोलनों के माध्यम से भारत में जनचेतना जाग्रत करवाने वाले, भारत को स्वतन्त्रता दिलवाने वाले तथा आम जनता को सक्रिय रूप से भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में सम्मिलित करने वाले एक ऐसे महान व्यक्ति के रूप में उन्हें जाना जाता है जिन्होंने आधुनिक युग में पुन: एक बार व्यावहारिक रूप से यह सिद्ध कर दिया कि सत्य तथा अहिंसा आदर्श मात्र नही हैं, इन्हें आज भी व्यावहारिक रूप में परिणित किया जा सकता है।

जब गाँधीजी का भारत में राजनीतिक जीवन में प्रवेश हुआ, तथा भारत के आन्दोलन की बागडोर उनके हाथ में आ गयी तो उन्होंने भारत को स्वतंत्रता दिलवाने के लिए राजनीतिक के साथ आर्थिक साधनों का प्रयोग भी अपने साध्य की प्राप्ति के लिए किया।

गाँधीजी के आर्थिक विचारों को हम दो रूपों में देख सकते हैं:

1. भारत को स्वतन्त्रता दिलवाने के लिए साधन के रूप में जहां गाँधीजी ने स्वदेशी के प्रयोग, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा कुटीर उद्योगों के महत्व की चर्चा की तथा
2. जहाँ गाँधीजी ने "रोटी के लिए श्रम" तथा न्यासिता के सिद्वान्त के आधार पर एक न्याय पर आधारित शांति एवं सामंजस्यपूर्ण समाज की स्थापना का महती उद्देश्य अपने सामने रखा जिससे न केवल समाज में विवादों का समापन होता बल्कि मानवमात्र अपने आपको एक उच्च स्तर तक ले जा सकता था। रोटी के लिए श्रम तथा न्यासिता का सिद्धान्त उनके द्वारा दिए गए दो ऐसे सिद्वान्त माने जा सकते है जिन्हें अगर अपना लिया जाए तो समाज में कहीं विवाद तथा संघर्ष की कोई गुजांइश ही नहीं रहेगी तथा स्थायी शांति की स्थापना संभव हो सकेगी।

प्रस्तुत अध्याय का मुख्य उद्देश्य है, पाठक को महात्मा गाँधी के राजनीतिक, आर्थिक विचारों से अवगत करवाना। यह एक विडम्बना है कि गाँधीजी के राजनीतिक, आर्थिक विचारों से

या तो हम परिचित ही नहीं हैं अथवा उन्हें सही रूप में नही समझते। विशेषकर भारत में गाँधीजी हमें इतने अपने लगते हैं कि हम उनके दर्शन को समझने का प्रयास ही नहीं करते और यह मान लेते हैं कि उनके बारे में जो हम जानते हैं वही सही तथा पर्याप्त है। उससे आगे न तो कुछ जानने की जरूरत है और न ही यह जानने की जरूरत है कि जो कुछ हम जानते हैं वह सही है भी या नहीं। प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य गाँधीजी के विचारों में से एक छोटे से किन्तु महत्वपूर्ण भाग, ' रोटी के लिए श्रम' सम्बन्धी विचारों का समझाना है। इस इकाई के अध्ययन पश्चात ' रोटी के लिए श्रम' का अर्थ, उद्देश्य, प्रकृति, क्रियान्विति और महत्व को समझ सकेगी।

12.1 प्रस्तावना

सामान्यत: हम इस बात से परिचित हैं कि गाँधीजी ने मशीनों का विरोध किया, औद्योगीकरण एवं शहरीकरण का विरोध किया तथा स्वदेशी, कुटीर उद्योगों, विकेन्द्रीकरण एवं ग्राम स्वराज का समर्थन किया। किन्तु वास्तव में गाँधीजी ने भारत के लिए स्वावलम्बन पर आधारित जिस विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की कल्पना की थी, स्वतन्त्र भारत में हम उस परिकल्पना से बहुत दूर निकल आए हैं। बड़े उद्योगों को बढावा देने वाली केन्द्रित तथा मशीनों पर आधारित अर्थव्यवस्था गाँधीवादियों की दृष्टि में अभारतीय मानी जा सकती है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में " ग्राम स्वराज" की अवधारणा कही लुप्त हो गयी प्रतीत होती है। संक्षेप में कहा जाए तो गाँधीजी ने यद्यपि किसी भारतीय अर्थव्यवस्था का ' ब्लू प्रिंट' तो नहीं दिया था किन्तु समय-समय पर अर्थव्यवस्था के संबंध में अपने विचार प्रकट किए थे जिन्हें जानना व समझना आवश्यक है।

12.2 गाँधी जी के प्रमुख आर्थिक विचार

ऐसा कोई विषय नहीं है या जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं है जिस पर गाँधीजी ने जीवन ने अपने विचार व्यक्त नहीं किया हो। जीवन को वे समग्र रूप मे देखते हुए, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पक्ष को एक दूसरे से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित मानते थे। उनके प्रमुख आर्थिक विचारों को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर विवेचन किया जा सकता है :-

1. **स्वावलम्बी ग्रामीण अर्थव्यवस्था** - गाँधीजी के अनुसार भारत गांवों में बसता है और अगर गांवों को स्वावलम्बी बना दिया जाए तो भारत का विकास स्वत: हो जाएगा तथा वर्तमान में जो समस्याएं हम अत्यधिक औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के कारण देख रहे हैं उनका जन्म ही नहीं होता।

   गाँधीजी गांव को एक समग्र इकाई के रूप में देखते थे तथा ग्राम स्वराज अर्थात ग्राम को अपने आप में परिपूर्ण करने का प्रयास अगर ईमानदारी से किया जाये तो न ग्रामीणों का शहरों की और पलायन होगा और न ही उससे संबन्धित अनेकानेक समस्याएं उत्पन्न होंगी। स्वावलम्बी ग्राम भारतीय अर्थव्यवस्था तथा राज व्यवस्था को एक सशक्त आधार प्रदान करते और सच्चा भारत जो गांवों में बसता है उसकी तस्वीर ही कुछ ओर होती।

2. **मशीनें तथा गाँधी** - एक प्रचलित भ्रांति है कि गाँधीजी ने सभी तरह की मशीनों का पूर्ण विरोध किया था, वह मशीनों के विरोधी थे। किन्तु वास्तविकता यह है कि उन्होंने मशीनों का विरोध न करके मानव के मशीनों का दास बन जाने का विरोध किया था। उनका विरोध इस बात से था मानव धीरे-धीरे शारीरिक श्रम की उपेक्षा कर मशीनों पर इतना निर्भर हो जाता है कि मशीनों के बिना उसका काम ही नहीं चलता है। उनका मानना था कि जहां आवश्यक है वहीं मशीनों का प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे शारीरिक श्रम का महत्व बना रहे तथा मानव मशीनों का दास न बनकर स्वतन्त्र तथा स्वावलम्बी जीवन व्यतीत कर सके। इसीलिए गाँधीजी ने चरखा, खादी तथा स्वदेशी को अपनाने पर बल दिया।

3. **न्यासिता** :- गाँधीजी आर्थिक गतिविधियों तथा विकास के विरूद्ध नहीं थे। समाज में समता स्थापित करने हेतु उन्होंने न्यासिता का सिद्वान्त बनाया जिसको अपनाने से एक ओर उद्यमियों को अपने कार्य में कहीं बाधा का सामना नहीं करना पडता और न ही समाज में अमीरों तथा गरीबों के मध्य खाई पनपती। उनके अनुसार उद्यमी खूब कमाएं किन्तु अपनी कमाई में से जितना व्यक्तिगत उपयोग के लिए आवश्यक हो उतना अपने पास रखकर शेष पूंजी अथवा धन को निर्धनों तथा समाज के हित में व्यय करें। अतिरिक्त धन पर वह अपना अधिकार न मानकर उसके ट्रस्टी के रूप में कार्य करें। अगर इस सिद्वान्त के आधार पर कार्य किया जाए जो समाज का अमीर तथा गरीब दो वर्गों में विभाजन नहीं हो पाएगा।

12.3 रोटी के लिए श्रम का सिद्धान्त

गाँधीजी के जीवन और दृष्टिकोण को अनेक भारतीय और विदेशी लेखकों चिंतकों ने प्रभावित किया। ' रोटी के लिए श्रम' या ' कॉयिक श्रम' या अंग्रेजी में ' ब्रेड लेबर' का सिद्धान्त के उनके विचार मुख्य रूप जॉन रस्किन टॉलस्टॉय और भगवत गीता से प्रभावित हुऐ हैं। जॉन रस्किन के 'अनटू दिस लास्ट', जिसका गाँधीजी ने 'सर्वोदय' के नाम से अनुवाद किया, उनके विचारों को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण ग्रन्थों में से एक था। वे रस्किन के 'शारीरिक श्रम ' के आदर्श से बहुत ज्यादा प्रभावित हुए थे। गाँधी ने उसकी पुस्तक का दक्षिण अफ्रीका मे अध्ययन किया था और इसमें से तीन शिक्षाओं को महत्वपूर्ण माना था।

प्रथम शिक्षा है - एक व्यक्ति की भलाई सबों की भलाई में निहित है,

दूसरी शिक्षा है - एक वकील के कार्य का मूल्य एक हज्जाम के कार्य के बराबर है। इसी प्रकार सबको अपने कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन का अधिकार है।

तथा तीसरी है - एक श्रमिक का जीवन खेत, जोतने वाले किसान का जीवन और दस्तकारों का जीवन अन्य जीवों के समान ही है।

गाँधीजी ने इस सिद्वान्त को टॉलस्टॉय के लेक्षनों से भी ग्रहण किया। इस सिद्वान्त को गाँधीजी ने इस रूप में समझा कि मनुष्य को अपनी शरीर की मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने शरीर की क्षमताओं का प्रयोग करके करना चाहिए। गाँधीजी ने इसे ईश्वरीय

नियम के रूप में अपनाया और यह भी बताया कि इस सिद्वान्त का उल्लेख हमें गीता के निम्नांकित श्लोक में भी मिलता है :-

दृष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता:

वैर्दत्तान प्रदायैभ्यों यो मुड्क्तें स्वेन एवं स:।

अर्थात यज्ञ (कर्म/परिश्रम) द्वारा देवताओं को प्रसन्न किए बिना जो खाता है वह चोर है।

गाँधीजी ने इस सिद्वान्त को इस रूप में अपनाया कि जो व्यक्ति शारीरिक श्रम किए बिना खाता है वह अन्याय करता है क्योंकि भूख जगाने के लिए शारीरिक श्रम करना अनिवार्य होता। जो व्यक्ति शारीरिक श्रम नहीं करते हैं वे कृत्रिम साधनों से व्यायाम आदि द्वारा भूख उत्पन्न करते है। गाँधीजी का मानना था कि जो व्यक्ति अपनी आजीविका हेतु मानसिक श्रम करते हैं उन्हें भी प्रतिदिन कुछ शारीरिक श्रम अवश्य करना चाहिए। उनका मानना था कि शारीरिक श्रम अनिवार्य है क्योंकि बौद्विक अथवा मानसिक श्रम केवल बुद्धि की भूख पूरी करता है अत: ऐसे लोगो को बिना पारिश्रमिक की प्रत्याषा किए, समाजहित में प्रतिदिन, श्रम अवश्य करना चाहिए। उनके अनुसार यह न केवल वास्तविक भूख उत्पन्न करेगा अपितु आर्थिक एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अत्यन्त लाभकारी तथा अनिवार्य है। मेरी व्यक्तिगत समझ से शारीरिक श्रम का एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अनछुआ पहलू भी है। जो व्यक्ति शारीरिक श्रम नहीं करता, अपना पसीना बहाकर वस्तु का निर्माण नहीं करता स्वयं एक रचयिता नही बनता तब तक वह श्रम से उत्पादित वस्तुओं का बाजार मूल्य तो जानता है किन्तु उनका वास्तविक 'मोल' अथवा 'महत्व' नहीं। स्वयं द्वारा रचित किसी वस्तु से लगाव ही उस वस्तु का वास्तविक महत्व बताता है तथा अन्य व्यक्तियों के श्रम से उत्पन्न वस्तुओं का महत्व भी तभी समझ पाता है जब वह स्वयं रचयिता की श्रेणी में आ खड़ा होता है। जब सभी व्यक्ति शारीरिक श्रम करेंगे तभी उन्हें 'मानवश्रम ' का सही मोल अथवा 'महत्व' समझ में आएगा और जिस दिन यह हो जाएगा उस दिन व्यर्थ की सार्वजनिक हिंसा, उपद्रव तथा तोड़ फोड़ की कार्यवाहियां स्वत: रूक जाएंगी। आज हिंसा उपद्रव तथा विभिन्न आन्दोलनों के दौरान निजी तथा सार्वजनिक सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाते हुए लोगों के हाथ नहीं कांपते, उनका मन, मस्तिष्क तथा आत्मा उन्हें नहीं धिक्कारती क्योंकि वह उस सम्पति में लगने वाले शारीरिक श्रम के महत्व से परिचित नहीं होते। जब ये विध्वंसक प्रवृति के लोग स्वयं का पसीना बहाकर कुछ निर्माण करेगे तब उन्हें ज्ञान होगा कि किसी वस्तु की रचना कितना महत्वपूर्ण, अमूल्य तथा आनन्दायक कार्य है, रचना का मानसिक सुख क्या है और तब उनकी विध्वंस्क गतिविधियों पर स्वत: अंकुश लगना प्रारम्भ हो जाएगा। इससे सार्वजनिक तथा निजी सम्पति की तोड़ फोड़ कम होगी जो व्यापक सामाजिक तथा आर्थिक हित में तथा देश निर्माण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

अगर शारीरिक श्रम के महत्व तथा उससे प्राप्त होने वाले आनन्द को आजमाना चाहें तो स्वयं छोटे से प्रयोग से ऐसा कर सकते हैं। स्वयं किसी छोटी सी चीज का निर्माण करके देखिए। वह चीज चाहे जितनी छोटी, जितनी अकिंचन, जितनी भी मूल्यहीन अथवा अनुपयोगी ही क्यों न हो, आपके लिए वह अत्यन्त महत्वपूर्ण होगी, आपको प्रिय होगी, आपको आनन्द

देगी तथा आप जी जान से उसकी रक्षा करने का प्रयास करेंगे, उसे सुरक्षित रखेंगे क्योंकि उस वस्तु के रचयिता आप हैं, आपने उसके निर्माण के लिए अपना पसीना बहाया है।

घर में एक पौधा उगाकर देखिए, आप कैसे अंकुर फूटने का इंतजार करते हैं, उसके बड़े होने, पल्लवित तथा पुष्पित होने की राह देखते हैं। और आप स्वयं जो फूल तोड़ते हुए या पौधे नष्ट करते हुए पहले कभी एक बार ठिठके भी नहीं होंगे कैसे उस नन्हें पौधे की रक्षा हेतु तत्पर रहते हैं और अगर वह किसी कारण से असमय नष्ट हो जाए तो कितनी मायूसी या दुख का अनुभव करते हैं, और आपको स्वत: शारीरिक श्रम का महत्व समझ आ जायेगा।

गाँधीजी हर व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे। उनका मानना था कि व्यक्ति की गरिमा को बनाये रखने के लिए उसका आत्मनिर्भर होना अनिवार्य है। यही कारण था कि गाँधीजी ने 'भीख' देने को गरीब का 'अपमान' करना मानते हुए उसका विरोध किया था। उनका कहना था कि ‘दान' देने की जगह व्यक्ति को काम करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। दान देने से न केवल व्यक्ति की गरिमा का हनन होता है बल्कि वह धीरे धीरे अकर्मण्य, परजीवी तथा परावलम्बी बन जाता है, उसकी काम करने की इच्छा ही मर जाती है और यह प्रवृति उस व्यक्ति के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज तथा देश के लिए घातक होती है। शारीरिक श्रम करने वाला व्यक्ति, इसके महत्व को समझने वाला व्यक्ति कभी भी अन्य व्यक्तियों को परावलम्बी बनाने वाली प्रवत्तियो को बढ़ावा नहीं देगा। शारीरिक श्रम के माध्यम से धीरे धीरे एक सामाजिक कांति आएगी जो कि समाज में निहित संरचनात्मक विभेदों को दूर कर देगी तथा एक समरचनात्मक समाज की रचना संभव हो सकेगी। इससे न केवल वर्ग अथवा श्रेणी का विभेद समाप्त हो जाएगा बल्कि पूंजीपति अथवा अमीर एवं गरीब के मध्य स्थित बडी खाई भी धीरे-धीरे भर जाएगी और परस्पर सहयोग तथा समानता की भावना का समाज में विस्तार होगा।

जब सभी प्रतिदिन शारीरिक श्रम करेंगे तो कोई किसी को हेय दृष्टि से नहीं देखेगा तथा दूसरों की दृष्टि में अपना झूठा मान समाने बनाए रखने की जद्वोजहोद समाप्त हो जाएगी। सभी मिलजुलकर समाज की प्रगति में संलग्न हो जाएंगे।

श्री जे.डी. सेठी जो कि एक प्रख्यात गाँधीवादी अर्थशास्त्री है उनके शब्दों में, “सामान्य शब्दों में ब्रैड लेबर का तात्पर्य था उत्पादन के तरीकों तथा समाज द्वारा निर्धारित आवश्यकताओं के सन्दर्भ में जरूरी वह शारीरिक श्रम जो कि हर व्यक्ति से इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपेक्षित है। इतना श्रम समय हर व्यक्ति द्वारा शारीरिक श्रम में व्यतीत किया जाना चाहिए। कोई भी व्यक्ति जो अपने हाथों अथवा अन्य अंगों से कार्य नहीं करता वह परजीवी बनने के खतरे में रहता है यहां तक कि श्रेष्ठतम विचारक, कवि अथवा दार्शनिक भी अपने ही विचारों से भ्रमित हो सकता है तथा परिष्कृत होने की भावना से ग्रस्ति हो सकता है अगर वह किसी भी तरह की शारीरिक गतिविधि में सम्मिलित नहीं होता।"

व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण को समाप्त करने के लिए हर व्यक्ति का शारीरिक श्रम करना अनिवार्य है। इस व्यवस्था में आवश्यकताओं की पूर्ति को महत्वपूर्ण माना गया है तथा विलासिताओं का विरोध किया गया है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन तथा उससे लाभ कमाने की प्रवृति पर रोक लगाने का यह एक अच्छा माध्यम हो सकता है। इससे गाँधीजी के

महती आदर्श सादा जीवन उच्च विचार को भी स्वत: समर्थन प्राप्त हो जाता है। अगर इस विचार को अपना लिया जाए तो समाज से शोषण का स्वत: ही अन्त हो जाएगा, क्योंकि हर व्यक्ति स्वयं अपनी आवश्यकता के अनुसार उत्पादन तथा उपभोग करेगा।

गाँधीजी के अनुसार आदर्श परिश्रम अथवा शारीरिक श्रम तो पृथ्वी में से कुछ उपजाने में ही है किन्तु जिन लोगों के पास इस तरह की सुविधा नहीं है वह चरखे द्वारा सूत कताई अथवा अन्य दस्तकारियों के माध्यम से शारीरिक श्रम करके पेट भरने के अधिकारी हो सकते है।

अगर गाँधीजी के विरोधियों का यह कहना मान भी लिया जाए कि इस प्रकार के विचारों से तो समाज की प्रगति ही रूक जाएगी तथा वर्तमान समय में यह व्यावहारिक नहीं है तब भी शारीरिक श्रम की आवश्यकता को व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए कम करके नहीं आका जा सकता। शारीरिक श्रम की आवश्यकता तो आज अनेकानेक वैज्ञानिक तथा स्वास्थ्य संबंधी शोधों से भी प्रमाणित हो चुकी है।

जैसा कि डॉ. पट्टाभि सीतारम्यया ने लिखा है " गाँधीवाद सिद्धांतों एवं मतों, नियमों व विनियमों विधि व निषेधों का कोई समूह नहीं प्रत्युत करता, वह एक जीवन शैली है। वह जीवन की समस्याओं के प्रति एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है या प्राचीन दृष्टिकोण को फिर से प्रतिष्ठित करता है और समस्याओं के लिए प्राचीन समाधान प्रस्तुत करता है।"

गाँधीजी ने स्वयं कभी किसी वाद के प्रचलन की बात नहीं की थी। वे स्वयं अपने विचारों को केवल सत्य के साथ प्रयोग मानते थे। उनके जीवन को एक अन्तहीन प्रयोग माना जा सकता है जो किसी सिद्वान्त अथवा वाद पर आधारित न होकर समसामयिक समस्याओं के व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि यह समय परिस्थितियों तथा आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है। गाँधीजी के स्वयं के शब्दों में, " गाँधीवाद नाम की कोई वस्तु नहीं है और मैं अपने पीछे कोई सम्प्रदाय नहीं छोडना चाहता। सत्य व अहिंसा के सिद्वान्तों का उन्होंने मानव जीवन के व्यक्तिगत सामाजिक, नैतिक एवं सांसारिक अवस्थाओं में प्रयोग करके विभिन्न समस्याओं के संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं।

जहां तक गाँधीजी के ब्रेड लेबर अथवा रोटी के लिए श्रम के सिद्वान्त का प्रश्न है उसे भी एक प्रयोग मानते हुए समय के साथ सामंजस्य बिठाते हुए अपनाने से लाभ ही होगा।

12.4 सारांश

रोटी के लिए श्रम का सिद्वान्त गाँधीजी द्वारा दिया गया एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जो व्यक्ति के शारीरिक श्रम को अत्यधिक महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य मानता है। गाँधीजी 'श्रम की रोटी ' सिद्धान्त का समर्थन करते हुए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता अनुसार समाज को देने और आवश्यकता अनुसार समाज से प्राप्त करने पर बल देते थे। उनके अनुसार सभी स्वस्थ मनुष्यों को कुछ न कुछ रूप में शारीरिक श्रम अवश्य करना चाहिए। कायिक श्रम को अनिवार्य और महत्वपूर्ण मानना और प्रत्येक श्रम को समाज के लिए समान महत्व रखने की बात करके गाँधीजी श्रम की समानता प्रतिपादित करते हुए समाज मे फैले ऊँच-नीच की धारणा को समाप्त करना चाहते थे। गाँधीजी के लिए शारीरिक श्रम आत्मनिर्भरता और शेषण-मुक्त समाज की

प्राप्ति का महत्वपूर्ण साधन है। उनके अनुसार यह शरीर को स्वस्थ, चुस्त तथा रोग-मुक्त रखने का भी उपयुक्त साधन है। यद्यपि गाँधीजी के अन्य विचारों की तुलना में रोटी के लिए श्रम सिद्वान्त को लोग कम जानते हैं, इससे इसका महत्व कम नहीं हो जाता। गाँधीजी मानवीय जीवन के सात प्रमुख क्षेत्र में नैतिकता को प्रबल रूप में प्रतिस्थापित करना चाहते थे। उन्होंने ' सात सामाजिक पाप' में दूसरा और तीसरा पाप - 'परिश्रम विहीन धनोपार्जन' और 'नैतिकता विहीन व्यापार' को माना और इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध ' रोटी के लिए श्रम' के सिद्धान्त से है। इसलिए भले ही कम लोग इस गाँधीवादी सिद्धान्त के बारे में जानते हों, परन्तु गाँधीजी के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण सिद्धान्त था और इसीलिए उन्होंने इसे आश्रम व्रत के रूप में स्वीकारा। आधुनिक समय में भी इस सिद्वान्त को अपना लिया जाए तो व्यक्ति तथा समाज की अनेक समस्याओं का हल संभव हो सकता है।

12.5 अभ्यास प्रश्न

1. ब्रैड लेबर पर एक टिप्पणी लिखिए।
2. रोटी के लिए श्रम से आप क्या समझते हैं? क्या आधुनिक समय में यह सिद्धान्त व्यावहारिक सिद्ध हो सकता है?

12.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शूमाकर, ई. एफ.,स्माल इस ब्यूटिफुल, राधकृष्ण, नई दिल्ली, 1977
2. कामथ, एम.वी. गाँधी : ए स्पिरिट्युल जरनी, इण्डस, मुम्बई, 2007
3. कालेलकर, काका, क्विन्टऐस्सन्स ऑफ गाँधीयन थॉट, गाँधी हिन्दुस्थानी साहित्य सभा, नई दिल्ली, 2005
4. मेहता, वी. आर., इण्डियन पॉलिटिकल थॉट, मनोहर, नई दिल्ली, 1996
5. पाटिल, वी.टी., (सम्पादित) स्टडीस ऑन गाँधी, स्टरलिंग, नई दिल्ली, 1983
6. भारतीय राजनीतिक विचारक, इकबाल नारायण, ग्रन्थ विकास जयपुर, 2011

इकाई - 13

गाँधी एवं वर्ण व्यवस्था

इकाई रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 गाँधीजी का धर्म सम्बन्धी विचार

13.3 गाँधीजी का वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी विचार

13.4 गाँधी एवं अस्पृष्यता

13.5 सारांश

13.6 अभ्यास प्रश्न

13.7 संदर्भ गन्थ सूची

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी समझ सकेंगे :-

- गाँधीजी के धर्म सम्बन्धी विचार
- वर्ण सम्बन्धी गाँधीजी के विचार।
- गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत वर्णाश्रम धर्म सम्बन्धी विचार।

13.1 प्रस्तावना

प्रत्येक समाज के लिए सामाजिक समरसता का लक्ष्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत में सामाजिक समरसता की अवधारणा ऐतिहासिक प्ररिप्रेक्ष्य में खोजी जा सकती है किन्तु सर्वोत्तम विवेकीकृत स्वरूप आधुनिक भारत निर्माण के चिन्तन एवं सक्रिय प्रयास में देखा जा सकता है। ऐसे प्रयास में महात्मा गाँधी का नाम अग्रणी है। योग्यता और सामर्थ्य के अनुरूप सर्वांगीण विकास के अवसर सुलभ हो तथा जाति, लिंग, जन्म, रंग, नस्ल, स्थान आदि के आधार पर भेदभाव के बिना, व्यक्ति को सामाजिक सदस्य के रूप में उचित स्थान तथा सम्मान प्राप्त हो, ऐसे सामाजिक समरसता के लक्ष्य गाँधी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थे। उनके प्रभावशाली नेतृत्व का एक प्रमुख आधार उनकी भारतीय समाज, परम्परा और संस्कृति की समझ और विद्यमान त्रुटियों को सुधार कर सम्पूर्ण समाज की उन्नति के बारे में सकारात्मक सोच और भरसक प्रयास करना था। गाँधीजी के अनुसार मनुष्य का सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। वस्तुत: उन्होंने सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन को एक-दूसरे का अनुपूरक मानकर सामाजिक सुधारों के कार्यों और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रयत्नों को साथ-साथ चलाने की आवश्यकता पर बल दिया। अपने समकालीन भारतीय समाज की बुराइयों को गाँधीजी ने पहचाना और माना कि यदि भारत को अपना खोया हुआ गौरव पुन: प्राप्त करना है तो उसे अपनी सामाज में व्याप्त बुराइयों को तत्काल समाप्त करना होगा।

गाँधीजी ने भारत में वर्षों से विद्यमान वर्ण व्यवस्था को स्वीकारा परन्तु उसमें कालान्तर में आए विकृतियों को दूर करने पर भी बल दिया। गाँधीजी के अनुसार वर्ण व्यवस्था मूल रुप में समाज के सदस्यों की क्षमताओं एवं योग्यता के अनुसार उनके कर्त्तव्यों के विभाजन की वैज्ञानिक व्यवस्था है। गाँधीजी ने यह समझ लिया था कि किसी भी समाज की वैचारिक तथा व्यवस्थागत संरचना में उसकी पारम्परिक संस्थाओं और मूल्यों की महती भूमिका होती है। इन मूल्यों और संस्थाओं के परिवर्तन की सम्बद्धता सामाजिक परिवर्तन और प्रक्रियाओं में परिलक्षित होती है। गाँधीजी इस विचार से सहमत थे कि भारतीय समाज के पुनर्निर्माण में व्यावहारिकता के आधार पर धर्म की समझ को वस्तुगत दृष्टि से संशोधित एवं परिष्कृत करना होगा और सामाजिक प्रक्रियाओं से सांमजस्य स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

13.2 गाँधीजी का धर्म सम्बन्धी विचार

गाँधी का सम्पूर्ण जीवन धर्म तथा आध्यात्मिकता द्वारा संचालित था, अत: यह स्वाभाविक है कि उन्होने सामाजिक व्यवस्था के नियमन में भी धर्म को महत्वपूर्ण माना। दूसरे शब्दों में, गाँधी मानते थे कि समाज के सभी सदस्यों की समानता तथा न्याय का समर्थन करना इसीलिए आवश्यक है क्योंकि वे सब एक ही ईश्वर के सन्तान है। सामाजिक न्याय के संदर्भ में गाँधी के धार्मिक विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका है जिसे संक्षेप में समझने के लिए उनके विचार उद्धृत करना वांछनीय हैं।

गाँधी के लिए व्यक्ति के जीवन की प्रत्येक क्रिया जैसे - भोजन करने, बैठने, बात करने व्यवहार करने, जीने, आदि - के समाल योग का नाम धर्म है। अर्थात गाँधी धर्म को कोई औपचारिक या साम्प्रदायिक दायरे का सिद्धान्त नहीं मानते थे। उनके अनुसार जो धर्म जीवन के व्यावहारिक पहलुओं से अलग रहता है तथा उन्हें हल करने में सहयोगी नहीं होता है वह धर्म नहीं है।

गाँधी द्वारा धर्म को समाज से सम्बद्ध करने का दूसरा कारण था कि वे जीवन की समग्रता में विश्वास करते थे। उनका कहना था कि जीवन को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक नामक भिन्न-भिन्न भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता है। हर क्रिया, तथा प्रतिक्रिया परस्पर सम्बद्ध है। मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर की अनुभूति है अत: उसके आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक कार्य इसी उद्देश्य से निर्देशित होने चाहिए। ईश्वर की प्रत्येक रचना में उसके दर्शन करके ही उसे पाया जा सकता है। अत: " सभी मानवों की सेवा उसे पाने के प्रयासों का अभिन्न अंग है। गाँधी का धर्म, किसी मन्दिर या मस्जिद, गुरूद्वारे और चर्च में जाकर पूजा अर्चना करने वाला नहीं था और ना ही वे किसी अनास्थावादी को अधर्मी मानते थे।

यह बात बहु त महत्वपूर्ण है कि गाँधी का धर्म सम्बन्धी विचार आस्था-अनास्था से सम्बद्ध न होकर कर्म से सम्बद्ध है क्योंकि अनास्थावादी मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारे से अर्चना न करके भी यदि अपने कर्मानुसार कार्य करता है तो भी वह धार्मिक है किन्तु अस्तिक (ईश्वर पर आस्था रखने वाला) कुविचार लेकर अर्चना करता है तो वह अधार्मिक हो सकता है।

जीवन के आध्यात्मीकरण के परिणामस्वरूप मानव सेवा को गाँधी ने अपने अभिन्न अंग माना है अत: समाज के हर दलित, दमित, गरीब, असहाय, सुविधाहीन व्यक्ति का वे उत्थान करना चाहते थे। उसके इसी विचार को सैद्धान्तिक भाषा में सामाजिक न्याय कहा जा सकता है क्योंकि वे समाज के सभी लोगों को समान और स्वतंत्र देखना चाहते थे ताकि वे अपने अंतिम लक्ष्य "ईश्वर प्राप्ति" की ओर अग्रसर हो सके।

गाँधी का मानना था कि "ईश्वर अधिकतर अपने दीन दुखी प्राणियों में निवास करता है" इसीलिए उन्होंने ईश्वर को दरिद्रनारायण कहा। उनके हृदय में दलित तथा दमित वर्गों के लिए उतना ही प्रेम था जितना कि ईश्वर के प्रति। वे सभी धर्मों की समानता में विश्वास करते थे तथा सत्य, अहिंसा, मानव प्रेम, परोपकार, नैतिकता, तर्क आदि को वे धर्म का आवश्यक अंग मानते थे। उनके शब्दों में ऐसे धार्मिक सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करना चाहिए जो तर्क से मेल न खाता हो तथा नैतिकता के विरूद्ध हो। उनका मानना था कि जैसे ही हम अपना नैतिक आधार कमजोर करते हैं, हम धार्मिक नही रहते। उनके मतानुसार नैतिकता की अवहेलना करने वाला, धर्म नहीं हो सकता।

गाँधी अपने आपको सनातनी हिन्दू कहते थे इसका अर्थ यह नहीं कि वे हिन्दू समाज में धर्म के नाम पर व्याप्त कुरीतियों का आँखें मूँद कर पालन करते हों। अपने सनातनी होने के पक्ष का उन्होंने इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है - "सनातन धर्म का पालन करने वाला ही सनातनी है। महाभारत के अनुसार सनातनी का अर्थ है - सत्य, अहिंसा, अस्तेय, स्वच्छता तथा आत्म संयम। चूंकि मैं उपर्युक्त नियमों पर चलने का पूरा प्रयास कर रहा हूं अत: निःसंकोच स्वयं को सनातनी कह सकता हूं।"

धर्म के नाम पर भारतीय समाज की जाति व्यवस्था के अन्तर्गत विद्यमान अस्पृश्यता जैसी अमानवीय प्रथा तथा ऊँच-नीच की भावना पर तीखा प्रहार करते हुये गाँधी ने आलोचनात्मक स्वर में कहा कि ईश्वर, जो कि सबका रचयिता है, की आँखों में सब प्राणी समान हैं। यदि वह मानव-मानव में भेद करता है तो एक हाथी जैसा तथा दूसरा चींटी जैसा दिखाई देता लेकिन उसने सभी मानवों की एक सी संरचना दी है। यह अन्याय की पराकाष्ठा है कि हम समाज के सर्वाधिक उपयोगी सेवक जनों को सफाई का काम करने के कारण नीच जाति के तथा अस्पृश्य समझते हैं। धर्म के नाम पर हम हिन्दुओं ने बाह्याडम्बर खड़ा कर लिया है और धर्म को साधारण रूप से अपने खाने पीने के प्रश्न तक सीमित कर इसके मूल्य को घटाया है। उनके अनुसार परमसत्ता के समक्ष हमारा मूल्यांकन इस आधार पर नहीं होगा कि हमने क्या किसके साथ खाया तथा किसे छूआ था बल्कि इस आधार पर होगा कि हमने किसकी कितनी सेवा की?

समाज में जब कभी किसी व्यक्ति के प्रति अन्याय, असमानता या शोषण होता, तो गाँधी उसे सीधे धर्म की अवमानना कहकर विरोध करने के लिए तैयार थे। उदाहरण के लिए विधवाओं के पुनर्विवाह के समर्थन में वे कहते है - "बच्चों का विवाह करके किसी लड़की के तथाकथित पति के मरने पर उसे विधवा रहने की आज्ञा देना मानवता तथा ईश्वर के प्रति अपराध है।"

गाँधी ने धर्म को धार्मिक ग्रंथों व पहाड़ों-गुफाओं के दायरे से बाहर निकाल कर न केवल उसे व्यावहारिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया वरन् जीवन के हर क्षण और हर क्रिया का संचालक, या मार्गदर्शक तत्व बताया। समाज के विद्‌यमान सभी निकायों में नैतिकता व आध्यात्मिकता का सर्वोच्च लक्ष्य बनाकर सम्पूर्ण मानवीय गतिविधियों का आध्यात्मीकरण किया। इसी चिन्तन की प्रधानता के कारण गाँधी ने जिस समानता तथा न्याय पर आधारित समाज के पुनगर्ठन समाज का विचार रखा उसे वर्णाश्रम धर्म का नाम दिया। इस व्यवस्था में जन्म पर आधारित व्यावसायिक वर्गों को अपना काम कर्तव्य के रूप में करना था। वर्णाश्रम धर्म पर आधारित समाज में ऊँच-नीच की भावना का कोई अस्तित्व नही था तथा व्यवसायों की भिन्नता के बावजूद गाँधी ने उनकी समान प्रतिष्ठा की कल्पना की। गाँधी के अनुसार, वर्ण व्यवस्था आध्यात्मिक क्षेत्र में हिन्दु जाति की महान खोज है अत: इस व्यवस्था को पुनर्स्थापित करके ही आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। वे मानते थे कि मनुष्य आत्म-ज्ञान के लिए बनाया गया है और आत्मा के रूप में एक दिन ऊँच-नीच के झगड़े से निकलकर एकता बढ़ाने वाली वर्ण व्यवस्था को स्वत: ही अपना लेगा।

गाँधी ने ऐसे हिन्दू धर्म ग्रंथों को अस्वीकार करने का स्पष्ट रुप से आह्‌वान किया जो तर्क, समानता तथा मानवता के विरूद्ध हो। गाँधी की हिन्दू धर्म में आस्था थी, लेकिन उसके स्वरूप और धार्मिक रीति-रिवाजों, संस्थाओं को वे आँख मूँद कर अपनाने में विश्वास नहीं करते थे। गाँधी ने विवेक तथा मानवता के विरूद्ध हिन्दू धर्म की हर रीति-रिवाजों को अस्वीकार कर दिया। यद्‌यपि वे अपने आप को रूढ़िवादी हिन्दू कहना पसन्द करते थे लेकिन उन्होंने अस्पृश्यता जैसी क्रूर और विनाशक प्रथा को अस्वीकार कर दिया। उनका हिन्दु धर्म की समझ उपनिषदों और गीता की शिक्षाओं पर आधारित था। वे हिन्दु धर्म की रुढ़ियों को तर्क तथा समानता की कसौटी पर तोलकर स्वीकार करते थे। उन्होंने तर्करहित, असमानता पर आधारित धार्मिक विचारों को स्वीकार नहीं किया।

13.3 गाँधीजी का वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी विचार

जातिवाद आधार पर वर्गीकृत भारतीय समाज में जातियों तथा उपजातियों के संदर्भ में गाँधी का यह मानना था कि “ जाति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।" उन्होंने कहा कि “ जाति एक परम्परागत संस्था है जिसकी उत्पति की मुझे जानकारी नहीं है और ना ही अपनी आध्यात्मिक तृप्ति के लिए मैं इसे जानना आवश्यक मानता हूं, लेकिन मैं इतना जरूर जानता हूँ कि यह (जाति व्यवस्था) आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय उन्नति के लिए हानिकर है।" यह उल्लेखनीय है कि गाँधी ने जाति व्यवस्था के व्यावहारिक पक्ष पर ही आक्रमण किया है, सैद्धान्तिक पक्ष पर नहीं। जाति व्यवस्था की उत्पति से सम्बद्ध सिद्धान्त की अनदेखी करते हुये उन्होंने व्यक्ति के सुधार द्‌वारा जाति के व्यावहारिक पक्ष में विद्‌यमान बुराइयों के निवारण की बात की है।

गाँधी ने जाति की उपयोगिता तथा महत्व के बारे में स्पष्ट किया है। जाति के गुणों का उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया है - “ आर्थिक दृष्टि से जाति का अत्यधिक महत्व है। इसने वंशानुगत कौशल को सुरक्षित रखकर आर्थिक प्रतियोगिता को नियंत्रित किया। यह गरीबी का

सर्वश्रेष्ठ उपचार था और इससे व्यापारिक श्रेणी संघों के सारे लाभ अर्जित किये जाते थे।" इस प्रकार जहाँ तत्कालीन भारतीय समाज व धर्म सुधारकों ने जाति व्यवस्था को भारतीय समाज की अवनति का कारक मानकर समाप्त करने के लिए आन्दोलन चलाये, वहां गाँधी ने न केवल जाति व्यवस्था के औचित्य की पैरवी की अपितु इसे सम्पूर्ण विश्व समाज में लागू करने की परिकल्पना करते हुये कहा कि -"जाति व्यवस्था को भारतीय समाज की प्रयोगशाला में, ऐतिहासिक दृष्टि से एक प्रयोग या सामाजिक समायोजन कहा जा सकता है। यदि इसे हम सफल प्रयोग सिद्ध कर सकें तो यह व्यवस्था समस्त विश्व को खमीर के रूप में पेश की जा सकती है तथा धन के लोभ तथा लालच से उत्पन्न सामाजिक विघटन को रोका जा सकता है।" यही नहीं, गाँधी ने जाति के रूप में भारतीय समाज द्वार निर्मित इस संगठन को एक स्वाभाविक प्रक्रिया मानते हुए इसकी यूरोपीय संगठनों से तुलना की है और कहा कि " सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य को सामाजिक संगठन बनाने होते हैं। हमने भारत में जाति व्यवस्था का विकास किया, यूरोप में वर्गों का विकास हुआ। यदि वर्ग (यूरोपीय) कुछ सामाजिक गुणों का पोषण करते है तो जाति भी समान रूप से यही करती है।"

समय के अन्तराल के साथ जाति व्यवस्था में आये दोषों व कठोरता को गाँधी ने अस्वीकार किया। वस्तुत: गाँधी ने प्रसंगवश ही जाति व्यवस्था के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किये है। जाति के सम्बन्ध में उन्होंने किसी सिद्धान्त का निर्माण या व्याख्या नहीं की है। यही कारण है कि जाति व्यवस्था की जो विशेषता उन्हें अहितकर लगी, उस संदर्भ में उन्होंने जाति व्यवस्था की भर्त्सना की है। जैसे, जब जातिगत आधार पर व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य भेदभाव या ऊँच-नीच की भावना की बात आती है तो गाँधी जाति के प्रति आक्रामक रूप में आकर कहते हैं " वर्ण का बनावटी रूप धर कर फिरने वाले जात पात रूपी राक्षस का आप जरूर नाश कीजिए। वर्ण के इस विकृत रूप ने ही हिन्दू धर्म तथा हिन्दुस्तान को नीचे गिराया है।"

जाति व्यवस्था को वे वर्ण का विकृत व परिवर्तित रूप मानते थे। जाति व्यवस्था को आर्थिक दृष्टि से व आत्म नियंत्रण के साधन के रूप में गाँधी ने हितकर माना और स्वीकारा कि जाति के माध्यम से वंशानुगत व्यवसाय की परम्परा, आर्थिक सम्पन्नता तथा कौशल जीवित रहता है। उन्होंने यह भी कहा कि यह व्यवस्था में निहित वंशानुगत व्यवसाय की बाध्यता के कारण आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता भी स्वत: नियंत्रित रहती है। लेकिन साथ ही जाति व्यवस्था के पाखण्ड पर करारा व्यंग्य करते हुए उन्होंने स्वीकर किया है कि " जाति इस बात की चौकीदारी तो अवश्य करती है कि मैं कहीं खाता हूँ अपने बच्चों को कहीं ब्याहता हूँ लेकिन मेरे चाल चलन पर निगाह रखना जाति का काम नहीं। मैं विलायत हो आऊँ तो कन्याकुमारी के मंदिर के भीतरी हिस्से में प्रवेश नहीं कर सकता लेकिन मैं खुले तौर पर व्याभिचार करता हूँ तो भी उस भीतरी हिस्से में जाने से मुझे कोई नहीं रोक सकता।"

वर्ण पर आधारित समाज व्यवस्था में गाँधी की इतनी आस्था और विश्वास थी कि वे समाज में विद्यमान सभी बुराईयों का उपचार तो इसे मानते ही थे, साथ ही इसे वे स्वाभाविक तथा प्राकृतिक मानते थे। उनके अनुसार इसे व्यक्ति अपनी प्रकृति के बिलकुल अनुकूल पाता है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में -" यह नियम मनुष्य द्वारा निर्मित नहीं अपितु कुदरत का अटल

कानून है। जिस प्रकार न्यूटन द्वारा गुरूत्वाकर्षण के सिद्वान्त की खोज से पहले भी गुरूत्वाकार्षण की शक्ति विद्यमान थी उसी प्रकार वर्ण धर्म भी है। इस प्राकृतिक कानून को ढूँढ निकालना हिन्दुओं के भाग्य में था। पश्चिम ने कुदरत के कुछ कानूनों को खोजकर आर्थिक सम्पति खूब बढ़ा ली है, उसी तरह हिन्दुओं ने इस अचूक सामाजिक शक्ति की खोज करके आध्यात्मिक क्षेत्र में जो कमाल हासिल किया है वह दुनिया की किसी दुसरी जाति को नहीं मिला है।" इस प्रकार गांधी के अनुसार, वर्ण व्यवस्था हिन्दूओं की आध्यात्मिक क्षेत्र में एक ऐसी खोज है जो संसार की अनुपम उपलब्धियों में से है।

गाँधी ने व्यक्ति के वर्ण निर्धारण का आधार उसकी योग्यता को नहीं, जन्म को माना है अर्थात् जन्म पर आधारित व्यवसाय का निर्धारण। गाँधी का कहना था कि -"मैं वर्णाश्रम को जन्म पर आधारित एक स्वस्थ कर्म विभाजन मानता हूं। विद्यमान जाति व्यवस्था मौलिक वर्ण व्यवस्था का विकृत रूप है। मैं ऊँच-नीच में विश्वास नहीं करता। वर्ण पालन निश्चित रूप से कर्तव्य पालन का प्रश्न है। मैंने निश्चित रूप से कहा है कि वर्ण जन्म पर आधारित है। लेकिन मैंने यह भी कहा है कि शुद्र के लिए वैश्य ही कहा जाय। जो व्यक्ति ब्राह्मण के कर्तव्य का निर्वाह करता है, आसानी से वह अगले जन्म में ब्राह्मण ही बनेगा।" ऐसा लगता है कि गाँधी जन्म-आधारित वर्ण व्यवस्था को इसी जन्म का नहीं बल्कि आगे के सभी जन्मों के लिए निश्चित करना चाहते हैं। उनका यह मानना था कि जन्म पर आधारित वर्ग निर्धारण इसलिए अनिवार्य है कि व्यक्ति अपनी अजीविका के रूप में अपने पूर्वजों का ही व्यवसाय अपनाये। व्यक्ति जब तक अपने पिता का धंधा करके गुजारा चलाता है जब तक उसके वर्ण में कोई फर्क नहीं पड़ता। सेवाभाव से तो वह चाहे जो धंधा करने के लिए स्वतंत्र है लेकिन जो व्यक्ति धन कमाने के लिए बार बार धंधा बदलता है, वह अधोगति पाता है तथा वर्णधर्म से गिर जाता है। केवल एक ही अवस्था में वे वर्ण आधारित वंशानुगत व्यवसाय को अपनाने की बाध्यता को गाँधी समाप्त करने के लिए तैयार हैं और वह अवस्था है सम्बद्ध व्यवसाय का मौलिक नीति शास्त्र के प्रतिकूल होना। तत्कालीन समाज में समाज के एक वर्ग विशेष के साथ अस्पृश्य मानकर उसे समस्त मानवीय अधिकारो से वंचित रखे जाने पर गाँधी ने इसका प्रचण्डता से विरोध तो किया ही, वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत इस वर्ग की समस्या के समाधान के विषय में गाँधी का मानना था कि जिन्हे अस्पृश्य मानकर एक अलग वर्ग के रूप में देखा जा रहा है, वह हिन्दु धर्म के माथे पर लगा हुआ कलंक है, यदि हिन्दू धर्म इस बड़े सांप को समय रहते नहीं मारेगा तो यह उसे खा जायेगा। गाँधीजी द्वारा इस बात पर बल किया गया कि ऐसे लोगों को हिन्दू धर्म के बाहर नहीं समझना चाहिए, अपितु उनकी सेवा करनी चाहिये जिसका रूप उनके सर्वांगीण विकास के भरसक प्रयास के रूप में परलिक्षित हो।

गाँधी द्वारा प्रदत्त वर्ण व्यवस्था की मुख्य बात यह है कि जन्म तथा व्यवसाय के आधार पर वर्ण विभाजन के बावजूद समाज के सभी लोगों के मध्य पूर्ण समानता होगी। वर्ण के चारों विभाजन ऊपर से नीचे न होकर समानन्तर या समपृष्ठ पर आधारित होंगे, जिसमें सभी वर्ण के व्यक्ति समान धरातल पर खड़े होकर प्रदत्त सेवाऐं करेंगे। गाँधी वर्गविहिन समाज की कल्पना नहीं करते थे। वे तत्कालीन विभिन्न जातियों और उपजातियों का रूपान्तर वर्ण व्यवस्था के अनुसार करने के समर्थक थे। उनके अनुसार -"मैं इसमें विश्वास नहीं करता कि

सम्पूर्ण वर्ग विभाजन समाप्त हो सकता है। जातियों की रक्षा का अच्छे से अच्छा उपाय तो यह है कि छोटी-छोटी जातियों की पंचायतें एकत्रित होकर एक जाति बन जाय और यह बड़ा संघ दूसरे संघों के साथ मिल जाय। इस प्रकार से पुनर्गठित समाज की वर्ण व्यवस्था के अनुसार न कोई व्यवसाय ऊंचा है, न कोई नीचा। सभी व्यवसाय, उत्तम, वैधानिक तथा स्थिति में पूर्णतया समान है। एक आध्यात्मिक शिक्षण-ब्राह्मण तथा मेहतर, दोनों ईश्वर के समक्ष समान है, दोनों को अलग-अलग नाम आजीविका के आधार पर दिये गये है। किसी भी वर्ण का किसी दूसरे वर्ण पर श्रेष्ठता का मिथ्याभिमान विधि द्वारा अस्वीकार्य है। वर्ण विधान में ऐसी कोई बात नहीं है जिसके आधार पर अस्पृश्यता को उचित सिद्ध किया जा सके।"

गाँधी की वर्ण व्यवस्था में केवल समाजिक स्थिति के रूप में ही नहीं अपितु आर्थिक स्तर पर भी समानता होगी। इस प्रकार गाँधीजी ने जन्म पर आधारित व्यवसायों की अनिवार्यता के बावजूद सभी लोगों के लिए सभी क्षेत्रों में समानता की कल्पना की है। आधुनिक युग में आर्थिक प्रतिद्वन्दिता के कारण व्यक्ति ने अपना लक्ष्य भौतिक प्रगति बना लिया है अत: गाँधी ने वर्ण व्यवस्था के माध्यम से आर्थिक व भौतिकता की दौड़ पर नियंत्रण का विचार रखा है।

गाँधी द्वारा प्रस्तुत वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत सभी व्यक्ति अपना-अपना पैतृक धंधा करके किसी भी धंधे को ऊँचा-नीचा माने बिना अपना जीवन यापन करेंगे। ऐसी स्थिति में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नाम से पहचाने जाकर, व्यक्ति दूसरे नाम से भी जाना जाय तो कोई चिन्ता की बात नही। वर्ण की संख्या ऐसी स्थिति में अमहत्वपूर्ण बताते हुए गाँधी ने कहा कि वर्ण के महान् कानून पर चल कर हम पूंजीवाद तथा मजदूरवाद आदि झगड़े से बच सकते हैं। ऐसी व्यवस्था में न तो एक ओर अत्यधिक दौलत, लालच तथा घमण्ड होगा और ना ही दूसरी तरफ अत्यधिक गरीबी, लाचारी तथा दीनता होगी। गाँधी ने व्यवसाय पालने में भौतिकवादी प्रवृत्ति को प्राथमिकता न देकर इसमें कर्तव्य बोध को प्रमुख माना है। उनके अनुसार -"वर्ण व्यवस्था हमारे अधिकारों को नहीं, कर्तव्यों को परिभाषित करती है। हमारी आर्थिक तथा आध्यात्मिक गिरावट का बड़ा कारण यहाँ है कि हम वर्ण धर्म का अमल करने में चूक गये। बेकारी तथा गरीबी का कारण भी यही है।"

वर्ण व्यवस्था द्वारा आर्थिक प्रतियोगिता के नियंत्रण का आधार यह है कि यदि व्यक्ति के लिए अपने ही पैतृक धंधे को अपनाना अनिवार्य होगा तो लोभ व लालच के वशीभूत होकर वह अन्य धंधों के पीछे-पीछे भागेगा नहीं अपितु अपने पैतृक धन्धे से आजीविका पाकर संतुष्ट रहेगा और इस प्रकार समाज में सन्तोष रहेगा। समाज सत्य-अहिंसा की ओर प्रवृत होकर शान्तिमय जीवन यापन करेगा। वर्णाश्रम धर्म इस पृथ्वी पर व्यक्ति के उद्देश्य को परिभाषित करता है। वह धन संग्रह हेतु नये-नये साधनों द्वारा आजीविका के लिए नये-नये रास्तों के अन्वेषण के लिए नहीं जन्मा है, इसके विपरीत, अपनी ऊर्जा के हर कण का उपयोग अपने निर्माता (ईश्वर) को जानने के उद्देश्य में लगाने के लिए जन्मा है। गाँधी ने यह भी कहा कि यदि एक व्यक्ति अपने पिता का धन्धा अपनाता हैं तो उसे सीखने के लिए विद्यालय भी नहीं जाना पड़ेगा। यानि आध्यात्मिक अभ्यास और खोज के लिए व्यक्ति की मानसिक शक्ति खुली रहेगी क्योंकि उसे गुजारे की चिन्ता ही नहीं रहेगी। गाँधीजी ने कहा कि सुख सुविधा तथा

आध्यात्मिक विकास के लिए वर्ण सबसे अच्छा बीमा है। अपने पैतृक धन्धे को अपनाने से धनसंग्रह की लालसा पर प्रतिबन्ध लगता है और शरीर को आत्मा के साथ एकीकार करने का अवसर मिलता है यही वर्णाश्रम धर्म है, इससे कम या अधिक कुछ नहीं।

13.4 गाँधी एवं अस्पृश्यता

भारत में विद्यमान जाति व्यवस्था की सबसे बड़ी दुर्बलता अस्पृश्यता का प्रचलन है। गाँधी ने न केवल तर्कों व शास्त्रों के आधार पर अस्पृश्यकता का विरोध किया बल्कि इसकी समाप्ति के लिए एक सक्रिय आन्दोलन भी चलाया। महात्मा गाँधी वर्ण-व्यवस्था में कालान्तर में आए विकृतियों जैसे अस्पृश्यता को सामाजिक कलंक तथा न्याय की स्थापना में बाधक मानते थे। गाँधीजी के अनुसार अस्पृश्यता भारतीय समाज के लिए एक कलंक रहा है। उन्होंने इसे अनैतिक मानकर पाप की संज्ञा दी और कहा कि यह मानवता के विरूद्ध क्रूरतम अपराध है।

गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि अस्पृश्यता को केवल बाहरी आचरण में समाप्त कर देना पर्याप्त नहीं है, अपितु उसे तो हृदय से ही निकालना होगा। उनके मत में अस्पृष्यता निवारण तभी वास्तविक माना जा सकेगा जबकि व्यक्तियों के मन से ऊँच-नीच के सभी भेद और जन्म के आधार पर किसी को श्रेष्ठ और किसी को हीन समझने का भाव जड़ से निकल जाये। अस्पृष्यता निवारण का कार्य केवल कानून निर्माण या सरकारी प्रयासों से पूरा नहीं होगा। इसके लिये व्यापक सामाजिक जाग्रति और लोगों के हृदय परिवर्तन की आवश्यकता होगी।

लेकिन पुनश्च: अस्पृश्यता के निवारण हेतु जाति व्यवस्था को समाप्त करने के स्थान पर उन्होंने इसके शुद्धिकरण की दलील दी और कहा- " जिस क्षण अस्पृश्यता समाप्त होगी, जाति व्यवस्था स्वत: शुद्ध हो जायेगी। इस प्रकार मेरे सपनों के मुताबिक जाति व्यवस्था वास्तविक रूप में, वर्णाश्रम धर्म में समाहित हो जायेगी, जिसमें समाज के चार भाग होंगे, प्रत्येक दूसरे का पूरक, न कोई छोटा न कोई बड़ा। " गाँधी ने समानता पर आधारित समाजवादी समाज की स्थापना का आधार वैदिक युग में प्रचलित वर्ण व्यवस्था को माना है। समाज में विद्यमान जातिगत आधार पर किये जाने वाले भेदभाव तथा अस्पृश्यता की समाप्ति के लिए समाज को चार भागों में बाँटने वाले वर्णाश्रम धर्म की पुनर्स्थापना ही सामाजिक न्याय दिला सकती थी। गाँधी का मानना था कि वर्णव्यवस्था स्वाभाविक या प्राकृतिक है। वर्ण व्यवस्था को हिन्दुओं पर किसी ने ऊपर से नहीं थोपा है बल्कि जिन बुजुर्गों पर हिन्दु जाति का भला करने की जिम्मेदारी थी, उन्होंने इस व्यवस्था की खोज की थी।

13.5 सारांश

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि गाँधीजी द्वारा वर्ण व्यवस्था का चरम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति मानकर वर्ण व्यवस्था के सम्पूर्ण ढांचे को इस प्रकार नियंत्रित तथा संतुलित किया है कि व्यक्ति हर संभव तरीके से आध्यात्मक चिन्तन के लिए समर्पित हो सके। उन्होंने मानव जीवन का लक्ष्य आत्मज्ञान के रूप में स्वीकारा है और आत्मा के स्तर पर सभी मानव को समान माना है। उनका दृढ़ विश्वास था कि मानव किसी न किसी दिन ऊँच-नीच के झगड़े से निकल कर एकता स्थापित करने वाली वर्ण-व्यवस्था को स्वत: ही अपना लेगा। गाँधी ने जाति और

वर्ण में अन्तर का आधार भी धर्म को ही माना है। उनके अनुसार जाति व्यवस्था सामाजिक आवश्यकता का परिणाम है जबकि वर्णाश्रम हिन्दु धर्म ग्रंथों पर आधारित है। उनके मतानुसार वर्णाश्रम धर्म को स्वीकार करना आध्यात्मिक उन्नति का अवस्था है। उन्होंने स्वीकारा कि भारत की आध्यात्मिक अवनति का कारण भी यही है क्योंकि भारतीय वर्णधर्म का पालन करने में चूक गये। बहु त सारे हिन्दुओं तथा अस्पृश्य माने जाने वालों के धर्म परिवर्तन के लिए भी गाँधी ने इसे ही जिम्मेदार माना है।

इस प्रकार गाँधी ने विद्यमान समाज की जाति सम्बन्धी बुराईयों, असमानता तथा अन्याय को समाप्त करने के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था की पुरानी व्यवस्था को पुनःस्थापित करने का विचार दिया। उनके द्वारा समर्थित वर्णाश्रम व्यवस्था को समग्र रूप में उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है “मेरी व्याख्या के वर्णधर्म को मैं सब जगह फैला हु आ मानता हूँ। उसके अमल पर मानव समाज के अस्तित्व का दारोमदार है। अगर मेरे विचार में सार होगा तो वर्णधर्म फैल कर रहेगा। फिर भले ही वह किसी भी नाम से पहचाना जाये। वर्णधर्म का यही अर्थ है कि हर व्यक्ति अपने बाप दादे के धन्धे से संतुष्ट रहे। इस योजना की जड़ में अहिंसा है, ईश्वर के कानून की जानकारी है, शुद्ध अर्थशास्त्र है, मानवता है। यदि इस वर्ग धर्म पर अमल न हु आ तो अपूर्व गृहयुद्ध होगा। जैसे-जैसे करोड़ों में जागृति आयेगी, सब धनवान बनना चाहेंगे। नीचे माने जाने वाले धन्धे कोई नही करना चाहेगा और ऊँच-नीच की भावना ज्यादा फैलगी। मेरे ख्याल में इसका परिणाम मारकाट के सिवा कुछ नहीं होगा।" एक विकल्प के रूप में उन्होंने सर्वोदय समाज की स्थापना पर जोर दिया। गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत आदर्श सामाजिक व्यवस्था को एक ऐसी सामुदायिक जीवन आधारित व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है जिसमें सत्य, अहिंसा, परोपकार, आत्मनिर्भरता, परस्पर सम्मान की भावना, जैसे मूल्य व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन का अभिन्न अंग है। यह व्यवस्था न्याय, समता, स्वतन्त्रता और परस्पर सहयोग पर आधारित है। यह शोषणमुक्त समाज है जिसमें धार्मिक सहिष्णुता और सौहार्द सर्वत्र विद्यमान है। वर्ण तथा जाति व्यवस्था के प्रति गाँधी का दृष्टिकोण सकारात्मक और सुधारात्मक है। एक तो वे इनके समाज को एक सूत्र में बाँधे रखने और कर्तव्य बोध बनाये रखने के गुणों को स्वीकार करके इन व्यवस्थाओं को बनाये रखने का समर्थन करते हैं, वहीं दूसरी तरफ वे इनमें विद्यमान दोषों को दूर करने की अविलम्ब आवश्यकता पर बल देकर जाति व्यवस्था के प्रति संशोधनात्मक रूख भी अपनाते नजर आते हैं।

13.6 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय जाति व्यवस्था के सम्बन्ध में गाँधी के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
2. वर्णाश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में गाँधी के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
3. अस्पृश्यता के सम्बन्ध में गाँधी के विचारों और उसके उन्मूलन के लिए उनके प्रयासों की चर्चा कीजिये।
4. दलित वर्गों के उत्थान के लिए गाँधी द्वारा किए गए योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

13.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1971
2. दास, रतन, द ग्लोबल विशन ऑफ महात्मा गाँधी, सरूप एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2005
3. सिंह, रामजी, गाँधी और भावी विश्व व्यवस्था, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000
4. ऑस्टरगार्ड, जेफरी, नॉनवायलेन्ट रेवल्यूशन इन इण्डिया, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 1985
5. शंकधीर, एम.एम., अण्डरस्टेंडिन्ग गाँधी टुडे, दीप एण्ड दीप पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1962
6. वर्मा, वी.पी., फिलोसॉफिकल एण्ड सोशोलॉजिकल फाउण्डेशन्स ऑफ गाँधीज्म्, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1981
7. वर्मा, वी.पी., द पॉलिटिकल फिलॉसॉफी ऑफ गाँधी एण्ड सर्वोदय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1986
8. द्वारका प्रसाद गुप्ता, महात्मा गाँधी और अस्पृश्यता, ज्ञान भारती, दिल्ली, 2008
9. श्यौराज सिंह, अम्बेडकर गाँधी और दलित पत्रकारिता, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008
10. बारेन रे (सम्पाकित), गाँधीस केम्पैन अगेंस्ट अनटचाबिलिटि 1933-1934, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 1996
11. थोमस वेट्टिकल, गाँधीयन सर्वोदय : रीयालाइसिंग ए रियलिस्टिक युटोपिया, नेशनल गाँधी म्यूसियम एवं ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2002
12. एम.के. गाँधी, सर्वोदय, भारतरत्न कुमारप्पा (सम्पा.), नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1984

इकाई - 14

आधुनिक सभ्यता पर गाँधी के विचार

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 आधुनिक सभ्यता : अर्थ और लक्षण

14.3 मानव अस्तित्व सम्बन्धी गाँधीजी के विचार

14.4 विकास का पूँजीवादी मॉडल

14.5 आधुनिक सभ्यता की गाँधीजी द्वारा आलोचना

14.6 गाँधीजी के अनुसार सभ्यता का सही अर्थ

14.7 गाँधीजी का आदर्श समाज - सर्वोदय

14.8 सारांश

14.9 अभ्यास प्रश्न

14.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप निम्नलिखित विषयों पर विचार जान सकेंगे :-

- आधुनिक सभ्यता और पूँजीवादी विकास का निहितार्थ।
- गाँधीजी के अनुसार मानव जीवन का निहितार्थ।
- गाँधीजी के अनुसार आधुनिक सभ्यता में निहित कमियाँ।
- गाँधीजी के अनुसार सभ्यता का सही अर्थ।
- गाँधीजी की आदर्श व्यवस्था की विशेषताऐं।

14.1 प्रस्तावना

दक्षिण अफ्रीका और भारत में, अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता के कुछ क्रूर पक्ष का कटु अनुभव प्राप्त किया। इन्ही अनुभवों तथा आत्म-मंथन ने आधुनिक, विकसित और श्रेष्ठ होने का डिंडोरा पीटने वाले पश्चिमी जगत के प्रति गाँधीजी का मोह भंग किया और वे इसके कटु आलोचक बने। उनके अनुसार आधुनिक सभ्यता में भातिकवाद, नास्तिक विचार और स्वार्थ:परक अवगुणों की प्राधान्यता है और सदगुण जैसे सत्य, अहिंसा, परोपकार, सादगी, इत्यादि का अभाव है। इसने व्यक्ति के धार्मिक और नैतिक होने के मूल्यों को धर्मनिर्पेक्षता और वैज्ञानिकता के आधार पर अप्रासंगिक बताया। मशीनीकरण का अंधाधुन्ध अनुकरण करने, सैन्यवादी सोच रखने और शक्ति के नशे में चूर इन तथाकथित आधुनिक देशों ने ऐशिया और अफ्रिका माहाद्वीप में स्थित अनेक देशों का जमकर शोषण किया। गाँधीजी ने कहा कि शैतान का रूप धारण किए हुए ऐसे आधुनिक सभ्यता की झंझीरों में

जकडे ब्रिटेन जैसे उपनिवेशवादी शासनों का विश्व के प्रत्येक कौने से समाप्ति तत्काल होना चाहिए। इसी संदर्भ में उन्होंने स्वराज की अवधारणा प्रस्तुत की और इसकी प्राप्ति के लिए सत्याग्रह का दर्शन और तकनीक विश्व को दिया। अपने समकालीन समाज की बुराइयों को दूर करने तथा आधुनिक सभ्यता की ओर अंधी दौड़ लगाने वाले भारत जैसे देशों के लिए उनकी सोच थीं कि जब तक ये राष्ट्र सभ्यता का सही अर्थ नही जानेंगे और अपनायेंगे तथा नैतिकता की अनुपालना नही करेंगे तब तक इनका भविष्य अंधकारमय रहेगा। अपने विचारों, कार्यों और लेखन के द्वारा उन्होंने अपनी बात जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया।

14.2 आधुनिक सभ्यता : अर्थ और लक्षण

इतिहासकार आधुनिक युग का प्रारम्भ लगभग 1500 ई से मानते हैं। यह युग तर्कवाद पर आधारित वैज्ञानिक अविष्कारों और अनेक खोज का युग था। वैज्ञानिक अविष्कारों के आधार पर बडे-बडे उद्योग स्थापित हुए। सामन्तवादी व्यवस्था समाप्त हुई और पूँजी का महत्व बडा। चर्च और ईसायित का व्यक्ति के सार्वजनिक जीवन और राज्य पर नियन्त्रण समाप्त हुआ। पश्चिमी विश्व में क्रमश: राष्ट्र-राज्यों की उत्पत्ति हुई। शक्तिशाली राजाओं का केंद्रीयकृत शासन स्थापित हुआ। अविष्कारों और खोजों से प्रेरित होकर, तथा अक्सर राज्य समर्थन प्राप्त कर, साहसी व्यक्तियों ने विश्व की खोज और विश्व-व्यापार बढाने का भरसक प्रयास किया। क्रमश: इन देशों ने साम्राज्यादी नीति अपनाते हुए विश्व-भर में अपने उपनिवेशों के माध्यम से विशाल साम्राज्य स्थापित किए। वैज्ञानिकवाद और तर्कवाद ने व्यक्ति की सोच और जीवन शैली को बदल डाला। धर्म और नैतिक मूल्य अब उसके लिए पहले जितने महत्वपूर्ण नही रहे। व्यक्तिवाद की कसौटी पर प्रत्येक सोच और कार्य की औचित्यता निधारित होने लगी। उपर्युक्त सभी सोच और समृद्धि ने विलासी को व्यक्ति की शान और दुनिया बदल डाला। आधुनिक युग ने जिस राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था, सोच और संस्कृति को जन्म दिया है उसे ही आधुनिक सभ्यता के नाम से जाना जाता है। इसके प्रमुख लक्षण निम्नानुसार है :-

14.2.1 तर्कवाद और विज्ञानवाद को प्राथमिकता

पश्चिमी दुनिया ने पुनर्जागरण के प्रारम्भ होने तथा उसके बाद से विवेक और तर्क को अत्यधिक महत्व प्रदान किया। पुनर्जागरण को तर्क का युग कहा जाता है क्योंकि मनुष्य और उसके द्वारा स्थापित संस्थाओं की गतिविधियों का औचित्य निर्धारण विवेक और तर्क के आधार पर किया जाने लगा। पुरातन मान्यताओं पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया और विवेक, तर्क और मानव कल्याण के अनुरूप न होने पर निरर्थक मानकर अस्वीकार कर दिए गए। विज्ञान के विकास के साथ तथ्यों अथवा प्रमाणों को प्राथमिकता दी जाने लगा। ऐसा माना जाता है कि उपर्युक्त तर्कवादी और विज्ञानवादी प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप पुनर्जागरण से प्रारम्भ बौद्धिक परिवर्तनों ने मध्य युग को विराम लगाकर आधुनिक युग की शुरूआत का बिगुल बजाया। पुनर्जागरण और विज्ञान ने अनेक खोज और आविष्कारों को जन्म दिया। जीवन-व्यापन के लिए न केवल सुख-सुविधा के अनेक विकल्प मनुष्य को उपलब्ध होने लगे बल्कि सम्पन्नता भी बढने लगी।

14.2.2 आधुनिकता

पुनर्जागरण के दौरान विज्ञान के विकास के साथ तथ्यों अथवा प्रमाणों को दिए जाने वाले प्राथमिकता के कारण आनुभविकता को ज्ञान का आधार माना जाने लगा। ऐसा माना जाने लगा कि विज्ञान के द्वारा समस्त ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। विज्ञान से प्रमाणित ज्ञान को आधुनिक कहा गया। उसे मनुष्य के लिए उपयोगी माना गया। इस आधुनिकता की सोच ने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं में आमूल-चूल परिवर्तन किये। भौतिकवादी सोच, व्यक्तिवादी चिन्तन और व्यवहार, पूँजीवादी प्रवृत्तियाँ इत्यादि आधुनिकता के प्रतीक चिह्न बन गये।

14.2.3 यथार्थवादी-धर्मनिरपेक्ष सोच

पुनर्जागरण द्वारा विवेक और तर्क पर अत्यधिक बल के कारण धर्मनिरपेक्ष सोच यथार्थवाद भी मानव आचरण के महत्वपूर्ण निर्धारक बने। इहलौकिक विषय और व्यक्ति के सुख को महत्वपूर्ण माना गया और चर्च और पादरियों तथा धार्मिक ग्रन्थों का प्रभाव परिणामस्वरूप क्षीण होने लगा। राजनीतिक स्तर पर नागरिकों के लिए राजा चर्च के पादरी से ज्यादा महत्वपूर्ण बन गया। शक्तिशाली राजा ने चर्च पादरियों को अपने अधीन कर स्वयं और राज्य की तात्कालिक आवश्यकताओं को शासन का आधार बनाया। संस्थागत धर्म और धर्म-ग्रन्थ व्यक्तिगत जीवन के विषय माना जाने लग।

14.2.4 राष्ट्र-राज्य के प्रति निष्ठा

धर्मनिपेरक्ष और यथार्थवादी सोच से आए राजनीतिक परिवर्तनों ने राष्ट्र-राज्यों को जन्म दिया। नागरिकों की सार्वजनिक निष्ठा चर्च और पादरी से हटकर राज्य और राजा के प्रति समर्पित हुई शक्तिशाली राजा और राज्य के अधीन वे अपनी सुरक्षा और कल्याण की कामना करने लगे। ऐसे राजा और राज्य की शक्ति बढाने के लिए वे लडने और मरने के लिए तैयार हुए। राजा के सैन्य-बल के आधार पर यूरोप में क्रमश: बड़े-बड़े शक्तिशाली राज्य स्थपित हुए।

14.2.5 पूँजीवादी प्रवृत्तियाँ

विज्ञान और प्रोद्यौगिक विकास ने आर्थिक स्तर पर अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। यद्यपि सम्पन्नता बहुत बढने लगी यह कुछ ही लोगों तक सीमित रही। कृषि और भूमि का महत्व घटा उद्योग और पूँजी का महत्व बढने लगा। धन एवं सम्पत्ति को व्यापार और उद्योंगों मे निवेश कर व्यक्ति अपनी संपन्नता को और बढाने का प्रयास करने लगा। सम्पन्नता ने समाज में भौतिकवादी प्रवृत्तियों को बढावा दिया। इसी सम्पन्नता के आधर पर व्यक्ति समाज में अपना प्रभाव और शक्ति को भी बढाने का प्रयास करने लगा।

14.2.6 ओद्योगिक विकास

विज्ञान और प्रोद्यौगिकी द्वारा किए गए महत्वपूर्ण आर्थिक परिवर्तनों में ओद्योगिक विकास भी एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था। प्रिंटिंग-प्रेस, सिलाई मशीन, भाप-चलित मशीन एवं अन्य ऐसे अविष्कारों ने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। धीरे-धीरे पूरे यूरोप में बडे-बडे

उद्योग स्थापित हुए और उत्पादन बहुतायत मात्रा में होने लगी। क्रमश: दुनिया भर से उत्पादन के लिए कच्चा माल लाया जाने लगा और उत्पादित माल विश्व के कोने-कोने तक बेचने के लिए व्यवस्था की गई। इसके लिये रेल और सडक मार्गो का तीव्र विकास किया गया और बाजार ढूँढा गया। औद्योगिक विकास ने पूर्व में प्रचलित भू-स्वामी अथवा जमीन्दार और कृषक कहलाने वाले वर्ग को समाप्त किया और अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले दो नए वर्ग - पूंजीपति और श्रमिक - को जन्म दिया।

14.2.7 उपनिवेशवाद

औद्यौगिक क्रान्ति धीरे-धीरे पूरे यूरोप में फैलने लगी। उत्पादन बहुतायत मात्रा में होने लगी। इस प्रकार के उत्पादन ने राज्यों को अपनी सीमा के पार विद्यमान प्राकृतिक सम्पदा और बाजार पर अपना सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। वैज्ञानिक अविष्कार और भौगोलिक खोज ने ऐसे सम्पर्क सम्भव बनाया। एशिया, अमेरिका और अफ्रिका में अनेक व्यापारियों का आवगमन प्रारम्भ हुआ। राज्य संरक्षण होने से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और बडा जिससे न केवल व्यापारियों को, अपितु राज्य को भी आर्थिक दृष्टि से अनेक फायदा हुआ। इससे प्राप्त समृद्धि ने राज्यों की लालसा बढाने का काम किया और वे आर्थिक प्रतिस्पर्धा करने लगे। तीव्र आर्थिक प्रतिस्पर्धा ने इन राज्यों द्वारा एशिया, अमेरिका और अफ्रिका के राजनीतिक व्यवस्थाओं पर नियन्त्रण स्थापित करने की इच्छा को प्रबल बनाया। इस तरह यूरोपीय राज्यों ने एशिया, अमेरिका और अफ्रीका में अपने उपनिवेश स्थापित किए। उपनिवेश राज्य अपने शासक राज्य की सभी आर्थिक इच्छाओं की पूर्ति करने लगा। उपभोगतावादी स्वार्थ पूर्ति के लिए नीति को परित्याग करने वाली और संवेदन-विहीन संस्कृति ने कालान्तर में शोषणात्मक व्यवस्था को स्थापित किया। राज्यों की यह होड़ दो विश्व युद्ध में परिणीत हुई।

14.2.8 नगरीय संस्कृति

आधुनिक सभ्यता की एक महत्वपूर्ण विशेषता नगरीय संस्कृति का प्रचलन भी है। औद्यौगिक क्रान्ति ने कृषि के परम्परागत महत्व को कम कर दिया और उद्योगों को आजीविका का महत्वपूर्ण साधन बना दिया। उद्योगों ने शहरों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। परम्परागत रूप से व्यापन किए जाने वाली कृषि- प्रधान सीधी-साधी जिन्दगी में काफी परिवर्तन आया। लोग धीरे-धीरे उन जगहों पर बसने लगे जहाँ कारखाने स्थापित किए गए थे। इन जगहों पर भीड़भाड़ होने लगी। विवशता अथवा उदासीनता के कारण इन जगहों की स्वच्छता प्रभावित होंने लगी। कारखानों से निकलता धुआँ भी वातावरण को दूषित करने लगा। कारखानों में मजदूरी कर रहे श्रमिक भी ऐसे काम की बाध्यता के अनुरूप अपना जीवन व्यापन करने लगे। कारखानों में प्रति दिन विपरीत स्वास्थ्य व्यवस्था में लम्बे समय तक काम करना पर फिर भी कम मजदूरी प्राप्त करना, अनेक आर्थिक और सामाजिक संघर्षों में लिप्त होना, अनेक बुराइयों से ग्रसित होना, इत्यादि श्रमिकों के जीवन की पहचान बन गई। दूसरी तरफ पूंजीपति लोग जिन्होंने बडे-बडे कारखानों को स्थापित किया था, वे अपार सम्पत्ति के मालिक बन गये और मोटर-गाडी, आलीशान बंगले और विलासिता के अन्य साधनों का सुख भोगने लगे। समाज

में बढ़ती हुई सम्पन्नता परन्तु इस सम्पन्नता पर कुछ ही लोगों का एकाधिकार, उपभोगतावादी प्रवृत्ति, अनेक बुराइयाँ का व्याप्त होना, आर्थिक और सामाजिक संघर्षों के कारण सामाजिक समरसता का अभाव, इत्यादि इस नवीन सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था और जीवन की विशेषता बन गई। इस व्यवस्था को लोग शहर ओर इसके जीवन जीने की शैली को शहरी अथवा नगरीय संस्कृति कहने लगे।

14.3 मानव अस्तित्व सम्बन्धी गाँधीजी के विचार

गाँधी दर्शन एवं गाँधीजी के कार्यों का एक महत्वपूर्ण घटक है मानव अस्तित्व एवं उसकी प्रकृति की गहरी समझ। अपने कई पूर्ववर्तियों के समान गाँधी का विश्वास था कि व्यक्ति का सम्पूर्ण 'स्व ' 'बाह्य स्व ' और 'आन्तरिक स्व ' से मिलकर बना है। उनके मतानुसार मनुष्य को विरासत में दो मूल प्रवृत्तियाँ प्राप्त हैं - जीव वैज्ञानिक और सामाजिक आध्यात्मिक। दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य जानवरों का विकसित स्वरूप होने के साथ-साथ उसमें सामाजिकता का पक्ष और दैवीय गुण विद्यमान है। चूंकि गाँधीजी का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था अत: उनका मानना था कि मानव अस्तित्व के जैविक और सामाजिक पक्ष को नैतिक सिद्धान्तों के अधीन होना चाहिये। यद्यपि गाँधी जी वैज्ञानिकों के इस तर्क से सहमत थे कि मनुष्य जानवर का ही विकसित स्वरूप है, वे इस बात से सहमत नहीं थे कि मनुष्य मात्र विकसित जानवर है क्योंकि यह स्वरूप मनुष्य के आत्मिक गुणों एवं दैवीय स्वरूप को प्रकट नहीं करता। गाँधीजी का विचार था कि मनुष्य जानवरों से भिन्न है क्योंकि उसके पास आत्मिक शक्ति है जो उसे सही मार्ग एवं सामाजिक जीवन की ओर ले जाती है। गाँधीजी मानते थे कि यही आत्मिक शक्ति वह परम दैवीय शक्ति है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में स्थित है एवं जो सभी वस्तुओं और जीवों के अस्तित्व का कारण है। इस प्रकार गाँधी जी के अनुसार मनुष्य का दैवीय स्वरूप उसे विशिष्टता प्रदान करता है। गाँधीजी के अनुसार " खाने, सोने और अन्य शारीरिक क्रियाओं में मनुष्य पशु से भिन्न नहीं है नैतिक स्तरों पर पशुओं से ऊपर स्थान प्राप्त करने का अथक् संघर्ष ही मनुष्य को पशुओं से भिन्नता प्रदान करता है।"

ईश्वर के प्रति गाँधीजी की आस्था ने मानव जीवन के प्रति उनके विचारों को प्रभावित किया। दैवीयता और आत्मा की श्रेष्ठता पर विश्वास के कारण ही मनुष्य और मानव जीवन के बारे में उनके विचारों को आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त हुआ। चूंकि गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य का देवत्व ही उसे अन्य प्राणियों से अलग करता है अत: वे इस बात पर हमेशा बल देते थे मनुष्य अपने देवत्व को समझने का प्रयास करें। गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य में दैवीयता उसकी आत्मा के रूप में निवास करती है। वे इस बात पर जोर देते थे कि मनुष्य अपने आत्मिक स्वरूप को पहचाने एवं उसी के अनुसार अपने कार्यों एवं विचारों का निर्धारण करें।

इस प्रकार गाँधीजी का मानना था कि मानव जीवन का लक्ष्य नैतिक गुण जैसे सत्य, अहिंसा, परोपकार, त्याग आदि का विकास करें। गाँधीजी चाहते थे कि मनुष्य स्वयं की शक्तियाँ को पहचान कर आध्यात्मिक रूप से स्वतन्त्रता का अनुभव करें। बाह्य स्वतंत्रता एवं आंतरिक स्वतंत्रता के अंतर को स्पष्ट करते हुए गाँधीजी का विचार था कि वास्तविक स्वतन्त्रता वह स्वतंत्रता है जिसमें मनुष्य स्वयं पर शासन करे। उन्होंने इसे " स्वराज" कहा। उन का मानना

था कि इस प्रकार की स्वतंत्रता किसी बाह्य माध्यम या परिस्थति से प्राप्त नहीं की जा सकती। इसके लिये मनुष्य को अपने भीतर ईश्वरीय अस्तित्व को पहचानना होगा और प्रार्थना एवं नैतिक गुणों के विकास के द्वारा इस स्वतंत्रता का अनुभव करना होगा। आत्मिक जीवन जीना और भौतिक समाज का हिस्सा बनना ये दोनो बातें परस्पर विरोधाभासी प्रतीत होती हैं। लेकिन गाँधीजी ऐसा नहीं मानते थे। उनका विचार था कि इन दोनों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है यदि मनुष्य अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखना सीख लें। इस नियंत्रण का प्रभाव उनके अनुसार यह होगा कि मनुष्य भौतिक वस्तुओं के आकर्षण में बंध कर आध्यात्मिकता के मार्ग से प्रथक नहीं होगा। इस संदर्भ मे गाँधीजी ने कुछ सिद्धान्तों और मूल्यों का प्रतिपादन किया। गाँधीजी चाहते थे कि लोग अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में इन सिद्धान्तों का अनुसरण करें। उनका मत था कि सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रहमचर्य का पालन करने पर मनुष्य स्वयं को आध्यात्मिक रूप से उन्नत और विकसित महसूस करेगा। ये सभी आत्म अनुशासनात्मक मूल्य गाँधीजी की दृष्टि में आत्मानुभूति की ओर अग्रसर होने एवं स्वराज स्थापित करने के साधन हैं।

14.4 विकास का पूँजीवादी मॉडल

विकास का सामान्य अर्थ उस प्रगति से है जो सरल अथवा निम्न स्तर या अवस्था से उच्च, परिपक्व अथवा जटिल आकार या अवस्था की ओर ले जाता है। इसे क्रमिक या प्रगतिशील परिवर्तन की शृंखला के माध्यम से उन्नति और विकास के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। विकास कोई स्थायी स्तर नही है, यह एक प्रक्रिया है जो कुछ निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पथ निर्धारित करता है। आधुनिक युग में विकास सम्बन्धी परिचर्चाओं में आर्थिक मापदंड हावी हैं। ऐसा ही एक कसौटी 'प्रति व्यक्ति आय है और जिन देशों में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) प्रति व्यक्ति उच्च है उन्हें विकसित देश माना जाता है। विकसित देश माने जाने का एक और कसौटी औद्योगीकरण की मात्रा है, जहाँ औद्योगीकरण की मात्रा अधिक है और नागरिक प्राथमिक क्षेत्र जैसे कृषि पर अपने जीवन-व्यापन के लिए न्यूनतम मात्रा में निर्भर हैं उन औद्योगिक देशों को विकसित माना जाता है। वर्तमान में एक और नए कसौटी को विकास का प्रतिमान के रूप में स्वीकारा गया है। इसे 'मानव विकास सूचकांक' कहा जाता है। यह राष्ट्रीय आय जैसे आर्थिक कसौटी के साथ अन्य कसौटियाँ जैसे जीवन प्रत्याशा और शिक्षा के सूचकांकों को जोडती है। उच्च दर्जा के मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) प्राप्त देशों को विकसित देश माना जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महासचिव काफी अन्नान के अनुसार एक विकसित राष्ट्र वह है जो अपने सभी नागरिकों को सुरक्षित वातावरण में स्वतंत्र और स्वस्थ जीवन व्यापन करने की अनुमति प्रदान करता हो।

पश्चिम जगत में सामन्तवादी व्यवस्था के पतन के बाद और औद्यैगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप 19वीं और 20वीं शताब्दी में पूंजीवाद नई अर्थव्यवस्था के रूप में उदयमान हुआ। इसमें उत्पादन के साधनो पर व्यक्तियों का निजी नियन्त्रण स्थापित हुआ और ये व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा लाभ प्राप्त करने के लिए अपने नियन्त्रण का प्रयोग करने लगे। यह कहना उचित होगा कि पूंजीवाद में वस्तुओं और सेवाओं का सृजन लाभ प्राप्त करने के लिए किया

जाता है। यही लाभ की इच्छा तीव्र आर्थिक प्रतिस्पर्धा को जन्म देती है। लाभ कमाने और तीव्र आर्थिक प्रतिस्पर्धा करने हेतु पूंजीवाद व्यापक स्वतन्त्रता और निजी सम्पत्ति के अधिकार की माँग करता है। इसी क्रम में वह सरकार पर नि:हस्ताक्षेपवादी आचरण के लिए दबाव डालता है। सामान्य हित के अनुरूप इस व्यवस्था में दो वर्ग स्वीकृत हैं - पूँजीवादी वर्ग जो पूँजी पर नियन्त्रण रखते हैं और श्रमिक वर्ग जो श्रम उपलब्ध कराते हैं। पूँजी के योगदान के लिए लाभ प्राप्ति और श्रम के लिए मजदूरी की व्यवस्था इसके अन्तर्गत विद्‌यमान है। पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थक मानते हैं कि इस व्यवस्था में निहित तीव्र प्रतिस्पर्धा और व्यापक स्वतन्त्रता जैसी विशेषतायें धन-सृजन और आर्थिक विकास को बढावा देती है और सम्पन्नता की ओर ले जाती है।

पूँजीवादी व्यवस्था के अनेक आलोचक हैं। जिन आधारों पर पूँजीवादी व्यवस्था की आलोचना की जाती है उनमें से एक प्रमुख आलोचना यह है कि यथार्थ में साधनों पर कुछ ही व्यक्तियों का निजी नियन्त्रण होने और ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने का ध्येय रखने के कारण सम्पन्नता कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित हो जाती है और अधिकांश लोग इससे वांछित रहते हैं। 'कुछ की सम्पन्नता और अधिकांश को पीड़ा' की परिस्थिति के परिणामस्वरूप अन्याय, असमानता और असुरक्षा की भावना व्यापक हो जाती है। कुछ आलोचक का कहना है कि यह विकास और धन-सृजन का इसका दावा भ्रान्ति है। इनकी आर्थिक शक्ति के दबाव में सरकार ऐसे निर्णय लेती है जो सम्पूर्ण समाज अथवा राष्ट्र हित के अनुकूल नही होते। ऐसी स्थिति में जिन उद्‌योगों, संस्थाओं और नियम-कानूनों का विकास होता है वह केवल पूँजीवादी वर्ग का ही हित साधक बन जाता है। जिनके पास पूँजी की शक्ति है वे इसका दुरूपयोग कर अन्य वर्गों, समाज एवं राष्ट्रों के शोषण करते हैं। इस तरह आम व्यक्ति और राष्ट्र की वास्तविक स्वतन्त्रता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पडता है। उपभोगतावादी संस्कृति को बढावा देने और कृत्रिम माँग का सृजन कर प्रकृति का अनावश्यक दोहन करने में यह तनिक भी संकोच नही करता। बेरोजगार, अल्परोजगार, शोषण और वर्ग-संघर्ष भी पूंजीवाद से जुडी समस्यायें हैं। धन-सृजन जैसे अल्पकालिक फायदे आम जन से जुडी हुई क्रमश: बढ़ते संकटों में विलुप्त हो जाते हैं।

विकास का पूँजीवादी मॉडल का तात्पर्य उस पूँजीवादी सोच, तद्‌नुरूप नियोजन और क्रियान्वयन से है जिसके माध्यम से विकास करने का प्रयास किया जाता है। यह मॉडल उदार और व्यक्तिवादी सिद्धान्त पर आधारित है जो मानता है कि मानव एक विवेकशील प्राणी है और तर्क की सहायता से वह यह निश्चित कर सकता है कि उसकी रूचि और हित किसमें है। इसलिए उसे स्वतंत्र छोड देना चाहिए ताकि वह अपने निजी और सामाजिक जीवन में आत्मनिर्णय ले सके।

आधुनिक सभ्यता विकास के पूंजीवादी मॉडल का जनक है। यह मॉडल व्यक्तिवाद और उपयोगितावाद के सिद्धान्त पर आधरित है। यह मानता है कि मानव एक तार्किक प्राणी है और तर्क की सहायता से वह यह निर्धारित कर सकता है कि उसका हित किसमें है। इसलिए उस पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं होना चाहिए उसे स्वतन्त्र छोड देना चाहिए ताकि वह अपने हित को पूरा करने के लिए इच्छानुसार कार्य कर सके। तर्कवाद ने भौतिकवादी विचारों को जन्म दिया और विज्ञान और तकनीकी का प्रयोग ज्यादा से ज्यादा भौतिकवादी जीवन के सुख और

सुविधा जुटाने के किया जाना लगा। विज्ञान और तकनीकी की सहायता से बडे-बड़े उद्योग स्थापित कर अधिक से अधिक सुख और सुविधा की वस्तुओं का उत्पादन किया जाने लगा।

मानव के बौद्धिक विकास की अपार संभावनाओं को स्वीकार करते हुए यह व्यक्तियों को अपनी क्षमताओं को विकसित करने के मुक्त अवसर प्रदान करने पर बल देता है। व्यक्तियों के आपसी प्रतियोगिता को यह स्वस्थ समाज के लिए उपयोगी मानता है। बैन्थम जैसे विचारकों द्वारा समर्थित उपयोगितावाद का सिद्धान्त का यह रामर्थन करता है और 'व्यक्तियों को अधिकतम सुख' देने के उद्धेश्य से व्यापक औद्योगीकरण और विशाल बाजार को सृजित करने का प्रयास करता है। विकास का यह मॉडल लोगों के न्यूनतम जीवन स्तर को सुनिश्चित करने, गरीबी उन्मूलन करने और पिछडे देशों में आर्थिक विकास लाने का दावा करता है। विकास के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए यह प्रोद्योगिकी का अधिकतम प्रयोग करने की इच्छा रखता है। प्रौद्योगिकी के माध्यम से राष्ट्रों और विश्व की भौगोलिक दूरियाँ को मिटाने और कच्चा माल सस्ते दाम पर खरीद कर उद्योगों तक जल्दी से पहुँचाने और निर्मित माल उद्योगों से जल्दी से निकाल प्रचुर मात्रा में बाजार में पहुँचाने का लक्ष्य साकार करता है। इसको सुविधाजनक बनाने के लिए मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार की नीति अपनाने के लिए सरकार पर यह दबाव डालता है। ज्यादा मुनाफा कमाने के ध्येय को पूरा करने के लिए उपभोगतावादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना और ऐसे निर्मित कृत्रिम माँग को विपुल उत्पादन से पूरा करना पूँजीवादी व्यवस्था का एक प्रमुख लक्षण है। विपुल उत्पादन हेतु प्रकृति का विदोहन ऐसी व्यवस्था का अपरिहार्य हिस्सा बन जाता है। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का जन्म भी पूंजीवाद का ही परिणाम है।

विकास का पूँजीवादी मॉडल राजनीतिक सत्ता से सैद्धान्तिक स्तर पर अर्थव्यवस्था में अहस्तशेप की नीति चाहता है। परन्तु व्यवहार में पूंजीपति राजनीतिक सत्ता से गहरे अन्तर-सम्बन्ध स्थपित करने के लिए प्रयासरात होते है ताकि उनके अनुकूल नीतियाँ और नियम बन सके और उन्हें अनेक सुविधायें उपलब्ध हो सके।

आधुनिक पश्चिमी देशों के इतिहास के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि पूंजीवाद ने राज्य सत्ता को पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए साधन सम्पन्न बनाया। राज्य सत्ता के समर्थन के लिए विलुप्त सामन्तों का स्थान पूँजीपतियों ने लिया। पूंजीपतियों का समर्थन और विज्ञान और तकनीकी की सहायता से राज्य ने सभी शक्तियों को अपने हाथ में केन्द्रीकृत कर लिया। राजनीतिक एकीकरण का दौर चला। पूंजीपतियों के समर्थन के बदले में राज्य ने निजी उद्योगों को सार्वजनिक संसाधनो से पूँजी दिलवाने का काम किया। विरोधियों की आवाज को सफलता पूर्वक दबाया गया और चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से अपनी सत्ता का वैधानिक बना लिया गया। राष्ट्र राज्यों का उद्भव हुआ और उग्र राष्ट्रवादी सोच और साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की अपरिहार्य आवश्यकताओं ने सैनिकवाद को भी बड़े पैमाने पर बढ़ावा दिया। परिणामस्वरूप विश्व को दो विनाशकारी विश्व युद्ध और उसके भयावह परिणामों का सामना करना पड़ा।

विकास का पूँजीवादी मॉडल की अनेक आलोचना की गई है। जिन आधारों पर इसकी आलोचना की जाती है उनमें से एक प्रमुख आलोचना यह है कि यथार्थ में साधनों पर कुछ ही व्यक्तियों का निजी नियन्त्रण होने और ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने का ध्येय रखने के कारण

सम्पन्नता कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित हो जाती है और अधिकांश लोग इससे वंचित रहते हैं। 'कुछ की सम्पन्नता और अधिकांश को पीड़ा' की परिस्थिति के परिणामस्वरूप अन्याय, असमानता और असुरक्षा की भावना व्यापक हो जाती। कुछ आलोचक का कहना है कि यह विकास और धन-सृजन का इसका दावा भ्रान्ति है। इनकी आर्थिक शक्ति के दबाव में सरकार ऐसे निर्णय लेती है जो सम्पूर्ण समाज अथवा राष्ट्र हित के अनुकूल नही होते। ऐसी स्थिति में जिन उद्योगों, संस्थाओं और नियम-क़ानूनों का विकास होता है यह केवल पूँजीवादी वर्ग का ही हित साधक बन जाता है। जिनके पास पूँजी की शक्ति है वे इसका दुरूपयोग कर अन्य वर्गों, समाज एवं राष्ट्रों के शोषण करते हैं। इस तरह आम व्यक्ति और राष्ट्र की वास्तविक स्वतन्त्रता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पडता है। उपभोक्तावादी संस्कृति को बढावा देने और कृत्रिम माँग का सृजन कर प्रकृति का अनावश्यक दोहन करने में यह तनिक भी संकोच नहीं करता। बेरोजगार, अल्परोजगार, शोषण और वर्ग-संघर्ष भी पूँजीवाद से जुडी समस्यायें हैं। धन-सृजन जैसे अल्पकालिक फायदे आम जन से जुडी हुई क्रमशः बढ़ते संकटों में विलुप्त हो जाते हैं।

14.5 आधुनिक सभ्यता की गाँधीजी द्वारा आलोचना

गाँधीजी पश्चिमी सभ्यता के कटु आलोचक थे। उन्होने आधुनिक सभ्यता के चुंगल में फसे ब्रिटिश शासन की उपनिवेशवादी-शोषणात्मक नीतियों का कटु पक्ष स्वयं अनुभव किया और माना कि भारत में ब्रिटिश शासन शैतान का शासन बन चुका है और इसे तत्काल समाप्त करना अपरिहार्य बन गया है। अपनी प्रसिद्व पुस्तक 'हिन्द-स्वराज' में गाँधी जी ने पश्चिमी सभ्यता के नैतिक आधारों पर सन्देह व्यक्त किया। इसमें उन्होंने आधुनिक सभ्यता की उपभोगतावादी प्रवृतियों की घोर आलोचना करते हुए कहा कि यह अनैतिक और हिंसावादी है। हिन्ह स्वराज आधुनिकता, औद्योगीकरण और संसदीय शासन प्रणाली को मानव हित के अनुकूल नही मानते। गांधीजी ने यह पुस्तक 1909 में लिखी। हिन्द स्वराज या इंडियन होम रूल गाँधी जी का राजनीतिक वसीयतनामा था जिसके मूलभूत विचारों और मान्यताओं को उन्होंने पूरे जीवन में कभी नही बदला। हिन्द स्वराज विकास की समस्या को सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करके देखता है। यह पश्चिम में प्रचलित आधुनिक समाज की आलोचनात्मक परीक्षण करके न केवल उसके वैज्ञानिक और तकनीकी प्रयोगों पर वार करता है अपितु उसके राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक व्यवस्था पर भी प्रहार करता है। वकीलों, चिकित्सकों और तकनीकशयों की आलोचना करते हुए इसमें रेल और आधुनिक मशीन-तन्त्र को भी अस्वीकार किया है। गाँधीजी ने आधुनिक समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को मानव के गरिमामयी और सम्मानजनक जीवन के लिए अवरोध मानकर इन्हे परित्याग करके शाश्वत नैतिक मूल्य जैसे सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, त्याग, तपस्या, सहिष्णुता, भ्रातृत्व की भावना, इत्यादि को अपनाने पर बल दिया।

गाँधीजी ने आधुनिकता के मूल में निहित तर्कवाद व विज्ञानवाद पर अत्यधिक महत्व की आलोचना की। उन्होने तर्कवाद की आलोचना की और कहा कि जब तर्कवाद स्वयं के सर्वशक्तिमान होने का दावा करता है तब यह घृणित दानव है। तर्कवाद को सर्वशक्तिमान मानकर उसको महिमामंडित कर भगवान मान कर पूजा करना अनुचित है। उन्होंने कहा कि वे

तर्क के दमन की वकालत नही करते लेकिन इस पर स्वभाविक सीमा लगाने की अनुशंसा करते हैं। उनका मानना था कि मानव मस्तिष्क की कुछ सीमायें हैं जिसके कारण सम्पूर्ण सत्य या ईश्वर को मानव केवल तर्क शक्ति के आधार पर सम्पूर्ण रूप से समझ नहीं सकता। अत: वे सत्य को जानने के लिए तर्क के साथ-साथ भक्ति और ईश्वर में आस्था को भी महत्वपूर्ण मानते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के पीछे गांधीजी ने एक सुव्यवस्थित शाश्वत शक्ति का होना बताया जिसे उन्होंने ईश्वर अथवा परम सत्य के रूप में पहचाना। इसलिए वे मानव जीवन में न ही इहलौकिक विषयों और तत्वों की प्रधानता को स्वीकार करते थे और न ही आध्यात्मिक और नैतिक विषयों को काल्पनिक और व्यर्थ मानकर मनुष्य जीवन के लिए महत्वपूर्ण मानने के लिए तैयार थे। गाँधीजी के दर्शन में तार्किक ज्ञान, कर्म और आस्था तीनों मार्ग मानव कल्याण और मोक्ष के लिए महत्वपूर्ण है।

मानव कल्याण की जब गाँधी बात करते हैं तब वे मनुष्य को एक नैतिक प्राणी के रूप में स्वीकार करते हैं और केवल उसके भौतिक सुख-वृद्धि तक कल्याण की अवधारणा को सीमित नही करते हैं। नैतिकता-युक्त सादगीपूर्ण जीवन के पक्षधर गाँधी विलासितापूर्ण जीवन को अनेक कारणों से अनैतिक एवं सम्पूर्ण मानव कल्याण के लिए बाधा मानते थे। इन्हें गाँधी सत्य और सम्पूर्ण विश्व-कल्याण अथवा सर्वोदय उद्देश्य से असंगत मानते थे। इसलिए गाँधी उपयोगितावाद और उसके द्वारा समर्थित किए गए उपभोगतावाद के कटु आलोचक थे।

गाँधीजी का दर्शन आध्यात्मिकता से प्रभावित है। वे उन आध्यात्मिक मूल्यों में विश्वास करते थे जिन्हे विश्व के सभी प्रमुख धर्मों ने प्रतिपादित किया है। हिन्दू धर्म मे प्रतिपादित अर्थ और काम पुरुषर्थों को धर्मानुसार संयमित कर मोक्ष प्राप्त करने की ओर अग्रसर होने की बात गाँधीजी किया करते थे। धर्म और मोक्ष उनके लिए आत्मानुशासन या स्वराज, परोपकारी सेवा और सर्वोदय के लक्ष्यों से घनिष्ट रूप में जुडे हुए हैं। गाँधीजी ने देखा कि आधुनिक सभ्यता द्वारा समर्थन किए गए उपयोगितावाद और उपभोगतावाद व्यक्ति को आत्म-केन्द्रित अथवा स्वार्थी बनाते है। ये प्रवृत्तियाँ गाँधीजी के अनुसार न केवल स्वराज, परोपकारी सेवा और सर्वोदय को असम्भव बनाते हैं अपितु व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास को भी बाधित करते हैं।

गाँधीजी मानते थे कि सभी मनुष्य मूल रूप से अच्छे होते हैं। उनमें नैतिक उत्थान और अहिंसा को आत्मसात करने और निस्वार्थ भाव से कर्त्तव्य करने की क्षमता विद्यमान है। परन्तु गाँधीजी मानते थे कि आधुनिक सभ्यता की चकाचौंध रोशनी ने मानव को भ्रमित किया है। आधुनिक सभ्यता की इस चकाचौंध रोशनी के कारण मानव नीति को भूलकर अनेक व्यसनों मे लिप्त हो जाता है और विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बुराइयों को बढ़ावा देता है। पथभ्रष्ट मानव अहिंसा और न्याय का मार्ग छोडकर हिंसा और अन्याय के माध्यम से अपने स्वार्थ पूरा करने का प्रयास करेगा।

हिंद स्वराज में गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता मे लिप्त बुराइयों के कारण उसे असुरी कहा है। गाँधीजी के अनुसार आधुनिक सभ्यता ने इग्लैंड की सजीवता को निगल लिया है। लेकिन इग्लैंड, उनके मतानुसार, इसका परित्याग नहीं करना चाहता क्योंकि वह भौतिकवाद और उपभोगतावाद के चुँगल मे फँस चुका है जिसके कारण वह निरंतर शोषणात्मक व्यापार और वाणिज्य को बढ़ाने के लिए तत्पर है। धन-संचयन उनके लिए पूजनीय कार्य और पैसा ऐसे लोगों

का भगवान बन गया है। अधिकाधिक धन-संचयन के लोभ में वे अपने माल के लिए पूरे विश्व को एक बड़े बाजार में परिवर्तित करना चाहते थे। गाँधीजी की धारणा, थी कि भारत को इंग्लैंड देश ने नही जीता वरन् इस पर आधुनिक सभ्यता ने विजय पाई है।

गाँधीजी ने रेल को आधुनिक सभयता का ही देन माना। आधुनिक सभ्यता द्वारा महत्व दिए गए विज्ञान और तकनीकी ने ही रेल का अविष्कार सम्भव बनाया। आधुनिक सभ्यता द्वारा फैलाये गये अधिकाधिक उत्पादित वस्तुओं की माँग और वितरण के द्वारा इसकी पूर्ति को साकार करने के उपक्रम के रूप में रेल को प्रयोग किया जाने लगा। रेल आर्थिक शोषण का यन्त्र और उसे संबल और सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रशासनिक अथवा सैन्य बल को संचालित करने का प्रभावी साधन भी बना। कच्चे माल को न्यूनतम मूल्य पर भारतीयों से खरीद कर ब्रिटेन तक पहुँचाने तथा वहाँ पर निर्मित उत्पादित वस्तुओं को उँचे दाम पर भारतीय बाजार में बेचने हेतु रेल का प्रयोग किया जाने लगा। शोषण के विरूद्ध उठने वाले आवाज को कुचलने के लिए सैन्य बल को आवश्कतानुसार इधर-उधर ले जाने के लिए रेल का प्रयोग किया गया। अत: यह शोषणात्मक शासन को फैलाने और उसे सुदृढ बनाने में मदद् करने वाला साधन कहा गया। अन्याय और हिंसा के विरूद्ध आवाज उठाने वाले गाँधीजी के लिये रेल का ऐसा प्रयोग निन्दनीय था। प्रकृति के साथ छेड-छाड करने का हर प्रयास गाँधीजी के लिए अस्वीकार्य था। रेल उनके अनुसार स्थान और समय से जुडे मानवीय कौशल की प्राकृतिक सीमाओं को तोड कर अवांछनीय प्रतिस्पर्धा को जन्म देने का काम करता है। बीमारियों को फैलाने और अकाल की परिस्थितियों को जन्म देने के लिए भी गाँधीजी ने रेल को दोषी ठहराया।

गाँधीजी के अनुसार जिस तरह रेल ने अंग्रेजो को भारत में अपना शासन फैलाने और उसे बनाए रखने में मदद की उसी प्रकार वकीलों और जजों ने भी भारत में अंग्रेजों के शासन को स्थायीत्व प्रदान करने का कार्य किया। वकीलों और जजों ने भारत में अंग्रेजों के बनाए कानून को स्वीकृत कर औचित्य प्रदान की है। गाँधीजी का यह भी मानना था कि वकील भी प्रयासरत रहते हैं कि झगडा कभी भी समाप्त न हो। समाज में झगडा बढ़ाने में उनका निहित स्वार्थ होता है। इसलिए ये लोग संघर्ष-समाधान और शान्ति के लिए कोई सकारात्मक कार्य नही करते।

डॉक्टरों की भी गाँधीजी कटु आलोचना करते हैं। उनकी चीर-फाड पद्धतियाँ और दवाइयों में पशु-वसा और मादक पदार्थो का प्रयोग की गाँधीजी ने आलोचना की है। गाँधीजी ने कहा कि अप्रत्यक्ष रूप से डॉक्टर व्यक्तियों में भोग विलास की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देते हैं और आत्म-संयम के गुण को कमजोर करते हैं। नैतिक-आध्यात्मिक दृष्टि को प्रधानता देने वाली गाँधीजी की सोच ने उन्हें डॉक्टरों की उपभोगतावादी-भौतिकवादी प्रवृत्तियों को बढावा देने के अप्रत्यक्ष प्रयास की आलोचना करने के लिए विवश किया।

गाँधीजी आधुनिक शिक्षा की भी आलोचना करते हैं। गाँधीजी के लिए शिक्षा का विशेष अर्थ था। यह महज अक्षरों और आजीविका का प्रबन्ध करने का कौशल विकसित करने की कला नहीं है। यह विद्यार्थियों के नैतिक चरित्र का विकास करने वाली प्रक्रिया है जो उन्हें समाज और विश्व के प्रति अपने धर्म अथवा दायित्व निःस्वार्थ भावना से नियमित रूप से निर्वाह करने की सीख प्रदान करता है। अंग्रेजों द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था उपनिवेशवादी ब्रिटिश शासन की

आवश्यकता को पूरा करना था न कि भारतीयों का नैतिक और चौतरफा विकास करना। गाँधीजी के अनुसार यह शिक्षा न ही व्यक्ति को आदर्श-पुरूष बनने की ओर ले जाती है और न ही उसे अपनी मानवीय दायित्वों के निर्वाह में सक्षम बनाती है।

गाँधीजी विज्ञान, तकनीकी और मशीन के विरूद्ध नही थे। वे विरोध करते थे ऐसे वैज्ञानिक दृष्टि, तकनीकी प्रयोग और मशीनीकरण का जो मनुष्य का मानव बनने में बाधा उत्पन्न करता हो और उसके शोषण को बढ़ावा देता हो। गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता की अंधाधुन्ध मशीनीकरण की प्रवृत्तियों को केवल नैतिक आधार पर ही नहीं अपितु भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर पडने वाली विपरीत और घातक प्रभाव के आधार पर भी आलोचना की और विरोध किया। ब्रिटेन की औद्योगीकरण और उपनिवेशवादी नीतियों ने भारत की कुटीर उद्योग को नष्ट कर किया है। मशीनीकरण और आधुनिक पूंजी के आधार पर स्थापित मिलों व फैक्टरियों ने लोगों को गरीब बना दिया और उनका शोषण किया। स्वयं मिल के मालिकों ने अपार धन सम्पत्ति का संचयन कर भोग-विलास में लिप्त हो गए। उनकी धारणा थी कि भारतीय मिल मालिक भी उतने ही शोषण कर्त्ता होगें जितने कि अमेरिका या यूरोप के मालिक है।

ठीक ऐसे ही आधुनिक यूरोप की संसदीय शासन व्यवस्था को भी गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता का साधन माना। उनका कहना था कि ब्रिटिश पार्लियामेट (संसद) संसदों की जननी नहीं है वरन् एक बांझ स्त्री और वेश्या हैं जिसने कोई सकारात्मक योगदान नही किया है। बिना बाहरी दबाव के ब्रिटिश संसद ने अपने आप एक भी अच्छा काम नहीं किया। ईमानदार लोगों का ब्रिटिश संसद में चुनकर आना असम्भव है और जो चुने हुए सदस्य आते हैं वे जनता के बारे में नही, हमेशा अपने हितों के बारे में सोचते है। व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा दबाव में कार्य करने वाले ऐसे सदस्य जन हित के कार्य स्वप्रेरणा और निष्ठा से नही करते है। आगामी चुनाव की चिन्ता भी उन्हें निश्चिन्त होकर सही कार्य करने नही देती। गाँधीजी ने इसे वेश्या के समान इसलिए कहा है क्योंकि यह मंत्रियों के नियंत्रण में कार्य करती है जो समय-समय पर बदलते रहते हैं, यह जन हित के प्रति निष्ठावान नही है। यह दुनिया की बातूनी दुकान है जिसकी कार्य प्रणाली में बहुत अधिक धन व समय खर्च होता है। यह अपनी इच्छा लोगों पर थोपती है और इसके सदस्य दलगत नीति से ऊपर नहीं उठते और बिना विचार किए अपने दल को ही वोट देते हैं।

प्रजातंत्र के वेस्ट मिनिस्टर मॉडल की गाँधीजी ने इस आधार पर भी आलोचना की यह शासन व्यवस्था बहुमत के सिद्धान्त पर आधारित है जिसमे अल्पमत की अवाज को दबा दिया जाता है या अनसुनी कर दिया जाता है। गाँधीजी ने कहा कि बहुमत का निर्णय हर समय सही हो यह जरूरी नही है और प्रजातंत्र के वेस्ट मिनिस्टर मॉडल की शासन व्यवस्था मे हमेशा बहुमत की निरकुंशता का खतरा बना रहता है। उन्होंने इस विचार का समर्थन नही किया कि संवैधानिक सत्ता द्वारा पारित कानून का आँखमूंद कर समर्थन किया जाए, चाहे वह हमारी आत्मा के विरूद्ध ही क्यों न हो। गाँधी जी का तर्क था कि अन्यायपूर्ण कानून, विशेष कर जब वह अन्तरात्मा के विरूद्ध हो तब उसका विरोध करना व्यक्ति का कर्तव्य भी है। उनके द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह दर्शन उपर्युक्त भावना और सोच को समाहित करते हुए राजनीतिक स्तर पर आध्यात्मिक प्रगति, स्वराज और सर्वोदय का मार्ग प्रशस्त करता है।

14.6 गाँधीजी के अनुसार सभ्यता का सही अर्थ

गाँधीजी के अनुसार सही अर्थ में सभ्यता के तीन मौलिक सिद्धान्त हैं। सर्वप्रथम सिद्धान्त यह है कि सभ्यता वास्तविकता अथवा सत्य की खोज के प्रति जिज्ञासु है, भौतिक जगत के बाहरी आवरण की चकाचौंध की अनुभूति के प्रति नही। उसकी प्राथमिकता आध्यात्म है, भौतिक और इहलौकिक विषय एवं वस्तु में रूचि तत्पश्चात की बात है। इसमें मनुष्य की क्रियाओं का प्राथमिक उद्देश्य और प्रयास आध्यात्म की ओर बढ़ने के लिए है न कि भौतिक और शारीरिक सुखों को प्राप्त करना।

द्वितीय सिद्धान्त यह है कि सभ्यता तपस्या और सादगी पर आधारित है। यह सिद्धान्त आध्यात्म और नैतिकता के सिद्धान्त से जुडा हुआ है। आध्यात्म और नैतिकता व्यक्ति की अन्तरात्मा की अवाज और उसकी सृजनात्मक शक्ति से जुड़ा हुआ है जिसके आधार पर सबको एक सूत्र में बन्धुत्व भावना से बान्धा जा सकता है। आध्यात्म और नैतिकता का व्यावहारिक रूप तपस्या और सादगी है। सच्चे अर्थ में सभ्यता एक प्रगतिशील और सोद्देश्य विकास है जो मानता है कि यह विश्व भौतिक और रासायनिक रूप से एकत्रीकृत वस्तु नही है अपितु किसी दिव्य आत्मा द्वारा सुनियोजित तरीके से निर्मित है जिसकी संस्कृति सत्य, अहिंसा, प्रेम, परोपकारी-सेवा, आत्म-पीडा, बन्धुत्व, सहिष्णुता, पारस्परिकता, आदि मूल्यों से परिलक्षित है। यह आत्म-संयम के द्वारा स्वयं की इन्द्रियों पर नियन्त्रण भी है और साथ-साथ सच्ची स्वतंत्रता की अनुभूति भी। इसे गाँधीजी ने स्वराज माना और ऐसे स्वराज से मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य, जिसे उन्होंने परम सत्य या ईश्वर की प्राप्ति के रूप में व्याख्या की, उसको प्राप्त करने की ओर अग्रसर होने की बात कही। गाँधीजी ने इन गुणों से युक्त सभ्यता को भौतिक सम्पत्ति और सुख-सुविधा के प्रति उदासीन बताया और अपना सब कुछ सर्वोदय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए न्योछावर करने के लिए तत्पर बताया। ऐसी सभ्यता में व्यक्ति यह सब कुछ किसी बाहरी दबाव में आकर नही करता अपितु स्वयं का नैतिक और सामाजिक दायित्व समझ कर स्वेच्छा से निष्पादित करता है और ऐसा करते हुए वह आनंद की अनुभूति भी करता है।

सच्चे अर्थ में सभ्यता का तृतीय सिद्धान्त गाँधीजी ने आत्मा और शरीर की आवश्यकताओं का संश्लेषण और समन्वयन बताया। दूसरे शब्दों मे यह ईश्वर और इहलौकिक जगत की आवश्यकताओं का संश्लेषण और समन्वयन है। यह शरीर का परित्याग नही अपितु उसमे निहित कमियों को दूर करके सर्वोच्च लक्ष्य - ईश्वर की प्राप्ति - की बात करता है। इहलौकिक जगत को गाँधीजी ने अस्वीकार नहीं किया अपितु इसमे भी परम सत्य के अंश निहित होने की बात कही जिसके सहारे परम सत्य तक पहुँचने का प्रयास किया जा सकता है। इसलिए जिस तरह शरीर का परित्याग करके परम सत्य को प्राप्त करने का प्रयास अवांछनीय है उसी तरह भौतिक जगत को परित्याग करके उसे प्राप्त करने का प्रयास भी निरर्थक है। इसलिए गाँधीजी ने मन और शरीर को संयमित करते हुए इहलौकिक जगत की मिथ्याओं से खुद को दूर रखकर मानव जीवन के सर्वोच्च सत्य की खोज के लिए समर्पित होने को कहा। गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत सच्ची सभ्यता इसी सीख की नींव पर खड़ी है और मन तथा शरीर और आत्मा की आवश्यकताओं में सुन्दर समायोजन हेतु आवश्यक परिस्थितियों को उपलब्ध कराती है।

14.7 गाँधीजी का आदर्श समाज - सर्वोदय

गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता पर आधारित पश्चिमी समाज की आलोचना करते हुए भारत को सावधान किया कि वह इस आधुनिक सभ्यता और उसकी संस्कृति को पूर्णत: त्याग दे विकल्प के तौर पर उन्होंने जिस आदर्श व्यवस्था की रूप रेखा प्रस्तुत की उसे राम राज्य या सर्वोदय के नाम से जाना जाता है। सर्वोदय समाज जिस सिद्धान्त पर आधरित है वह भारतीय संस्कृति की मूल मान्यता 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना को अंगीकृत करता है। सर्वोदय दर्शन के अनुसार व्यक्ति का कल्याण समष्टि के कल्याण में ही निहित है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की सोच पर आधारित यह आदर्श सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखता है और इस विशाल परिवार की प्रत्येक सदस्य की सुख, समृद्धि, शान्ति ओर कल्याण की कामना करता है। यह स्वीकार करता है कि व्यक्ति सामाजिक प्राणी है, वह समाज से अलग नहीं रह सकता है। व्यक्ति का कल्याण समाज के कल्याण से जुड़ा हुआ है। उच्च कोटि का चरित्र, सादगी और भ्रातृत्व भावना इस समाज की सम्पूर्ण प्रक्रियाओं का अभिलक्षण है। यह समाज अहिंसा और सत्य पर आधारित है जिसमे किसी प्रकार का शोषण नहीं है और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को सर्वांगीण विकास करने के अवसर साधन प्राप्त होते है।

रस्किन की पुस्तक "अन्टू दिस लास्ट" (Unto This Last) में प्रतिपादित तीन सिद्धान्तों को गाँधीजी ने सर्वोदय समाज के मूल सिद्धान्त के रूप में स्वीकारा। ये हैं :-

(1) "सबके भले में अपना भला समाया हुआ है" इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति समाज से भिन्न नही है और व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में कोई द्वन्द्व नहीं है, दोनों में सामंजस्य व समन्वय की भावना है। जब समाज का हित साकार होगा तब व्यक्ति का हित भी साकार होगा। इसलिए जब व्यक्ति समाज के हित के बारे में सोचेगा और कार्य करेगा तो उसका स्वयं का भला स्वाभाविक रूप से ही हो जायेगा।

(2) "वकील और हज्जाम के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए" सर्वोदय के इस दूसरे सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि श्रम चाहे किसी प्रकार का हो सभी का समान महत्व है। निष्कर्षात्मक रूप से इसका अर्थ यह है कि समाज में हर व्यक्ति की उपयोगिता है, हर व्यक्ति के कार्य का समान महत्व है, चाहे वह कार्य शारीरिक कार्य हो या बौद्धिक कार्य हो। बौद्धिक कार्य (ज्ञान) और शारीरिक कार्य (कर्म) के बीच किसी प्रकार का द्वन्द्व नहीं है। सर्वोदय समाज मे बौद्धिक कार्य को ऊँचा और शारीरिक कार्य को नीचा न मानकर दोनों को समान महत्व देगा। इस सिद्धान्त में परस्पर सहयोग की भावना को भी महत्वपूर्ण माना गया है, प्रतिस्पर्धा की भावना को अवांछनीय और सामाजिक हित के विपरीत माना है। परस्पर सहयोग से ही सम्पूर्ण समाज का हित पूरा हो सकता है और जब ऐसा होगा तभी व्यक्ति अपने स्तर पर लाभान्वित होंगे।

(3) "सादगीपूर्ण और मेहनत करने वाले किसान का जीवन ही श्रेष्ठ जीवन है" सर्वोदय का यह तीसरा सिद्धान्त व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं को कम करने का सीख देता है। यह शारीरिक श्रम को महत्व प्रदान करते हुए सभी को थोडा बहुत शारीरिक श्रम करने का उपदेश देता है। यह मानता है कि प्रकृति में सब व्यक्तियों की आवश्यकता पूर्ण करने की क्षमता है पर

किसी व्यक्ति की स्वार्थ को वह पूरा नही कर सकती। इसलिए समाज के हर व्यक्ति की निर्बाध इच्छाओं की पूर्ति सम्भव नहीं है और इस लिए व्यक्ति को अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण करना होगा और श्रम करना ही पडेगा। तभी समाज में सहयोग पर आधारित जीवन सरल और श्रम साध्य रह पायेगा। जीवन में सरलता, सादगी, नैतिक चरित्र, आत्म नियन्त्रिण निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्य की पालना करना और बन्धुत्व भावना ही सर्वोदय समाज के मुख्य आधार है।

सर्वोदय अवधारणा के विभिन्न आयाम हैं जिन्हे निम्नलिखित संदर्भ में व्यक्त किया जा सकता है:-

14.6.1 नैतिक आयाम

सर्वोदय समाज का एक महत्वपूर्ण आधार नैतिक जीवन है। नैतिकता व्यक्ति को भौतिक जगत में रहते हुए आध्यात्मिक लक्ष्यों की ओर अग्रसर होने में मदद् करती है। सर्वोदय समाज में व्यक्ति नैतिक नियमों की पालना करते हुए विश्व शान्ति, विश्व-बन्धुत्व, समानता, प्रजातन्त्र, सत्य, प्रेम, सर्व-कल्याण, आदि वांछित मूल्यों को सर्वत्र कायम करने में मदद् तो करता ही है, वह खुद के कल्याण में भी योगदान देता है। नैतिकता साध्य और साधन दोनों की पवित्रता पर बल देता है। नैतिक नियमों में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को प्राथमिक माना गया है। सर्वोदय धारणा का नैतिक आयाम मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास व आत्मिक उत्थान के प्रति व्यक्ति को सजग बनाता है। साध्य की शुद्धता गाँधीजी के अनुसार तभी सम्भव है जब साधनों की पवित्रता को बनाया रखा जाए। गाँधीजी ने साधनों की पवित्रता नैतिक नियम की अनुपालना से ही सम्भव बताया। नैतिकता की अवहेलना गाँधीजी के लिए सत्य या ईश्वर के विरूद्ध जाने के समान है। अत: आध्यात्मिक दृष्टि से यह गाँधीजी के लिए स्वीकार्य नही है। व्यवहारिक तौर पर भी नैतिक नियमों की अनुपालना को गाँधीजी ने अपरिहार्य बताया। अनैतिक आचरण अनेक समस्याओं को मानते थे कि मनुष्य तभी सुखी हो सकते हैं, जब वे नैतिक कानून की पालना करें। गाँधीजी के साधन और साध्य सम्बन्धी उक्त विचार गीता का निष्काम कर्म के सिद्धान्त से भी प्रभावित है। गाँधीजी एक कर्म प्रधान व्यक्ति थे। उन्होंने फल की लालसा की अपेक्षा कर्तव्य के निर्वाह पर बल दिया है। कर्तव्यों का निष्पादन गाँधीजी के अनुसार नैतिकता के अभाव में नही हो सकता। नैतिकता उनके लिए परम सत्य या ईश्वर की योजना अथवा नियम है यही सत्य भी है और सत्य प्राप्ति का मार्ग भी। अत: गाँधी के विचार में सत्य साधन भी और साध्य भी है।

14.6.2 धार्मिक आयाम

गाँधीजी के अनुसार सभी धर्म सच्चे हैं। सभी धर्म सच्चाई के मार्ग पर चलकर एक समान ईश्वर तक पहुँचने की बात करते है और सभी धर्म समान शाश्वत मूल्यों को जीवन में अंगीकृत करने की बात करते हैं। धर्म का अर्थ किसी विशेष पूजा-पाठ और अर्चना की विधी नही है, पर जीवन का मूल तत्व पहचानकर तद्अनुरूप व्यवहार में उसे उतारना है। हर व्यक्ति को अपने धर्म द्वारा प्रतिपादित नियम और मूल्यों को अपनाते हुए धार्मिकता का परिचय देना चाहिए। सर्वधर्म समभाव गाँधी के सर्वोदय की धारणा में केन्द्रीय महत्व रखता है। इसलिए

गाँधीजी के अनुसार व्यक्ति को सभी धर्म अथवा मतों का आदर और सहिष्णुता का भाव लिए आपसी सम्बन्धों का संचालन करना चाहिए। उनका मत था कि सभी व्यक्तियों में ईश्वर निवास करता है इसलिए सभी के साथ स्नेह रखना चाहिए और सभी के कल्याण की कामना करनी चाहिए। इसलिए गाँधीजी ने कहा "मेरा धर्म वह सब कुछ प्रदान करता है जो मेरे आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है, क्योंकि वह मुझे उपासना करना सिखाता है। मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करें जिससे कि एक ईसाई अच्छा ईसाई बन सके तथा एक मुसलमान अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा एक दिन हमसे ये पूछेगा कि हम क्या हैं और क्या करते है न कि वह नाम जो हमने अपने को और अपने कामों को दे रखा है।" धर्म की गाँधीवादी धारणा में संकीर्ण सम्प्रदायवाद के लिये कोई स्थान नहीं है। गाँधीजी के लिए धर्म की साधना एक सार्वभौमिक आध्यात्मिक सत्ता में आस्था है जिसे ईश्वर या सर्वोच्च सत्य कहा जा सकता है तथा इस आस्था को प्रकट करने का तरीका मानवीय और शाश्वत मूल्यों को लौकिक जीवन मे अंगीकृत करना है। इस तरह आदर्श व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति स्वधर्म को पहचानने का प्रयास करता है और पहचाने हुए धर्म को नियमित रूप से पूर्ण निष्ठा से सम्पादित करता है।

14.6.3 आर्थिक आयाम

सर्वोदय समाज का एक महत्वपूर्ण अभिलक्षण यह है कि वह सभी लोगों का सामान्य रूप से अधिकाधिक कल्याण चाहता है। सर्वोदय समाज की अर्थव्यवस्था सत्य और अहिंसा जैसे अनेक नैतिक मूल्यों पर आधारित वर्गविहीन, शोषण विहीन व विकेन्द्रित व्यवस्था है। यह मानवीय सहयोग व सद्भाव द्वारा संचालित होती है, न कि संघर्ष एवं प्रतिस्पर्धा द्वारा। जिसमें अस्तेय एवं अपरिग्रह व्रत का पालन किया जाता है। अत: स्थानीय उत्पादन, स्थानीय उपयोग और विवेक सम्मत वितरण इस मानवीय अर्थव्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्त है।

सर्वोदय समाज की अर्थव्यवस्था स्वदेशी की धारणा पर भी आधारित है। गाँधी ने स्वदेशी का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया। वे इसे मात्र अर्थशास्त्रीय धारणा के अंतर्गत सीमित नहीं रखना चाहते थे। व्यापक अर्थ में यह ऐसी धारणा है जिसकी परिधि में नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के अर्थ समाहित है। गाँधीजी के लिये स्वदेशी का तात्पर्य व्यक्ति द्वारा उसके समीपस्थ वातावरण के प्रति निज धर्म का निर्वाह है। इस व्रत के अनुसार अपने देश के धर्म इसकी भाषा, राजनीतिक पद्धति और उपयोग की वस्तुओं को अंगीकार करना है। गाँधीजी के मतानुसार स्वदेशी एक सार्वभौम धर्म है जिसके अनुसार उन सभी प्रकार के विदेशी सामानों का त्याग करना है जिनका उत्पादन अपने देश अथवा समीपस्थ प्रदेश में होता है तथा जिनके उपयोग के बिना हमारे समाज के कुछ अंग अपनी आजीविका खो देते हैं। यह विदेशी वस्तु के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण रखते हुए यह भी प्रावधान करता है कि हम अपनी आवश्यकता की चीजों को विदेशों से मंगा सकते हैं, विदेशी पूंजी और प्रतिभा का प्रयोग कर सकते हैं, शर्त केवल यह है कि उससे अपने देश के नागरिकों की प्रगति अवरूद्ध न हो और उसका नियंत्रण भारत के द्वारा हो। सर्वोदयी समाज का स्वेदशी व्रत संकीर्णता, घृणा, स्वार्थ, प्रतिद्वंद्विता आदि दोषों से मुक्त है। यह अहिंसा और प्रेम का ही

पर्याय है जिसकी पालना से एक ओर अपनी संकल्प शक्ति और बंधुत्व भावना बढ़ती है, दूसरी ओर समाज की अर्थव्यवस्था टिकाऊ बनी रहती है।

सर्वोदय समाज के अर्थव्यवस्था अंधाधुन्ध मशीनीकरण और बडे-बडे मशीनों पर आधारित व्यापक ओद्योगीकरण पर आधारित न होकर कुटीर उद्योग और अपरिहार्य तथा अत्यावश्यक मशीनीकरण पर आधारित है। यह पूँजोत्पादन अथवा बडे पैमाने पर उत्पादन पर आधारित न होकर अधिकाधिक जनता द्वारा उत्पादन पर आधारित है। उत्पादन में संलग्न लोग वर्ग संघर्ष से दूर हैं। यह व्यवस्था शाषण और हिंसा से मुक्त है और आपसी सहयोग से समाज के लिए उपयोगी उत्पादन आवश्यकता अनुसार करते हैं। यहाँ उत्पादन सेवा की दृष्टि से किया जाता है न कि लाभ कमाने की दृष्टि से और उत्पादन उपभोगतावादी संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए भी नहीं है। प्रकृति के संसाधनों का अनावश्यक दोहन न हो ऐसी चिन्ता के प्रति सर्वोदय समाज की अर्थव्यवस्था जागरूक है।

आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण एक ओर लक्षण जो सर्वोदय समाज में निहित है, वह ट्रस्टीशिप है। गाँधीजी व्यक्तिगत सम्पत्ति को शोषण का कारण मानते हैं। गाँधीजी ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के सम्बन्ध में ट्रस्टीशिप का एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त दिया है। वे व्यक्तिगत सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व के बिना एक आदर्श समाज की स्थापना करने का प्रयास करते हैं। वे व्यक्तिगत सम्पत्ति को रखते हैं और उसकी बुराइयों को अहिंसा, सत्य और परोपकार के साधनों के माध्यम से दूर करना चाहते हैं। सर्वोदय समाज में सम्पत्ति को न्यास के रूप में समझा जाता है। गाँधीजी के अनुसार ट्रस्टीशिप का विचार उस चेतना पर आधारित है कि प्रत्येक सम्पत्तिवान व्यक्ति का यह समझना चाहिए कि उसके पास जो सम्पत्ति है वह उसने समाज से प्राप्त की है। सर्वोदय समाज में धनी एक न्यासी की तरह व्यवहार करेंगे। उसे अपने पास उपलब्ध सम्पत्ति से केवल उतना ही प्रयोग करना चाहिए जो उसे व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जरूरी है, अन्य सभी सम्पत्ति उसे समाज के हित साकार करने में लगा देना चाहिए। गाँधीजी ने सम्पत्ति में केवल भौतिक सम्पत्ति ही नहीं बल्कि अ-भौतिक सम्पत्ति जैसे बौद्धिक क्षमता भी शामिल की है। ट्रस्टीशिप को अपनाते हुए सर्वोदय समाज में सम्पत्तिवान व्यक्ति भी स्वैच्छा से सरल और त्यागमय जीवन व्यापन करते हैं। ट्रस्टी के रूप में वे अपरिग्रह और समन्वय भावना अंगीकृत करते हैं। इस तरह सर्वोदय समाज अमीरों और गरीबों की बीच विषमता से मुक्त है।

14.6.4 राजनीतिक आयाम

गाँधीजी की आदर्श राजनीतिक व्यवस्था एक राज्यविहीन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के जीवन को नैतिक मूल्यों के आधार पर संचालित करता है। रामराज्य के नाम से जानने वाले इस राज्य में व्यक्ति पर नियन्त्रण करने वाली राज्य अथवा सरकार की कोई बाहरी सत्ता नहीं है। पर गाँधीजी ऐसे आदर्श राजनीतिक व्यवस्था को साकार करने की कठिनाइयों से अवगत थे। वैकल्पिक तौर पर उन्होंने एक ऐसी सर्वोदयी राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन किया जो राजनीतिक आध्यात्मिकीकरण, सर्वाधिक रूप से विकेन्द्रीकृत, न्याय, समानता और भृतत्व के भाव पर आधारित है और जो आदर्श स्थिति की ओर बढने के लिए सदैव

प्रयासरत है। गाँधीजी की आदर्श राजनीतिक व्यवस्था एक राज्यविहीन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के जीवन को नैतिक मूल्यों के आधार पर संचालित करता है। रामराज्य के नाम से जानने वाले इस राज्य में व्यक्ति पर नियन्त्रण करने वाली राज्य अथवा सरकार की कोई बाहरी सत्ता नहीं है। पर गाँधीजी ऐसे आदर्श राजनीतिक व्यवस्था को साकार करने की कठिनाइयों से अवगत थे। वैकल्पिक तौर पर उन्होंने एक ऐसी सर्वोदयी राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन किया जो राजनीतिक आध्यात्मिकीकरण, सर्वाधिक रूप से विकेन्द्रीकृत, न्याय, समानता और भृतत्व के भाव पर आधारित है और जो आदर्श स्थिति की ओर बढने के लिए सदैव प्रयासरत है। गाँधीजी की आदर्श राजनीतिक व्यवस्था एक राज्यविहीन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के जीवन को नैतिक मूल्यों के आधार पर संचालित करता है। रामराज्य के नाम से जानने वाले इस राज्य में व्यक्ति पर नियन्त्रण करने वाली राज्य अथवा सरकार की कोई बाहरी सत्ता नहीं है।

गाँधीजी के सर्वोदयी समाज में राजनीति मैंकियावलीवाद अथवा कपट, अवसरवाद, निजी स्वार्थ अथवा भ्रष्टता, शोषण और हिंसा से मुक्त है। इसमें यह सोच सर्वत्र विद्‌यमान है कि अच्छे परिणामो की प्राप्ति के लिए अच्छे व नैतिक साधनों का प्रयोग अपरिहार्य है और इस रूप में साधन व साध्य अभिन्न हैं। धर्म विहीन राजनीति पाप है और आत्मा का हनन करती है। किसी भी प्रकार की राजनीतिक आवश्यकता आपातकाल के तर्क पर अनैतिक साधनों से पूरा नहीं किया जा सकता क्योंकि इसके दूरगामी परिणाम भयावह होते हैं। राजनीति में अत: धर्म को प्रविष्ट कराना आवश्यक है। पर धर्म का अर्थ 'मत' या 'धर्म विशेष' की मान्यता अथवा कोई विशेष पूजा-पाठ अथवा अर्चना की विधि नहीं है अपितु सभी धर्मों द्‌वारा मान्य शाश्वत मूल्यों अथवा उनका सार है। धर्म सत्य तथा अहिंसा पर आधारित एक नैतिक जीवन पद्धति है। इसलिए सर्वोदयी समाज में सहभागिता धार्मिक चेतना तथा धार्मिक प्रयोजन से परिलिक्षित है। सहिष्णुता और धर्म-निरपेक्षता इसके आवश्यक गुण हैं।

गाँधीजी ने व्यैक्तिक जीवन को नैतिक मूल्यों से अनुप्रेरित और अनुशासित करने की ज़रूरत पर बल दिया। ऐसा स्व-शासन ही उनके सपनों का स्वराज है। ऐसे स्वराज में व्यक्ति के वृहत स्वरूप जैसे समूह, समुदाय, समाज और राष्ट्र क्रमश: एक दूसरे से घनिष्ठ और सकारात्मक सम्बन्ध रखते हैं। इस सहअस्तित्व में सभी इकाइयाँ एक दूसरे के हित साधक हैं और विश्व शान्ति और कल्याण के लिए समर्पित हैं।

गाँधीजी की मान्यता थी कि देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहना चाहिए। कर्तव्यों का इमानदारी से निर्वाह न केवल व्यवस्था में न्याय, समानता, स्वतंत्रता, इत्यादि मूल्यों को प्रतिस्थापित करने में सहायक होंगे अपितु अधिकारों को भी सुनिश्चित करेंगे। गाँधीजी का समस्त जीवन, विशेषत: उनका स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, लोकतान्त्रिक मूल्यों के लिए संघर्ष और समर्थन के लिए समर्पित रहा। आजाद भारत के लिए गाँधीजी लोकतान्त्रिक व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने लोकतन्त्र को लोकप्रिय मूल्यों जैसे न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, शान्ति के अनुकूल माना। उनके अनुसार लोकतन्त्र एक ऐसी शासन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक नागरिक स्वतन्त्रता पूर्वक समानता से अपने विचारों और अपनी इच्छाओं को व्यक्त और प्राप्त कर सकते हैं। तदापि उन्होंने ऐसी व्यवस्था में भी अमर्यादित व्यक्तिवादी

आकांक्षाओं को लोकतान्त्रिक पद्धतियों और साधनों से प्राप्त करने का समर्थन नही किया। इसी आधार पर उन्होंने पाश्चात्य लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की कटु आलोचना की।

गाँधीजी सत्ता अधिग्रहण अथवा शक्ति स्वार्थपरता की राजनीति के विरूद्ध थे। यों तो वे आदर्श के तौर पर जन प्रतिनिधियों की शासन व्यवस्था के स्थान पर प्रत्यक्ष प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का समर्थन करते थे। परन्तु भारत में विद्यमान परिस्थितियों की दुर्बलताओं को ध्यान में रखते हुए ऐसे सर्वाधिक रूप से विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था को स्थापित करना चाहते थे जो जन सहभागिता को ज्यादा से ज्यादा संभव बनाते हों। उनके सपनों का भारत ग्राम स्वराज के सिद्धान्तों पर आधारित है। प्रतिनिध्यात्मक शासन जहाँ और जितना भी अपरिहार्य हो वहाँ गाँधीजी ने इस बात को याद रखना जरूरी समझा कि यह ब्रिटिश संसद जैसी संस्था न बन जाए जो प्रतिनिधियों के हाथों की कटपुतली बनकर जन हित और नैतिकता को विस्मृत कर शुद्र दलगत राजनीति पर आधारित मिथ्यावादी और स्वार्थी व्यवस्था बन जाए। आदर्श लोकतंत्र न ही स्वयं की व्यवस्था एवं सत्ता की रक्षा के लिए हिंसा एवं दमन के साधनों का प्रयोग करता है और न ही बहुमत के शासन के उस सिद्धान्त का समर्थन जो विवेक बल की अपेक्षा संख्या-बल को महत्व देते हुए अल्पसंख्यकों की भावनाओं का दमन करके अपने मत और हितों का संरक्षण करता है। इसके अन्तर्गत सभी सबल व दुर्बल के हितों की रक्षा हो और विकास का समान सुअवसर मिलता रहे। राजनीति का संचालन सत्य व अहिंसा के आधार पर ही किया जाए, हिंसा का प्रयोग नहीं किया जाए।

सर्वोदयी समाज में गाँधीजी चाहते थे कि राजनीति राष्ट्र प्रेम की भावना से प्रेरित हो। देश की सभ्यता और संस्कृति के प्रति आदर भाव एवं अपनी अस्मिता और देश की रक्षा सभी नागरिकों का कर्तव्य है। परन्तु ऐसा राष्ट्र प्रेम अन्तर्राष्ट्रीय सदभाव और शान्तिमय सहअस्तित्व का विरोधी नही है। इसमें ऐसी संकीर्णता के लिए कोई स्थान नहीं है जो स्वयं अपने देश की अलावा अन्य देशों के कल्याण की भावना को समाहित नहीं करती हो या फिर अपने देश को अन्य सभी देशों से श्रेष्ठ समझने की प्रवृत्ति रखता हो या अपने राष्ट्र के हितों की पूर्ति के लिए अन्य राष्ट्रों को क्षति पहुंचाने की लालसा रखता हो। गाँधीजी के मतानुसार राष्ट्र प्रेम अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना की पूर्व शर्त है और स्वदेश के प्रति प्रेम न केवल सभी साथी मनुष्यों के प्रति प्रेम है, अपितु यहाँ अन्ततः सार्वभौम प्रेम के उच्चतम शिखर तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः गाँधीजी चाहते थे कि सर्वोदयी समाज के नागरिक सम्पूर्ण विश्व को एक विशाल मानव परिवार मानकर सभी के कल्याण के लिए सदैव तत्पर रहें।

गाँधीजी मानते हैं कि राज्य उन बाधाओं का हटाने का काम भी करे जो व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास में बाधक है। इस दृष्टि से आम नागरिकों को समाजकंटकों की हिंसा से सुरक्षा प्रदान करना शासन का महत्वपूर्ण दायित्व है। इसलिए न्यूनतम पुलिस का प्रबन्ध भी आवश्यक है। परन्तु इनका परम्परागत स्वरूप बदला हुआ होगा। पुलिस का संगठन अहिंसक स्वयं सेवकों के द्वारा होगा जो हिंसा और दमन विहीन प्रकृति के होंगे और स्वयं को जन सेवक समझेंगे। इनका मुख्य कार्य डकैतों और लुटेरों से जनता को सुरक्षा प्रदान करना होगा। जनता उन्हें स्वाभाविक रूप से सहयोग देगी।

ऐसी व्यवस्था में भी गाँधीजी ने संघर्षो के उत्पन्न होने की संभावना को नहीं नकारा। मतभेद और संघर्ष की स्थिति में इनके समाधान के लिए गाँधीजी ने सत्य, अहिंसा और अनेक अन्य नैतिक मूल्यों पर आधारित सत्याग्रह का प्रयोग करने का उपदेश दिया। क्योंकि गाँधीजी मानते थे कि पवित्र साधन ही पवित्र उद्धेश्य को सुनिश्चित कर सकते हैं इसलिए उनकी दृष्टि में नैतिक मूल्यों की अवहेलना कर किसी भी अन्य विधि का प्रयोग न ही संघर्ष का प्रभावी समाधान कर सकता है और न ही दीर्घगामी शान्ति, सौहार्दपूर्ण समाज और प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

14.6.5 सामाजिक आयाम

महात्मा गाँधी के नेतृत्व का उल्लेखनीय पक्ष यह भी है कि उन्होंने सामाजिक सुधारों को राजनीतिक आन्दोलनों के कार्यक्रमों के साथ जोडा। उनके प्रभावशाली नेतृत्व का एक प्रमुख आधार उनकी भारतीय समाज, परम्परा और संस्कृति की समझ, उसकी उन्नति के बारे में सकारात्मक सोच और भरसक प्रयास थी। उनका दृष्टिकोण संकीर्ण व क्षेत्रीय नहीं था, राष्ट्रीयता तक सीमित भी नहीं था वरन् वह विशद् और अन्तर्राष्ट्रीय था। प्रत्येक समस्या का गहनतम समझ विकसित करना, उनका स्थायी समाधान ढूँढना और समाज के उन्नयन के लिए दृढ संकलपित होकर निस्वार्थ भाव से कार्य करना गाँधीजी की प्रतिभा और महानता का महत्वपूर्ण पक्ष था।

गाँधीजी के अनुसार सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और इसलिए उन्होंने जब भी किसी समस्या के निदान की बात की और प्रयास किया तो वह समग्रता का भाव अपनाये हुआ था। वस्तुत: उन्होंने सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन को एक दूसरे का अनुपूरक मानकर सामाजिक सुधारों के कार्यों और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रयत्नों को साथ-साथ चलाने की आवश्यकता पर बल दिया। गाँधीजी ने स्वीकारा कि भारतीय समाज अनेक बुराइयों से ग्रसित है। उनका कहना था कि यदि भारत को अपना खोया हुआ गौरव पुन: प्राप्त करना हो और वह सम्मानपूर्ण स्थान लेना चाहता हो तो उसकी सामाजिक समस्याओं का समाधान तत्काल होना चाहिए।

गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत आदर्श सामाजिक व्यवस्था को एक ऐसी समुदायिक जीवन आधारित व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है जिसमें सत्य, अहिंसा, परोपकार, आत्मनिर्भरता, परस्पर सम्मान की भावना, इत्यादि जैसे मूल्य व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन का अभिन्न अंग है। यह व्यवस्था न्याय, समता, स्वतंत्रता और परस्पर सहयोग पर आधारित है। यह शोषणमुक्त समाज है जिसमें धार्मिक सहिष्णुता और सौहार्द सर्वत्र विद्यमान हैं। इसमें वर्ण व्यवस्था है, परन्तु उसमें कालान्तर में आए विकृतियों जैसे अस्पृश्यता को दूर किया गया है। सभी वर्णो के बीच आपस में समानता और आपसी सहयोग का भाव निहित है। सामाजिक महत्व की दृष्टि से सभी कार्य को समान माना जाता हैं और किसी कार्य को या उसके करने वाले को छोटा नहीं समझा जाना चाहिए। एक नि:शक्त व्यक्ति के कार्य का उतना ही महत्व है जितना कि एक सवर्ण व्यक्ति के कार्य हो सकता है। अत: सामाजिक जीवन में सभी को समान अधिकार प्राप्त है और सभी आपसी सहयोग की भावना से समुदायिक जीवन व्यापन करते है।

गाँधीजी की आदर्श व्यवस्था में साम्प्रदायिक एकता को भी बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। यह 'सर्वधर्म समभाव' के विचार एवं नीति और साम्प्रदायिक एकता व सद्भाव पर आधारित है। आदर्श व्यवस्था यह अपेक्षा करता है कि प्रत्येक समुदाय के लोग अपने सीमित तथा संकीर्ण हित को त्याग कर राष्ट्रीय और वैश्विक हित के बारे में सोचें एवं कार्य करें। धार्मिक सहिष्णुता को सौहार्दपूर्ण वातावरण इस व्यवस्था के अभिलक्षण हैं। धर्म एवं संस्कृति की रक्षा का अधिकार सभी को प्राप्त हैं।

आदर्श व्यवस्था में स्त्रियों की स्थिति में अमूलचूल परिवर्तन है। इसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अपनी शैक्षणिक, बौद्धिक और नैतिक उन्नति के अवसर प्राप्त हैं। स्त्रियाँ पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। यह नारी को व्यापक स्वतन्त्रता प्रदान करके उनके सर्वागीण विकास के मार्ग में आने वाली समस्त बाधाओं को तत्काल दूर करने के लिए प्रतिबद्ध है। इसमें पुरुष अपनी पत्नी से स्वंय के प्रति स्वामी-भाव की अपेक्षा न रखकर मित्र-भाव रखने की अपेक्षा करता है। पुरुष (पति) द्वारा अर्जित धन में स्त्री (पत्नी) का समान अधिकार है और परिवार में पुत्रों के समान पुत्रियों का भी लालन-पालन किया जाता है और परिवार की सम्पत्ति में पुत्रों के समान पुत्रियों का भी समान अधिकार माना जाता है। इन सब के लिए चरित्र निर्माण की नितांत आवश्यकता पर बल देते हुए आदर्श व्यवस्था मे नई शिक्षा व्यवस्था, जिसे "नई तालीम" अथवा "बुनियादी शिक्षा" की व्यवस्था की गई है।

14.8 सारांश

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता की कटु अलोचना करके इसे व्यक्ति के सर्वागीण विकास और कल्याण के लिये अनुपयोगी माना। विश्व में फैले अनेक बुराइयों के लिए गाँधीजी ने इसे दोषी ठहराया। गाँधीजी के लिए मानव अस्तित्व की कुछ आध्यात्मिक प्राथमिकतायें थी जिन्हें मनुष्य कुछ नैतिक मूल्यों को आत्मसात करते हुए प्राप्त कर सकता है। गाँधीजी का मानना था कि आधुनिकता की उपभोगतावादी और संकीर्ण व्यक्तिवादी सोच ने व्यक्ति को पथभ्रष्ट करके एक विकट परिस्थिति उत्पन्न की है। सर्वत्र नैतिक मूल्यों का क्षय और हिंसा का बढ़ता हुआ प्रयोग दिख रहा है जो मानव अस्तित्व के लिए घातक है। परन्तु मनुष्य को नैसर्गिक रूप से अच्छा मानते हुए गाँधीजी एक आशावादी सोच प्रस्तुत करते हैं जिसमे वे इस बात पर बल देते हैं कि व्यक्ति यदि स्वधर्म की पालना करे तो इस विकट परिस्थिति से स्वयं और विश्व को बचा सकता है। ऐसे युगधर्म की गाँधीजी की सोच किसी विशेष धर्म की या उसके पूजा-अर्चना की विधि की संकीर्णताओं से मुक्त है। धर्म सम्बन्धी समग्र दृष्टि अपनाते हुए गाँधीजी कुछ शाश्वत मूल्य जैसे सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, इत्यादि को व्यवहारिक जीवन में अपनाने की बात करते हैं। इन्ही आधर पर गाँधीजी एक वैकल्पिक व्यवस्था का प्रतिपादन करते हैं जिसे विभिन्न नामों से जाना जाता है - राम राज्य, स्वराज्य और सर्वोदय। यह आदर्श न केवल वर्तमान की विकट परिस्थितियों और मनुष्य का भटकाव समझने में मदद् करता है अपितु एक अधिक सुन्दर, प्रगतिशील, शान्तिमय उज्ज्वल विश्व के सपने को साकार करने का मार्ग दिखता है।

14.9 अभ्यास प्रश्न

1. आधुनिक सभ्यता की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. गाँधीजी द्वारा आधुनिक सभ्यता की आलोचना की विवेचना कीजिए।
3. मानव अस्तित्व सम्बन्धी गाँधीजी के विचार पर प्रकाश डालिए।
4. विकास का पूँजीवादी मॉडल पर प्रकाश डालिए।
5. गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत सच्ची सभ्यता के गुणों की विवेचना कीजिए।
6. गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत सर्वोदय समाज की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

14.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गाँधी, एम. के., सत्य के साथ प्रयोग अथवा आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 2008
2. गाँधी, एम. के., हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
3. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
4. धवन, गोपी नाथ, दी पोलिटिकल फिलोसोफी आफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
5. भट्टाचार्य, बुद्धदेव, एवोल्यूशन ऑफ द पोलिटिकल फिलासफी ऑफ गाँधी, कलकत्ता बुक हाऊस, कलकत्ता, 1969
6. पटेल एम. एस., दी एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी, नवजीवन पब्लिषिंग हाउस, अहमदाबाद, 1958
7. चटर्जी, मारग्रेट, गाँधी एण्ड द चैलेंज ऑफ रिलिजियस डाइवर्सिटी, प्रोमिला - कम्पनी, नई दिल्ली, 2005
8. वेबर थॉमस, गाँधी एज डिसीप्लिन एण्ड मेन्टर, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2007

इकाई - 15

सर्वोदय की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 सर्वोदय की अवधारणा
15.3 सर्वोदय के आयाम
15.3.1 नैतिक आयाम
15.3.2 आर्थिक आयाम
15.3.3 राजनीतिक आयाम
15.3.4 सामाजिक आयाम
15.3.5 धार्मिक आयाम
15.4 मानव समाज के विकास की अवस्था
15.5 सर्वोदय का व्यावहारिक प्रयोग
15.5.1 भूदान
15.5.2 ग्रामदान
15.6 सर्वोदय की प्रासांगिकता
15.7 सारांश
15.8 अभ्यास प्रश्न
15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

15.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में महात्मा गाँधी के महत्वपूर्ण सिद्धान्त सर्वोदय के बारे में बतलाने का प्रयास किया है। सर्वोदय एक नवीन समाज निर्माण का नवीन विचार है। जो पूरी तरह से सत्य अहिंसा, सत्याग्रह पर आधारित है। जिसमें समाज के सभी नागरिकों के लिए समानता, स्वतंत्रता, भाईचारे की भावना होगी, साथ ही सभी नागरिकों में सहयोग, समन्वय, सदाचार, सामंजस्य, सद्भाव रहेगा, वर्ग संघर्ष की जगह वर्ग-समन्वय होगा। आर्थिक व्यवस्था व राजनीतिक व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण होगा, जिसके परिणामस्वरूप समाज में शोषण, हिंसा व तानाशाही की सम्भावनाऐं कम से कम होंगी। गाँधीजी का यह मानना है कि आर्थिक केन्द्रीकरण शोषण को बढ़ावा देता है और राजनीतिक केन्द्रीयकरण हिंसा को बढ़ावा देता है। गाँधीजी समाज से शोषण व हिंसा को समाप्त करके समतामूलक, न्यायपूर्ण संतुलित समाज की स्थापना करना चाहते थे। इस इकाई का उद्देश्य है :-

- महात्मा गाँधी के महत्वपूर्ण सिद्धान्त सर्वोदय की जानकारी देना।
- सर्वोदय की बहुआयामीय अवधारणा को स्पष्ट करना।

- सर्वोदय एक मानव समाज की जीवन्तता एवं निरन्तरता का संकल्प है उसका विवेचना करना।
- मानव समाज की समस्याओं से मुक्ति दिलाने वाली अन्य विचारधाराओं की जानकारी देना। तथा
- महात्मा गाँधी के बाद सर्वोदय के व्यावहारिक प्रयोग की जानकारी देना।

15.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दो विचारधाराओं- पूंजीवादी एवं साम्यवादी का उदय हुआ। 1990 तक दोनों विचारधाराओं की अपनी-अपनी विशेषताऐं थी। 1990 के बाद साम्यवादी विचारधारा का अवसान हो गया। परन्तु कोई सी भी विचारधारा मानव को कष्टों से मुक्ति नहीं दिला पायी बल्कि मानव की समस्याऐं अपने नये-नये रूप में समाज को त्रस्त कर रही है। तदन्तर विश्व में वैश्वीकरण की विचारधारा का उदय हुआ और सिद्धान्त: यह माना गया कि यह विचारधारा विश्व मानव समाज को सभी प्रकार की समस्याओं से मुक्ति दिलाकर स्वतन्त्रता, समानता और मानवीय सुरक्षा देने का माध्यम बनेगी। विश्व समाज के सभी राष्ट्रों को समानता देने का प्रयास किया जायेगा। मूलत: यह विचारधारा पूंजीवादी देशों के द्वारा आरम्भ की गयी थी। व्यवहार में, वैश्वीकरण दुधारी तलवार साबित हो रही है। एक तरफ तो समाज में ऐसा छोटा वर्ग बन रहा है जो साधन सम्पन्न व समस्त सुविधाओं का उपभोग कर रहा है। दूसरी तरफ समाज का बड़ा भाग जो आधारभूत सुविधाओं से वंचित है अर्थात् समाज में न्याय की स्थापना नहीं हो सकी थी और न ही समाज में से शोषण का उन्मूलन हो सका। उससे समाज में समानता की जगह विषमता बढ़ रही है। सम्पूर्ण विश्व एक गाँव में परिवर्तित होने के परिणामस्वरूप एन्टरटेनमेन्ट चैनलों के माध्यम से समाज के युवा वर्ग के लिए जो सांस्कृतिक डिनर परोसा जा रहा है वह दुर्भाग्यपूर्ण है अमानवीय है। इससे समाज में नैतिकता का पतन हुआ है, समाज का स्वच्छ व सम्मानीय एवं गरिमापूर्ण ताना-बाना छिन्न-भिन्न होता हुआ दिखायी दे रहा है। अब सम्पूर्ण मानव समाज इन बुराईयों व समस्याओं से मुक्ति दिलाने के लिए गाँधीवादी विचारधारा की ओर बड़ी आशा भरी नजरों से देख रही है। नैतिकता व सामाजिकता मानव समाज का आधार है।

मोहनदास करमचन्द गाँधी जिन्हें राष्ट्रपिता कहा जाता है। केवल एक राजनीतिक नेता ही नहीं थे बल्कि एक महान् समाज सुधारक भी थे। रविन्द्र नाथ टैगोर ने उन्हें 'महात्मा' का नाम दिया। सुभाष चन्द बोस उन्हें ' राष्ट्रपिता' के नाम से पुकारते थे। वे भौतिक रूप से इस दुनिया में नहीं है फिर भी उनकी शिक्षाऐं एवं उनके जीवन के सिद्धान्त आज समस्त मानव समाज विशेष रूप से भारतीयों के राजनीतिक-सामाजिक, आर्थिक जीवन में विशेष महत्व रखते है। उनका मानव समाज के लिए बहुत बडा योगदान है।

गाँधी दर्शन केवल भारतीय ही नहीं है, इसका स्वरूप सार्वदेशिक, सावभौमिक तथा अधुनातन शाश्वत एवं सनातन है। यह न तो भूगोल की मर्यादाओं में कैद है, न इतिहास और युग की सीमाऐं इसे बाँध सकी हैं, किसी जाति विशेष का बन्दी नहीं, न किसी विशेष समुदाय का पक्षपाती है। यह विरोधाभास का निराकरण कर सामंजस्य बनाने की उनकी वैचारिक साधना

ही रही है। गाँधी ने जीवन भर नैतिक अनुशासन का पालन करते हुए सत्य की साधना की। वे जीवन भर मूल्यों से जुड़े रहे। गाँधीजी ने सत्य को ईश्वर माना। गाँधीजी के अनुसार मनुष्य का उच्चतम उद्देश्य ईश्वर से तादात्म्य करना है और उसके सारे कार्य- सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक इसी परमोद्देश्य से अनुप्रेरित होने चाहिए। उन्होंने सत्य को ही ईश्वर मानकर तथा अपने अन्तःकरण में उसकी अनुभूति प्राप्त कर इसी अद्भुत सत्य की शक्ति द्वारा समाज में व्याप्त 'अर्द्धसत्यों ' के उन्मूलन का प्रयास किया । गाँधी ने सत्य को मात्र एक नैतिक मूल्य ही नहीं अपितु आत्म बल के रूप में 'शक्ति स्वरूप ' माना क्योंकि सत्य ही भौतिक जगत का मूल आधार है और उसका नियामक हैं।

15.2 सर्वोदय की अवधारणा

गाँधीजी की विचारधारा का आधार भारतीय संस्कृति की मूल मान्यताऐं रही। 'सर्वे भवन्तु सुखिन: ' भारतीय संस्कृति की मूल मान्यता है। इस विचार को विकसित कर गाँधी ने ' सर्वोदय' का नाम दिया। इसमे "सर्व मूते हिते रता:' की भारतीय कल्पना, सुकरात की ' सत्य साधना' बाइबिल से प्रभावित रस्किन की 'अन टू दिस लास्ट' की अवधारणा सब एक साथ मिलकर समन्वित हैं। व्यक्ति का श्रेय समष्टि के श्रेय में ही निहित है। व्यक्ति का समाज से अलग अस्तित्व सम्भव नहीं है। व्यक्ति समाज में ही रहता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' के नीति वाक्य यथार्थ है। सबके उदय में मेरा भी उदय है। चरित्र और नीति का आरम्भ सामाजिकता से होता है। यहीं पर सर्वोदय विचार उपयोगितावादी दर्शन की संकीर्ण मर्यादाओं से आगे आता है। शंकर राव देव के अनुसार " अहिंसा और सत्य के आधार पर स्थापित वर्गविहीन व जातिविहीन, समाज जिसमें किसी का कोई शोषण नहीं कर सकता और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को सर्वागीण विकास करने के अवसर तथा साधन प्राप्त होंगे, ऐसे समाज की स्थापना सर्वोदय समाज का साध्य है। "

रस्किन की पुस्तक " अनटू दिस लास्ट" के अध्ययन से ही गाँधी ने सर्वोदय की संकल्पना को स्पष्ट किया-

1. सबके भले में अपना भला समाया हुआ है।
2. वकील और हज्जाम दोनों के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए।
3. सादा, मेहनतकश किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

इन सिएद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिए 'फीनिक्स आश्रम' की स्थापना की जिसमें श्रम साध्य जीवन व्यतीत करने का विचार निहित था। गाँधीजी ने रस्किन की पुस्तक का " सर्वोदय" के नाम से रुपान्तरण भी किया है।

(1) सबके भले में अपना भला समाया हुआ है इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार मार्क्स कहता है कि व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित दोनों (शोषक और शोषित) में द्वन्द्व की स्थिति है परन्तु गाँधीजी के दर्शन में व्यक्तिगत हित ओर सामाजिक हित में कोई द्वन्द नहीं है, दोनों में सामंजस्य व समन्वय की भावना है। जब व्यक्ति समाज के हित के बारे में सोचेगा तो अपना भला तो स्वाभाविक ही हो जायेगा क्योंकि

गाँधीजी अराजकतावादियों की तरह व्यक्ति को पूर्णतया स्वतन्त्र व अकेला नहीं मानते वरन् व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी मानते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थों एवं सामाजिक हितों में सामंजस्य रखना सर्वोदय का उद्देश्य है। सर्वोदय का यह विचार समाजवादियों के नजदीक दिखाई देता है।

(2) सर्वोदय का दूसरा सिद्धान्त जो गाँधी ने बताया है कि वकील और हज्जाम के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए, इसका अर्थ यह है कि सर्वोदय श्रम पर आधारित श्रम साध्य समाज है। श्रम चाहे किसी प्रकार का हो सभी का समान महत्व है। इसका अर्थ यह हुआ कि समाज में हर व्यक्ति की उपयोगिता है, हर व्यक्ति के कार्य का समान महत्व है। चाहे वह शारीरिक कार्य हो या बौद्धिक कार्य हो। बौद्धिक कार्य (ज्ञान) और शारीरिक कार्य (कर्म) के बीच किसी प्रकार का द्वन्द्व नहीं है एक को ऊँचा और दूसरे का नीचा समझना सर्वोदय के सिद्धान्त के विपरीत है।

इसका दूसरा सिद्धान्त सहयोग का है "सभी कामों को समाज में महत्व तब तक नहीं मिल सकता। जब तक परस्पर सहयोग की भावना न हो। प्रतियोगिता की भावना से आक्रान्त समाज सर्वोदय की संकल्पना को स्वीकार नहीं कर सकता, प्रतियोगिता पर आधारित समाज में शोषण की व्यवस्था कायम रहती है। इस प्रकार के दृष्टिकोण से समाज में न तो समभाव आ सकता है और न ही सर्वोदय की संकल्पना सार्थक हो सकती है। गाँधी ने अर्थशास्त्र के माँग और पूर्ति के सिद्धान्त को चूहों और भेडियों के स्वभाव का सिद्धान्त माना है। इसलिए गाँधी ने श्रम की समानता को महत्व दिया है। गाँधी की व्यवस्था में कोई ऊँचा और कोई नीचा नहीं है, सभी बराबर है। आजीविका कमाने का हक सभी को देना चाहते हैं।

(3) सर्वोदय का तीसरा सिद्धान्त-सादा, मेहनत, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है। सर्वोदय सिद्धान्त व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को कम करने व समाज के हर व्यक्ति की निर्बाध इच्छाओं की पूर्ति सम्भव नहीं है। इसके लिए उन्हें अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण लगाना होगा और श्रम करना ही पड़ेगा। तभी समाज में सहयोग पर आधारित जीवन सरल और श्रम साध्य रह पायेगा। जीवन में सरलता, सदचरित्रता स्वः नियन्त्रित, स्वः नियमित और स्वःशासित होना ही सर्वोदय के मुख्य आधार है।

सर्वोदय का अर्थ 'सर्वांगीण विकास' है इसमें न तो भौतिकता की अवहेलना है, न आध्यात्मिकता की उपेक्षा। यह सन्यासवाद व भोगवाद के बीच की प्रतिपद्वा है। ' सर्वे भवन्तु सुखिन', सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु के बोध वाक्य में मानो मानसिक (सुखिन), शारीरिक (निरामया) एवं आध्यात्मिकता (श्रेय) सभी का समन्वय है।

15.3 सर्वोदय के आयाम

सर्वोदय की अवधारणा के निम्नलिखित आयाम हैं-

15.3.1 नैतिक आयाम

नैतिकता हमारे जीवन का आधार है। व्यक्ति एवं समाज का अस्तित्व तथा प्रगति नैतिकता पर निर्भर करती है। नैतिकता ही हमारे अन्दर परोपकार, शान्ति, सुख और सामंजस्य को प्रोत्साहित करती है। सभी चाहते हैं कि विश्व शान्ति, विश्व-बच्धुत्व, समानता, प्रजातन्त्र, सत्य, प्रेम और कल्याण सर्वत्र कायम रहे। इसके लिए साध्य-साधन की पवित्रता आवश्यक है। डॉ. रामजीसिंह का मानना है कि आज साधन की समस्या प्रधान बन गयी है और लगता है कि बीसवीं सदी की मानवीय सभ्यता का इतिहास साध्य की सिद्धि के लिए साधनों के उपयोग का इतिहास होगा। दुनिया के सभी कर्मो में सदाचार एक आवश्यक अंग माना गया है। नैतिक नियमों का पालन करके ही हम सुखी होने की आशा कर सकते हैं। भारतीय नीतिशास्त्र में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को प्राथमिक सदगुण माना है। सर्वोदय धारणा का नैतिक आयाम मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास व आत्मिक उत्थान के प्रति सजग बनाता है।

गाँधीजी ने साधनों की पवित्रता को अत्यावश्यक माना है। उन्होंने लिखा है: " पश्चिम में लोगों की आम राय है कि मनुष्य का एकमात्र कर्तव्य सुख की वृद्धि करना है और सुख का अर्थ केवल शारीरिक सुख और आर्थिक उन्नति माना जाता है। इस सुख की प्राप्ति में नैतिकता की अवहेलना की जाती है। शारीरिक और आर्थिक लाभ की यह एकांगी खोज, जो नैतिकता की अवहेलना करके की जाती है, ईश्वरी कानून के विरूद्ध है जैसा कि पश्चिम के कुछ बुद्धिमान मनुष्यों ने बता दिया है। इनमें से एक जॉन रस्किन था। उसने अपने पुस्तक " अन टू दिस लास्ट" नामक पुस्तक में दावा किया है कि मनुष्य तभी सुखी हो सकते हैं, जब वे नैतिक कानून का पालन करें।

साधन-साध्य संबंध की व्याख्या गाँधी के साधन-साध्य विचार बीज तत्व गीता का निष्काम कर्म है जिसमें फल की लालसा की अपेक्षा कर्तव्य के निर्वाह पर बल गया दिया गया है। गाँधी की योजना में साध्य के अंतर्गत लक्ष्य और परिणाम दोनों का समावेश है। इन दोनों को गाँधी सत्य की साधना के दो अनिवार्य पक्ष मानते हैं, क्योंकि परम तत्व के रूप में सत्य के अंतर्गत आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार की सत्ता का समावेश हो जाता है। अत: गाँधी के विचार में सत्य साधन भी और साध्य भी है। नीतिशास्त्र के कुछ विचारक सत्य पर ही विशेष बल देते हैं। साधन की शुचिता के प्रति उनका कोई आग्रह नहीं है। उनके लिए मुख्य बात कार्य की निष्पत्ति है। इन विचारकों के अनुसार साध्य की पवित्रता साधन को भी पवित्र बना देती है। गाँधी को यह विचार मान्य नहीं है। " दुनिया के सभी में धर्मो में सदाचार एक आवश्यक अंग माना गया है परन्तु धर्मो के अलावा हमारी साधारण समझ भी नैतिक नियमों के पालन की आवश्यकता बताती है। उनका पालन करके ही हम सुखी होने की आशा कर सकते हैं। "

15.3.2 आर्थिक आयाम

सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक जीवन का प्रतीक है वह सभी लोगों का सामान्य रूप से कल्याण चाहता है। गाँधीजी की अहिंसक अर्थव्यवस्था वर्गविहीन, शोषण विहीन व विकेन्द्रित है

जो मानवीय सहयोग व सद्भाव द्वारा संचालित होती है, न कि संघर्ष एवं प्रतियोगिता द्वारा। अस्तेय एवं अपरिग्रह व्रत का पालन किया जाता है। अत: स्थानीय उत्पादन, स्थानीय उपयोग और विवेक सम्मत वितरण इस मानवीय अर्थव्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्त है।

स्वदेशी की धारणा आर्थिक चिन्तन को गाँधी की मौलिक देन है। यद्यपि इसका आधार गीता का स्वधर्म और बाईबिल का " लव दाई नेबर" कहा जा सकता है तथापि इस विचार में मानववादी आर्थिक दर्शन को एक मौलिक आस्था में रूपान्तरित करने का श्रेय गाँधी को ही दिया जा सकता है। गाँधी ने स्वदेशी का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया था इसे मात्र अर्थशास्त्रीय धारणा के अंतर्गत नहीं रखना चाहते थे। व्यापक अर्थ में यह ऐसी धारणा है जिसकी परिधि में नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भाषायी, धार्मिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के अर्थ समाहित है। स्वदेशी का अर्थ गाँधी के लिये व्यक्ति द्वारा उसके समीपस्थ वातावरण के प्रति निज धर्म का निर्वाह है। इस व्रत के अनुसार अपने देश के धर्म इसकी भाषा, राजनीतिक पद्धति और उपयोग भी वस्तुओं को अंगीकार करना आवश्यक माना जाता है। गाँधी के मत में " स्वदेशो एक सार्वभौम धर्म है।"

"स्वदेशी व्रत के अनुसार सभी प्रकार के विदेशी सामानों का त्याग न कर उन्हीं वस्तुओं का त्याग किया जाता है जिनका उत्पादन अपने देश में होता है तथा जिनके उपयोग के बिना हमारे समाज के कुछ अंग अपनी आजीविका खो देते हैं। हम अपनी आवश्यकता की चीजों को विदेशों से मंगा सकते हैं, विदेशी पूंजी और प्रतिभा का प्रयोग कर सकते हैं, शर्त केवल इतनी ही है कि उनसे अपने देश के नागरिकों की प्रगति अवरूद्ध न हो और उसका नियंत्रण भारत के द्वारा हो।"

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गाँधी का स्वेदशी व्रत संकीर्णता, घृणा, स्वार्थ, प्रतिद्वंद्विता और मौलिकता आदि दोषों से मुक्त है। यह अहिंसा और प्रेम का ही पर्याय है। यह हमारे स्वभाव में व्याप्त है, परन्तु अज्ञानतावश हम स्वार्थ और भौतिकता में पड़कर उसका उल्लंघन करते है। व्रत के द्वारा इसे हम अपने जीवन में उतार सकते है। इसके पालन से एक ओर अपनी संकल्प शक्ति बढ़ती है, दूसरी ओर समाज की अर्थव्यवस्था टिकाऊ बनी रहती हैं।

ट्रस्टीशिप - सर्वोदयवादी व्यवस्था में ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त, महत्वपूर्ण स्थान रखता है। गाँधीजी का विचार है कि " मुझे जानना चाहिए कि सारी सम्पत्ति मेरी नहीं है जो मेरी है वह केवल व्यक्तिगत कार्यों के लिए है। बाकी बची मेरी सम्पत्ति समाज की है और समाज के कल्याण के काम आनी चाहिए। सम्पत्ति का उपयोग सबके हित के लिए करें। गाँधीजी ने पूंजीपतियों से कहा कि आप सभी साधनों से करोड़ों रुपये कमाईयों परन्तु आपको यह समझना चाहिए कि आपकी सम्पत्ति केवल आपकी नहीं है। वह आपकी वास्तविक आवश्यकताओं के लिए है बाकी समाज के लिए है। गाँधीजी चाहते हैं कि धनी एक न्यासी की तरह व्यवहार करें। ट्रस्टीशिप के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी का विचार है कि वे भागवत गीता का उपदेश उस व्यक्ति के लिए देते हैं जो मुक्ति चाहते हैं उन्हें एक न्यासी की तरह काम करना चाहिए। ईशोपनिषद में भी ऐसा ही विचार है। ट्रस्टीशिप का आधार तीन गाँधीवादी अवधारणायें है- अहिंसा, स्वराज्य और समता। ये तीनों ही आपस में एक दूसरे से सम्बद्ध है।

के.जी. मशरूवाला ने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताऐं इस प्रकार बताई है-

1. व्यक्तिगत और अ-व्यक्तिगत सम्पत्ति में कोई भेद नहीं है।
2. सारी सम्पत्ति न्यास की तरह होनी चाहिए।
3. सम्पत्ति में केवल भौतिक सम्पत्ति ही नहीं बल्कि अ-भौतिक सम्पत्ति भी शामिल है।
4. सम्पत्ति पर भगवान का स्वामित्व होना चाहिए।
5. सम्पत्ति से समाज के सभी लोगों को लाभ मिलना चाहिए।

सम्पत्ति के उत्पादन और वितरण के सम्बन्ध में तीन विचार माने जाते हैं।

व्यक्तिवादी पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन एवं सम्पत्ति पर व्यक्ति का अधिकार व स्वामित्व होता है। जिसमें व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार सम्पत्ति का उपार्जन एवं संग्रह करने का अधिकार होता है। इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था मांग और पूर्ति के नियम पर आधारित होती है। जिसमें प्रतिस्पर्धा उपनिवेशवाद, अमीर और गरीब के बीच विषमता, शोषण और स्वार्थपरता होती है परन्तु इसकी मुख्य विशेषता है- व्यक्ति और स्वतन्त्रता।

समाजवादी- समष्टिवादी विचार में उत्पादन और वितरण के साधनों पर व्यक्ति के अधिकार व स्वामित्व की जगह समाज व राज्य का अधिकार व स्वामित्व होता है। समाजवादी विचार में व्यक्तिगत स्वामित्व को शोषण का कारण मानता है इसलिए उत्पादन और वितरण के कार्यों को राज्य के हाथों में सौंपता है। आर्थिक विषमता को मिटाने के लिए हिंसा का भी सहारा लिया जाता है जो समस्या का वास्तविक और उचित समाधान नहीं है। इसकी मुख्य विशेषता है कि राज्य सम्पत्ति का वितरण सम्पूर्ण समाज में करना चाहता है इसमें व्यक्ति की अस्मिता नहीं रहती है, वह एक यन्त्रवत जीवन व्यतीत करता है।

इन दोनों से अलग एक तीसरे प्रकार का एक दार्शनिक दृष्टिकोण भी है। जिसमें आर्थिक जीवन को तिरस्कृत कर परलोक जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा है वास्तव में वह पलायनवादी विचार है जिसका आधार सन्यासवाद है। इस प्रकार के विचार में सरल और त्यागमय जीवन को ही उचित समझा जाता है। इस प्रकार ट्रस्टी में सारी अच्छाईयों के बावजूद सामाजिक और भौतिकवाद का वास्तविक तिरस्कार है।

गाँधीजी ने ऊपर के तीनों विचारों के दोषों का परित्याग कर तीनों विचारों की अच्छाइयों को मिलाने का प्रयास किया है। इस धारणा में गीता के अपरिग्रह और समन्वय भावना है। यह अमीरों और गरीबों के बीच विषमता को मिटाने का अहिंसक समाजवाद है। इसके द्वारा पूंजीपति को सुधार एक अवसर प्रदान किया जाता है।

गाँधीजी का मानना है कि पूंजीपतियों का अपनी सम्पत्ति पर स्वामित्व उनके हाथों में रहे जिससे सम्पत्ति का अधिक से अधिक उत्पादन की प्रेरणा उन्हें मिलेगी और उन्हें संतोष भी रहेगा लेकिन वे इसका उपयोग समाज के कल्याण के लिए करेगा। गाँधीजी व्यक्तिगत सम्पत्ति को शोषण का कारण मानते हैं। गाँधीजी ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के सम्बन्ध में ट्रस्टीशिप का एक क्रानितकारी सिद्धान्त दिया है वे व्यक्तिगत सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व के बिना एक आदर्श समाज की स्थापना का प्रयास करते हैं। वे व्यक्तिगत सम्पत्ति को रखते हैं और उसकी बुराईयों को अहिंसा और सत्य के साधनों के माध्यम से दूर करना चाहते हैं। इसलिए उनका विचार व्यक्तिगत सम्पत्ति के सम्बन्ध में एक सम्पत्ति को न्यास समझनी चाहिए। उनका आदर्श समाज जिसमें समाज के सभी सदस्यों की आवश्यकता की पूर्ति होती है, धनी व्यक्ति

अपनी सम्पत्ति को सभी के कल्याण के लिए न्यासी की तरह व्यवहार करेंगे जिसमें व्यक्ति स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण स्थान माना है। गाँधीजी ने मानव के भौतिक पक्ष की जगह आध्यात्मिक पक्ष पर अधिक बल दिया है।

गाँधीजी के अनुसार संसार की सभी वस्तुओं का वास्तविक मालिक ईश्वर है। जिसने इसका सृजन किया है। "सम्पत्ति सर्वे रघुपति के अही।" "सर्व भूमि गोपाल की"। उसने विश्व का सृजन किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं किया है। वह सर्व शक्तिमान होते हुए भी संग्रह नहीं करता है, रोज का रोज करता है। गाँधीजी का यह दृढ़ विश्वास है कि समाज में आर्थिक विषमता, प्रतिस्पर्धा, शोषण का अन्त हृदय परिवर्तन, विचार परिवर्तन, स्थिति परिवर्तन से ही किया जा सकता है न कि बल पूर्वक हिंसा के द्वारा।

अत: गाँधीजी यह मानते हैं कि अहिंसक साधनों और नीतिबल पर आधारित हृदय परिवर्तन और विचार परिवर्तन के बिना सच्चा सर्वोदयी समाज नहीं ला सकते हैं। इसमें कानून कुछ नहीं कर सकता, सबसे अधिक आवश्यकता ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के पक्ष मे जनमत तैयार करने की है।

15.3.3 राजनीतिक आयाम

गाँधीजी ने आदर्श रामराज्य की कल्पना की है जो सत्य, अहिंसा, न्याय, और समानता के मूल्यों पर आधारित है। गाँधीजी ने राज्य को एक साध्य की जगह एक लोक-कल्याण का साधन माना है। राज्य का लक्ष्य सबको अधिकतम सुख प्रदान करना है। गाँधीजी अहिंसक राज्य में राजनीतिक सत्ता का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण करने पर जोर देते हैं। इसलिए गाँधीजी ने ग्राम स्वराज्य, पंचायतीराज, व्यक्ति की स्वतन्त्रता सही दिशा में सही कदम माना है। अत: स्पष्ट है कि अहिंसक राज्य का संगठन स्वतन्त्र, स्वावलम्बी, स्वशासित और सत्याग्रही व गरिमापूर्ण गाँवों के आधार पर उनकी राजनीति मानव प्रेम और मानव सेवा पर आधारित है।

गाँधी अहिंसक राज्य में राजनीतिक शक्ति, राजनीतिक सत्ता का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण करने की बात करते हैं। इसके लिए गाँधीजी ने ग्राम-स्वराज्य, पंचायतीराज, व्यक्ति की स्वतन्त्रता आदि सही दिशा में सही कदम है, जबकि मार्क्स की तानाशाही और व्यक्ति कि स्वतन्त्रता का अपहरण-गलत दिशा में गलत कदम है। शायद मार्क्स गाँधी की तरह मनुष्य की अच्छाई में विश्वास नहीं करता है। इसलिए वह व्यक्ति की सर्वोच्चता में विश्वास नहीं करता है। गाँधी व्यक्ति की सर्वोच्चता में विश्वास करते हैं। "गाँधी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं के केन्द्रीकरण को शोषण का मूल कारण मानते हैं इसमें जनता को अपनी भावनाओं का विकास करने के सुअवसर नहीं मिल पाते हैं। अत: सत्ता का केन्द्रीकरण हिंसा है।" अब सत्ता का केन्द्रीकरण और अहिंसक समाज की संरचना से संगति नहीं बैठ पाती है।

गाँधी के अहिंसक राज्य में पुलिस, सैन्य आदि सभी होगें, परन्तु उनका नैतिकता विहीन स्वरूप है वह बदल जायेगा। वह ग्रीन की तरह और सकारात्मक उदारवाद की तरह यह मानते हैं कि राज्य उन बाधाओं को हटाने का काम करेगा जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधक है। अत: सेना और पुलिस जनता के स्वामी न होकर जनता के सेवक होगें। "अहिंसक

राज्य में शान्ति सुरक्षा के लिए पुलिस, सेना, जेल और न्यायालय का प्रबन्ध रहेगा, परन्तु उसका स्वरूप बदल जायेगा। पुलिस का संगठन अहिंसक स्वयं सेवकों के द्वारा होगा जो अपने को जन सेवक समझेंगे। जनता से उन्हें स्वाभाविक रुप से सहयोग मिलेगा। अत: स्पष्ट है कि गाँधीजी के अहिंसक राज्य का संगठन स्वावलम्बी, स्वशासित और सत्याग्राही गाँवों के आधार पर होगा।

स्वराज्य

गाँधीजी के अनुसार, "प्रजातन्त्र असल में देखा जाये तो समस्त प्रजा के कल्याण के लिए प्रजा के भिन्न-भिन्न वर्गों का, शारीरिक, आर्थिक, आत्मिक शक्तियों को एकत्र करके उपयोग में लगाने की कला और विज्ञान है।" गाँधीजी के अनुसार, "स्वराज्य से मेरा अभिप्राय लोक सम्मति के अनुसार होने वाला भारतवर्ष का शासन। लोकसम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी से बड़ी संख्या के मत द्वारा होगा। वे लोग ऐसे होने चाहिए जिन्होंने शारीरिक श्रम द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा लिया हो। सच्चा स्वराज्य कुछ लोगों द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नहीं बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तो उस समय सब लोगों के द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता पैदा करने से हासिल किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में स्वराज्य जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर अधिकार करने और उसका नियमन करने की क्षमता उसमें है। उन्होंने व्यक्त किया, "मेरे सपने का स्वराज्य तो गरीबों का स्वराज्य होगा। जीवन की जिन आवश्यकताओं का उपयोग राजा और अमीर लोग करते हों, वही आपको भी सुलभ होनी चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमारे पास उनके जैसे महल होने चाहिए। सुखी जीवन के लिए महलों की कोई आवश्यकता नहीं। गाँधी ने राज्य की सत्ता का विरोध करते हुए स्वशासन का पक्ष-पोषण किया। उन्होंने स्वशासन का अर्थ बताते हुए लिखा कि "स्वशासन का अर्थ है सरकारी नियन्त्रण से स्वतन्त्र होने का सतत् प्रयत्न, फिर सरकार विदेशी हो या चाहे राष्ट्रीय। स्वराज्य सरकार की हास्यास्पद चीज बन जायेगी, अगर जीवन की हर छोटी बात के लिए उसके मुंह की तरफ देखने लगे।" आपको जीवन की वे सामान्य सुविधाएँ अवश्य मिलनी चाहिए जिनका उपयोग अमीर आदमी करता है।

रामराज्य

गाँधी का रामराज्य, सत्य, अहिंसा और नीति परायणता पर आधारित है। यह पृथ्वी पर ईश्वर का राज्य है, धर्म-राज्य है इसमें सम्प्रभुता "शुद्ध नैतिक शक्ति", जनता की नैतिक शक्ति पर आधारित है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के अधिक से अधिक अवसर होंगे। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर की आत्मा की अन्त: आवाज का अनुसरण करना है। यह प्रेम की भावना, सहयोग की भावना, परस्पर सद्भाव, सहयोग, मानव की प्रतिष्ठा और आर्थिक और राजनीतिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। रामराज्य में मार्क्स के समान राज्य विहीन, वर्ग विहीन, शोषण विहीन, आर्थिक समानता पर आधारित व्यवस्था है। "रामराज्य से मेरा मतलब हिन्दू राज्य से नहीं है या धर्म राज्य नहीं है। मेरा मतलब राम के राज्य ईश्वर के राज्य से है,

मेरे लिए राम और रहीम एक ही है। सत्य और सच्चाई का ईश्वर एक ही है। रामराज्य का जो प्राचीन आदर्श है वह वास्तव में निःसन्देह सच्चे अर्थो में लोकतन्त्र है।"

"रामराज्य सच्चा प्रजातन्त्र है इसमें किसी प्रकार की लिंग, धर्म, जाति, प्रदेश, रंग, सम्पत्ति की अनुचित असमानताऐं नहीं हैं, इसमें राजनीतिक संस्थाऐं और भूमि जनता की है, इसमें न्याय पूर्ण, सस्ता और शीघ्र है, इसमें व्यक्ति सब स्वतन्त्रताओं का जैसे भाषण, समुदाय, धर्म, व्यवसाय, प्रेस की सभी स्वतन्त्रताओं का उपयोग करता है। इसमें स्व:नियन्त्रित नैतिक प्रतिबन्ध है। इस प्रकार राज्य सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें ग्राम और ग्राम समुदाय स्वशासन, स्वावलम्बी और अपने आप में पूर्ण है।" इस रामराज्य में प्रत्येक नागरिक प्रेम और निःस्वार्थ, त्याग और कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित है इसमें राज्य की दमन की शक्ति नहीं है, यह नागरिकों की स्वैच्छिक सदचारित्रता व नैतिकता पर आधारित है। राज्य गाँधी के लिए अपने आप में साध्य नहीं है, राज्य व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को, प्रत्येक भाग को अच्छा बनाना, विकास करने का एक साधन है।

15.3.4 सामाजिक आयाम

गाँधीजी ने एक ऐसे समाज की कल्पना की जिसका आधार सत्य और अहिंसा हो। जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता और गरिमा सुरक्षित रहे तथा सभी में आपस में प्रेम और सहयोग की भावना हो। इस अहिंसक समाज को उन्होंने सर्वोदय समाज का नाम दिया है। गाँधीजी का मानना है कि व्यक्ति और समाज में सम्बन्ध परस्पर निर्भरता का है, दोनों में आपस में वर्ग समन्वय है। व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध एक बूँद और सागर की तरह माना है, सागर बूँदों के जल से इकट्ठा होकर बनता है। प्रत्येक बूँद की अपनी एक सत्ता है तो भी वह सागर का हिस्सा है। हम एक छोटी बूँद की तरह और इस सम्पूर्णता का नाम ईश्वर है। समाज व्यक्ति से बनता है। समाज का विकास व्यक्ति के विकास पर निर्भर है।

गाँधीय विचारधारा का केन्द्र बिन्दु सत्य और अहिंसा है। गाँधीजी ने अहिंसा को सामाजिक सद्‌गुण माना है। गाँधी के ही शब्दों में, "मेरी राय में अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्‌गुण नहीं है। वह एक सामाजिक सदुण भी है, जिसका विकास अन्य सद्‌गुणों की भांति किया जाना चाहिए। अवश्य ही सामाजिक जीवन का नियमन पारस्परिक व्यवहारों में अहिंसा के प्रकट होने से होता है। मेरा अनुरोध इतना ही है कि उसका राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर अधिक विस्तार किया जाय।" "गाँधीजी ने सत्य और अहिंसा पर आधारित सामाजिक संगठन का नाम सर्वोदय रखा।"

गाँधीजी का सामाजिक लक्ष्य रामराज्य अर्थात ईश्वरीय राज्य था। उन्होंने उसका अर्थ शुद्ध नैतिक अधिकार पर आधारित जनता का राज्य और पृथ्वी पर धर्म-राज्य बतलाया। रामराज्य के आगमन के लिए व्यक्ति का नैतिक विकास अत्यन्त आवश्यक है। वही इसकी नींव और आधार है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर और पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य का अनुभव करना और अपनी आत्मा की आवाज का अनुसरण करना है। गाँधीजी के अनुसार राज्यविहीन समाज दमन शक्ति के अभाव में, केवल नागरिकों की स्वैच्छिक सच्चरित्रता पर ही टिक सकता है। उस

चरित्र निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक प्रेम, कर्तव्य तथा त्याग की भावना और दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान से प्रेरित हों।

गाँधीजी के अनुसार, "प्रेम ही वह कानून है जिससे मानव समुदाय शासित होता है। हिंसा अर्थात् घृणा का साम्राज्य रहा होता तो हम कभी के लुप्त हो गये होते और फिर भी दु:ख की बात यह है कि सभ्य कहे जाने वाले पुरुष और राष्ट्र अपने आचरण ऐसे रखते हैं, मानों समाज का आधार हिंसा हो। प्रेम ही जीवन का श्रेष्ठ और एकमात्र कानून है और यह सिद्ध करने में प्रयोग करने मुझे अकथनीय आनन्द आता है।"

गाँधीजी का लक्ष्य एक ऐसा समाज बनान है जिसमें न कोई गरीब होगा, न भिखारी, न कोई ऊँचा होगा न नीचा। न कोई करोड़पति मालिक होगा न आधा भूखा नौकर। न शराब होगी न कोई दूसरी नशीली चीज। सब अपने आप खुशी से और गर्व से अपनी रोटी कमाने के लिए मेहनत करेंगे। वहाँ स्त्रियों की भी वही इज्जत होगी जो पुरुषों की, स्त्रियों और पुरुषों के शील और पवित्रता की रक्षा की जायेगी। अपनी पत्नी के सिवा हर एक स्त्री को उसके उम्र के अनुसार हर धर्म के पुरुष माँ, बहन और बेटी समझेंगे। वहाँ अस्पृश्यता नहीं होगी और सब धर्मों के प्रति समान आदर रखा जायेगा।

स्त्री-पुरुष के बीच समानता के विचार का पोषण करते हुए गाँधी जी ने लिखा: स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी राय में उन पर वैसा कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाना चाहिए जो पुरुष पर न लगाया गया हो। पुत्रों और कन्याओं के बीच किसी तरह का भेद नहीं होना चाहिए। विवाह को एक पवित्र संस्कार समझना चाहिए और संयमित विवाहित जीवन बिताना चाहिए। विवाहित या गृहस्थ जीवन तो हिन्दू समाज के चार आश्रमों में एक आश्रम है और यदि सच पूछा जाय तो शेष तीन आश्रम भी इसी पर आधारित हैं। गाँधी ने लिखा है, "शरीर के द्वारा दो आत्माओं का मिलन ही विवाह का आदर्श है। इसमें जो मानव प्रेम स्फुरित होता है उसी के माध्यम से हम विश्व प्रेम या ईश्वर प्रेम तक पहुँच सकते हैं।" गाँधीजी ने अपने स्वयं के जीवन में इस आदर्श का पालन किया। उन्हें स्त्री एवं पुरुषों की साधुता में विश्वास था। शारीरिक सम्बन्ध के बदले आध्यात्मिक सम्बन्ध बनाने के लिए कहते थे ताकि मिलकर सत्यान्वेषण एवं विश्व प्रेम के मार्ग में आगे बढ़ सकें।

सर्वोदय एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति का, समाज का नैतिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पुनर्निमाण करना है। जब तक सभी मनुष्यों का उदय न हो जाय, सभी को शोषण, विषमता और अन्य समस्याओं से छुटकारा नहीं मिल जाता तब तक मनुष्य का आध्यात्मिक, धार्मिक तथा नैतिक दायित्व है कि वह मनुष्य के दुख, कष्टों व सभी प्रकार के शोषण के विरुद्ध संघर्ष करें तथा एक दूसरे के प्रति सेवाभाव उत्थान और विकास के लिए कार्य करें। गाँधी एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिसका आधार अहिंसा हो, जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता और गरिमा सुरक्षित हो, तथा आपस में सभी के बीच प्रेम और सहयोग की भावना हो।

गाँधी अपने जीवन में इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सके। राजनैतिक स्वतन्त्रता तो मिली परन्तु सर्वोदय समाज की स्थापना करना बाकी था। उन्होंने इस प्रकार की समाज की स्थापना करने के लिए व्यावहारिक सोच दी। जिसको विनोबा ने अपने भूदान, ग्रामदान, ग्रामस्वराज्य के माध्यम से व्यावहारिक रुप देने का प्रयास किया। सत्याग्रह के द्वारा समाज की सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान हो सकता है। सत्याग्रह की मुख्य बात है कि सामने वाले का विचार बदलना है। व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्ति का हृदय परिवर्तन करना तथा समूह स्तर पर सामाजिक परिवर्तन करना है। समूह स्तर पर सभी व्यक्ति गाँधी द्वारा बताये गये 11 व्रतों का पालन करें जिसमें ट्रस्टीशिप, शारीरिक श्रम, स्वराज्य, स्वदेशी का पालन करें।

गाँधी पूर्णत: मानवतावादी है वह लूथर, कांट, थोरो और बहुलवादियों की भांति विशेषकर लास्की की भांति, व्यक्ति की आत्मा के महत्व को मानते हैं। उनके शब्दों में "मानव ही सर्वोच्च विचार है।" "मेरे लिए मानव ही सबसे प्रथम है, मानव के लिए मेरा प्रेम असीम है" विमल बिहारी मजूमदार के शब्दों में "गाँधीजी के राजनीतिक दर्शन की सौर प्रणाली में मानव सूर्य है।" सभी क्षेत्रों में चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय उन सभी में मानव ही केन्द्र बिन्दु है। गाँधी की समाज में विशेषरुप से कमजोर वर्ग की निष्ठा पूर्ण सेवा द्वारा व्यक्ति की सच्ची आत्मानुभूति है। जब अन्तिम व्यक्ति को समान भाग मिलेगा, तभी अहिंसात्मक सामाजिक व्यवस्था सम्भव है और ऐसे ही समाज में सत्य और आत्मानुभूति की प्राप्ति हो सकती है। मानव मात्र की सेवा ही गाँधी के लिए आत्मानुभूति और आत्मज्ञान तथा मोक्ष का साधन थी। गाँधी मानव सेवा द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति व आध्यात्मिक शुद्धता की प्राप्ति चाहते हैं। वे मानव क्रिया के अतिरिक्त किसी भी धर्म को स्वीकार नहीं करते हैं। सत्याग्रह मानव की आवश्यकताओं के लिए अहिंसक तकनीक बताई।

15.3.5 धार्मिक आयाम

गाँधी ने अन्तर्राष्ट्रीय बंधुत्व संघ के सम्मुख भाषण देते हुए 1928 में कहा था कि सभी धर्म सच्चे हैं। सब धर्मों में कोई न कोई खराबी है। सभी धर्म मुझे उतने ही प्रिय हैं जितना मेरा हिन्दू धर्म। मैं अन्य मतों का भी उतना ही आदर करता हूँ जितना अपने मत का, अत: मेरे लिए धर्म परिवर्तन का विचार ही असम्भव है। उनका मत था कि अन्य व्यक्तियों के लिए हमारी प्रार्थना यह नहीं होनी चाहिए कि भगवान उन्हें वही प्रकाश दे जो मुझे दिया, अपितु यह होनी चाहिए कि उन्हें वह प्रकाश और सत्य दो जो उसके श्रेष्ठतम विकास के लिए आवश्यक है।

उन्होंने कहा: मेरा धर्म वह सब कुछ प्रदान करता है जो मेरे आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है, क्योंकि वह मुझे उपासना करना सिखाता है। मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करें जिससे कि एक ईसाई अच्छा ईसाई बन सके तथा एक मुसलमान अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा एक दिन हमसे ये पूछेगा कि हम क्या हैं और क्या करते हैं न कि वह नाम जो हमने अपने को और अपने कामों को दे रखा है। सर्वधर्म समभाव गाँधी के सर्वोदय की धारणा में केन्द्रीय महत्व रखता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म की गाँधीवादी धारणा में संकीर्ण सम्प्रदायवाद के लिये कोई स्थान नहीं है। गाँधी के लिए धर्म की साधना का मर्म एक आध्यात्मिक सत्ता में आस्था होने तथा इस आस्था के मानवीय स्वरूप के घटित होने में समाविष्ट है।

गाँधीजी के अनुसार, "इस आदर्श समाज में सामाजिक जीवन इतना पूर्ण और स्वशासित हो जायेगा कि राज्य की आवश्यकता ही नहीं रहेगी और एक राज्य विहीन लोकतन्त्र की स्थापना हो जायेगी। विचार परिवर्तन के द्वारा हृदय परिवर्तन, हृदय परिवर्तन के द्वारा जीवन परिवर्तन और जीवन परिवर्तन के द्वारा समाज परिवर्तन की क्रान्ति की प्रक्रिया होगी, लेकिन इसका मतलब यह नहीं, कि समाज परिवर्तन की प्रक्रिया में परिस्थिति परिवर्तन और अन्याय के प्रतिकार के लिए कोई स्थान नहीं है। वास्तव में अन्याय के प्रतिकार के बिना सत्य और न्याय की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती है। इसीलिए अहिंसात्मक आन्दोलन जिसे सत्याग्रह के नाम से जानते हैं अन्याय के प्रतिकार के लिए आवश्यक है। सत्याग्रह बुद्धि और हृदय दोनों, को प्रभावित करता है। इसमें कष्ट सहन हृदय तक पहुँचकर आन्तरिक विवेक को जगा देता है।

गाँधीजी ने नव समाज की रचना करने के लिए एक व्यावहारिक सोच दी है। इस समाज को गाँधीजी ने सर्वोदय समाज का नाम दिया है। सर्वोदय एक सिद्धान्त भी है और एक प्रक्रिया भी है। व्यक्ति का कल्याण समिष्ठ के कल्याण में ही निहित है। (सर्वोदय में आत्माओं की मूलभूत एकता है, यह अध्यात्म और नीति का मिलन है। चरित्र और नीति का आरम्भ सामाजिकता से होता है। यहाँ पर सर्वोदय विचार उपयोगितावादी दर्शन की संकीर्ण मर्यादाओं से आगे आता है।) सर्वोदय विचार के लिए व्यक्ति को समाज से पृथक सोचना असंगति है, दोनों की अपनी अलग-अलग सत्ता है, परन्तु दोनों में कोई विरोध नहीं है। सर्वोदय राजनीति में आमूल परिवर्तन चाहता है, केन्द्रित स्वराज्य के बदले विकेन्द्रित-स्वराज्य, राजनीति के बदले लोकनीति, हिंसा और दण्डशक्ति के बदले जन-शक्ति और शासन युक्त समाज के बदले शासन मुक्त समाज बनाने का विचार है। यही रामराज्य है। ग्राम-राज्य, स्वराज्य और अहिंसक स्वराज्य होगा। इसलिए सर्वोदय विचारों में त्याग द्वारा हृदय परिवर्तन, तर्क द्वारा विचार परिवर्तन, शिक्षा द्वारा संस्कार परिवर्तन एवं पुरुषार्थ के द्वारा स्थिति परिवर्तन के माध्यम से क्रान्ति करने पर जोर दिया है। ऐसी ही क्रान्ति पूर्ण और स्थायी क्रान्ति होगी। इसलिए सत्याग्रह संघर्ष की अस्वीकृति नहीं बल्कि संघर्ष का वैज्ञानिक और अधिक व्यावहारिक एवं मानवीय तकनीक है। समाज की मौजूदा स्थिति में परिवर्तन करना ही क्रान्ति का लक्ष्य होता है। जो लोक आजाद नहीं है वे आजादी चाहते हैं, जिन्हें बोलने नहीं दिया जाता, वे बोलना चाहते हैं, जिन्हें अपने विचार प्रकट करने से रोका जाता है वे अपने विचार प्रकट करना चाहते हैं, जिन्हें सताया जाता है वे उत्पीडन से मुक्त होना चाहते हैं, जिनके साथ समानता का व्यवहार नहीं होता वे समानता चाहते हैं। अत: स्पष्ट है कि क्रान्ति का उद्देश्य, स्वतन्त्रता, समानता और भाई चारे आदि की आकांक्षा ही क्रान्ति का उद्देश्य है। क्रान्ति का मूल तत्व परिवर्तन ही है। क्रान्ति समाज परिवर्तन की एक प्रमुख प्रक्रिया है। जिससे समाज के प्रचलित मूल्यों, मान्यताओं, आदर्शों, विश्वासों, प्रथाओं, पद्धतियों में आमूलचूल परिवर्तन होता है।

यह सर्वोदय का आदर्श है। समाज परिवर्तन का सर्वोदय का सिद्धान्त, उपयोगितावाद, मार्क्सवाद, साम्यवाद, अराजकतावाद और सुखवाद से भिन्न है।

15.4 मानव समाज के विकास की अवस्था

सर्वोदय "जीओ और जीने दो" का भी सिद्धान्त नहीं है। समाज में विकास का मुख्य सिद्धान्त संघर्ष है। अगर हम संघर्ष को समाज के विकास का आधार मान लेते हैं तो कोई स्वस्थ व सभ्य जीवन दर्शन एवं समाज की रचना सम्भव नहीं है। संघर्ष और प्रतिस्पर्द्धा की भावना से समाज में अस्वस्थ और असामाजिक भावना का (जो कि मतस्य न्याय और जंगल के कानून पर आधारित है, जो कि डार्विन के सिद्धान्त की तरह है, जो सबसे अधिक सक्षम है, वही जीवन संग्राम में बचेगा) समाज बनेगा। इसलिए हक्सले ने "दूसरों को खाकर जीओ" से आगे "जिओ और जीने दो" का सिद्धान्त दिया।

जे. सी. कुमारप्पा का मानना है "मानवीय सभ्यता के विकास को प्रतीक रुप से यदि हम दिखाना चाहे तो निम्न अवस्था हो सकती है।

1. शोषणावस्था - व्याघ्र- दूसरों को खाकर जीओ
2. आखेटावस्था - बन्दर-बिना उत्पादन के उपयोग
3. उद्योगावस्था - पक्षी-उत्पादन भी उपभोग भी ।
4. सेवावस्था - मधुमक्खी- उत्पादन किन्तु उपभोग नहीं।

इससे यह सिद्ध होता है कि प्राणी सभ्यता "जीओ और जीने दो" के सिद्धान्त से भी आगे बढ़ चुके है, उसी विकास में हमारी संस्कृति का मूल्य भी है।

सर्वोदय का सिद्धान्त हक्सले के सिद्धान्त से भी एक कदम आगे है- "जिलाने के लिए जिओ" का सिद्धान्त है। यह सामाजिकता है, यहाँ एक स्वस्थ और सभ्य समाज का नियम है। विनोबा जी कहते हैं, "कि बच्चों का यह सूत्र है- "जीओ और जीने दो" परन्तु माँ का यह सूत्र है, "बच्चों के लिए फाँका करने राजी हो जाओ।" सर्वोदय सिद्धान्त माँ के सिद्धान्त में विश्वास करता है।" रामजी सिंह का मानना है कि- "प्रेम और सहयोग केवल नैतिक दृष्टि से ही आवश्यक नहीं, ये तो प्राणीशास्त्र के बुनियादी सिद्धान्त हैं। विकास के क्रम में वे ही प्राणी टिके हैं, जिनमें परस्पर सहयोग है। ऐगले मांटेग्यू ने बताया है कि "संघर्ष या होड नहीं, सहयोग ही प्रकृति का सिद्धान्त हो" बिलर ने बताया कि प्रकृति में सबसे प्रबल प्रवृत्ति पायी जाती है। वह है - सहजीवन सहयोग की। अत: सहअस्तित्व प्रकृति का नियम है।

सर्वोदय एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति का, समाज का नैतिक, आध्यात्मिक राजनीतिक तथा आर्थिक पुनर्निमाण करना है। जब तक सभी मनुष्यों का उदय न हो जाय, सभी को शोषण विषमता और अन्य समस्याओं से छुटकारा नहीं मिल जाता तब तक मनुष्य का आध्यात्मिक, धार्मिक तथा नैतिक दायित्व है कि वह मनुष्य के दुख, कष्टों व सभी प्रकार के शोषण के विरुद्ध संघर्ष करें तथा एक दूसरे के प्रति सेवाभाव उत्थान और विकास के लिए कार्य करें। गाँधी एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिसका आधार अहिंसा हो,

जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता और गरिमा सुरक्षित हो, तथा आपस में सभी के बीच प्रेम और सहयोग की भावना हो।

गाँधी का सर्वोदय का सिद्धान्त जातिविहीन, वर्गविहीन तथा भेदभाव रहित अवस्था आर्थिक-समानता तथा विकास पर आधारित है। सर्वोदय की भावना भारतीय संस्कृति के मूल में है।

"सर्वे-भवन्ति सुखिनः, सर्व सन्तु निरामयः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्ति, मा कश्चिद दुखे भाग्यवेत।।

"सर्व भूते हिते रता,

वसुधैव कुटुम्बकम"

आदि विचारों में सर्वोदय की भावना के दर्शन होते हैं। यही नहीं उपनिषद, वेदान्त और गीता में साम्य या एकत्व की भावना में सर्वोदय की झलक मिलती है। सर्वोदय में सबों का उदय और सब प्रकार से उदय। सब प्रकार के उदय का अर्थ है कि सर्वागीण विकास। इसमें समूची मानवता का कल्याण निहित है। आज वर्ग संघर्ष के द्वारा क्रान्ति करने वाले विचारक भी अन्त में एक ऐसे ही वर्ग विहीन समाज की स्थापना का लक्ष्य रखते हैं जहाँ समाज में सहयोग और समन्वय की भावना बनी रहे।

सर्वोदय के सम्बन्ध में विनोबा कहते हैं कि "सर्वोदय यानी सबका उदय। किसी का उदय और किसी का अन्त: ऐसी बात नहीं हैं, सर्वोदय शब्द बहुत व्यापक है और गाँधी ने ही इसे गढ़ा है। परमेश्वर के यहाँ हाथी को मन और चीटी को भी कन मिलता ही है। एक छोटा सा बच्चा भी समाज का सेवक बन सकता है अगर वह दूसरे की सेवा करता और कुछ न कुछ पैदा करता हो। हमें चन्द लोगों का उदय नहीं करना है, अधिक लोगों का उदय भी नहीं करना है। अधिक से अधिक लोगों के उदय से भी हमें सन्तोष नहीं है। सबके उदय से ही हमें समाधान होगा। छोटे, बड़े, दुर्बल, सबल, जड़-बुद्धिमान, सबका उदय होगा तभी हम चैन लेंगे। ऐसा विशाल भाव यह शब्द हमें दे रहा है। सर्वोदय में सबका उदय है और उसमें अन्तिम व्यक्ति का भी उदय है। इस प्रकार इसमें अंत्योदय की भावना भी है।

सर्वोदय के लिए गाँधीजी ने 11 व्रत बताये हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह। शरीर, श्रम, अस्वाद, सर्वत्र भय वर्जनम। सर्व धर्मों समानत्व, स्वदेशी। स्पर्श भावना की एकादय सेवा ही नमत्वे व्रतनिश्चये। इन व्रतों और नैतिक मूल्यों के पालन और विकास पर व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का अस्तित्व निर्भर होता है। गाँधी के अनुसार व्रत "किसी करने योग्य कार्य को किसी भी, मूल्य पर करना है।"

15.5 सर्वोदय का व्यावहारिक प्रयोग

गाँधी अपने जीवन में इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सके। राजनैतिक स्वतन्त्रता तो मिली परन्तु सर्वोदय समाज की स्थापना करना बाकी था। उन्होंने इस प्रकार की समाज की स्थापना करने के लिए व्यावहारिक सोच दी। जिसको विनोबा ने अपने भूदान, ग्रामदान, ग्रामस्वराज्य के माध्यम से व्यावहारिक रुप देने का प्रयास किया। सत्याग्रह के द्वारा समाज की सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान हो सकता है। सत्याग्रह की मुख्य बात है कि सामने

वाले का विचार बदलना है। व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्ति का हृदय परिवर्तन करना तथा समूह स्तर पर सामाजिक परिवर्तन करना है। समूह स्तर पर सभी व्यक्ति गाँधी द्वारा बताये गये एकादश व्रतों का पालन करें जिसमें ट्रस्टीशिप, शारीरिक श्रम, स्वराज्य, स्वदेशी का पालन करें। सामाजिक परिवर्तन सर्वोदय की सामान्य नीति है। जिसके सभी का अधिक से अधिक सुख व कल्याण निहित है। जिसमें हर व्यक्ति के महत्व की बात करते हैं। इन एकादश व्रतों का पालन करने से उनका नैतिक स्तर इतना ऊँचा हो जाता है। जिसका प्रभाव दूसरे व्यक्तियों और समाज पर पड़ता है। उन्होंने इसके लिए सर्वोदय में आन्दोलनात्मक पक्ष के साथ-साथ रचनात्मक पक्ष पर भी जोर दिया है।

15.5.1 भूदान

विनोबा ने सर्वोदयी सिद्धान्तों की छत्र छाया में भूदान आन्दोलन और उसको व्यापक बनाकर ग्रामदान, सम्पत्तिदान और जीवनदान आन्दोलन प्रारम्भ किये। विनोबा कहते हैं कि भूदान का मेरा आन्दोलन सबसे गिरे और कमजोर खेतिहर मजदूरों का आन्दोलन है। वे बेजमीन तो है ही साथ ही वे बेजुबान भी हैं। ऐसे लोगों को उठाना ही सर्वोदय है, यहाँ अहिंसा की प्रक्रिया है।

विनोबा कहते हैं कि मनुष्य के पास पाँच प्रकार की सम्पत्तियाँ होती हैं- प्रेम, बुद्धि, शरीर-श्रम, धन और भूमि। दुनिया में ऐसा कोई आदमी नहीं जिसके पास इन पाँच में से कोई न कोई सम्पत्ति न हो। कोई अपंग हो उसके पास धन, बुद्धि, भूमि नहीं है फिर भी प्रेम तो उसके पास होता, ही है। अत: जिसके पास जो सम्पत्ति है उसका कुछ अंश समाज को अर्पित करना चाहिए।

इस आन्दोलन का पहला चरण भूदान सामाजिक क्रान्ति, दूसरा चरण ग्रामदान और तीसरा चरण ग्राम स्वराज्य है। जयप्रकाश नारायण के शब्दों में “ यद्यपि भूदान आन्दोलन की सारी भूलों और असफलताओं के बावजूद भी उसकी सफलता निःसन्देह उल्लेखनीय है। सामाजिक जीवन के क्षेत्र में उसने अहिंसा के सक्षम तरीके को प्रकट किया है। यह केवल भूमिहीनों को भूमि बांटने का आन्दोलन नहीं है, मानव को ऊपर उठाने का प्रयोग है। यह आन्दोलन नहीं है यह समझाने का प्रयोग है आपके पास कुछ है तो उसमें उस भाई का भी हिस्सा बनाएं जिसके पास कुछ भी नहीं है। “ भूदान यज्ञ के तथा सभी व्यक्तियों में जमीन का समान वितरण करना है। ”

ईश्वर ने सभी जीवों को समान बनाया है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु का सभी लोग बिना किसी भेदभाव के उपयोग करते हैं। विनोबा का मानना है कि सूर्य की जितनी रश्मि एक राजा पाता है उतनी ही एक मेहतर भी। प्रकृति की सभी चीजों का मालिक ईश्वर है, हम इसकी सन्तान है। अत: कोई व्यक्ति भूमि का मालिक नहीं हो सकता। हमें स्वामी बनने का नहीं बल्कि सेवक बनने का अधिकार होना चाहिए।

अहिंसा, प्रेम और शान्ति के कार्यक्रम से ही शोषणविहीन, विषमताविहीन समाज की स्थापना की जा सकती है। “ हम चाहते है कि शोषणविहीन समाज हो। हर व्यक्ति को आजादी और अपने विकास का मौका हो। जहाँ हिंसा द्वारा क्रान्ति हुई है वहाँ समाजवाद नहीं आया कोई

दूसरी चीज बन जाती है। वर्तमान व्यवस्था को मिटाने से नवीन समाज नहीं बन जाता है। समाजवाद का चिन्तन जिस दशा में हमें ले जा रहा है उस दिशा में बहुत दूर तक सर्वोदय जा पहुँचा है इसलिए अगर हम सच्चे समाजवादी है तो हम सच्चे सर्वोदयी भी है।" जिसके पास जो कुछ है। वह सब समाज को अर्पित कर दे चाहे वह सम्पत्ति हो, बुद्धि हो, और चाहे शक्ति हो क्योंकि समाज के द्वारा अनेक प्रकार की सुख सुविधाऐं प्रदान की जाती है। जब समाज के कार्यों में सहयोग होगा, तभी सहयोग पर आधारित शोषणविहीन अहिंसक समाज की स्थापना की जा सकती है।

सर्वोदय को एक धर्म मानना चाहिए जिसको प्रत्येक व्यक्ति द्वारा व्यवहार में लाना चाहिए। यह विकास की नीति है, अन्तिम व्यक्ति के लिए कार्यान्वित भी किया जाना चाहिए। यह एक अन्तोदय (अन्तिम व्यक्ति के उदय) की धारण है।

15.5.2 ग्रामदान

ग्रामदान, भूदान आन्दोलन का अन्तिम चरण है "जिसमें केवल भूमिहीनों के लिए भूमिदान की ही कल्पना नहीं है बल्कि इसमें जमीन के सम्पूर्ण मालकियत को समाज या गाँव पर सौंप कर सेवा वृत्ति अपनाने का विचार है।" सम्पूर्ण सम्पत्ति को गाँव को सौंप देते हैं जिसमें व्यक्तिगत स्वामित्व की जगह गाँव का स्वामित्व होता है और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार गाँव के सभी लोगों में वापस वितरण की जाती है।

ग्रामदान का पहली बार प्रयोग सितम्बर 1952 में उत्तर प्रदेश राज्य के मंगरौठ गाँव में किया गया। इस ग्राम को पहला ग्रामदानी गाँव घोषित किया। जयप्रकाश नारायण ने कहा है कि ग्रामदान बहुत सुन्दर क्रान्ति है, शक्ति के बल से किसी भी प्रकार का स्वामित्व समाप्त नहीं होता लेकिन अब स्वतन्त्र रूप से समाज को समर्पित करते हैं। जी. रामचन्द्रन कहते हैं कि ग्रामदान गाँव में मस्तिष्कों की एकता का योग है और गाँव के सामाजिक और आर्थिक ढाँचें के परिवर्तन को सहन करने को तैयार, एक नये रास्ते पर चलने को सभी तैयार जिसमें समाज के हित में व्यक्तिगत हितों का त्याग किया है। ग्रामदान आज की स्वतन्त्र भारत की नई परिस्थितियों में गाँव की महत्वता को स्वीकार करते हुए मानसिक और आर्थिक क्रान्ति है जो गाँव के महत्व का प्रतिनिधित्व करती है।

ग्रामदान भारत के गाँवों में सदियों से चली आ रही व्यक्तिगत स्वामित्व पर कठोर प्रहार है। ग्रामदान भारतीय संस्कृति के साथ एक समन्वय की भावना है। ग्रामदान में गाँव की भूमि से व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त हो जाता है, गाँव की सारी भूमि ग्रामदानी समाज की होती है जिसमें सभी की समान सहभागिता होती है यह अहिंसक क्रान्ति का रूप है। डी.आर. गाडगिल ग्रामदान आन्दोलन बहुत से महत्व को साथ लेते हुए एक अभूतपूर्व आन्दोलन है। लुई फिशर कहते हैं कि यह पूर्व का एक बहुत रचनात्मक विचार है।

श्रीमन् नारायण कहते हैं ग्रामदान जीवन मूल्यों, पद्धति, हिंसा, घृणा, वर्ग संघर्ष की जगह, अहिंसा, लोकतन्त्र और हृदय परिवर्तन की ओर एक क्रान्तिकारी कदम है। इस प्रकार भूदान और ग्रामदान दोनों ही आन्दोलन जनता के गरीब से गरीब और सबसे पिछड़े भाग को भी अपने अन्दर सिमटने में सक्षम है।

ग्रामदान की गतिशीलता गाँवों का पुननिर्माण करने की है। ग्रामदान का विचार एक पूर्ण और समग्र विचार है। यह गाँधीजी के रामराज्य व ग्राम स्वराज्य की तरह है। यह एक ओर तो गाँधी के ट्रस्टीशिप की योजना है तो दूसरी और सम्पूर्ण समाज व ग्राम समाज के परिवारीकरण की योजना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सुख-दुख सहज भाव से एक समान समझकर हाथ बँटाता है। ग्रामदान का विचार एक सार्वभौमिक विचार है। एक सार्वभौमिक धर्म है जो कि सभी पर लागू होता है जिसके पास जो कुछ है वह सब गाँव को समर्पित कर दे।

भूदान आन्दोलन में तो एक देने वाला होता है और दूसरा लेने वाला परन्तु ग्रामदान के विचार में सभी व्यक्ति दाता और ग्रहणकर्ता होते हैं। जयप्रकाश नारायण के अनुसार "ग्राम में सामूहिकता और परस्पर सहयोग की भावना जगा कर ग्राम स्वराज्य की स्थापना की नींव डालनी है- भूमि पर पूरा स्वामित्व ग्राम का ही होना चाहिए। मार्क्स की तरह यह मानते हैं कि सम्पत्ति सभी बुराईयों की जुड़ है। संसार में जितनी भी लड़ाई हुई है प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप में उनके पीछे एक ही कारण रहा है- वह व्यक्तिगत सम्पत्ति प्राप्त करना।" यही दुनिया के तमाम झगड़ों की जड़ है जैसे ही भूमि और सम्पत्ति की मालिकी खत्म हो जायेगी तभी लोगों की और समाज के नैतिक मान की उन्नति होगी इसमें सन्देह नहीं है।

ग्रामदान वर्तमान समाज की जातिवाद, सम्प्रदाय और क्षेत्रवाद जैसी संकीर्ण धारणाओं की जगह समन्वय और सहयोग पर आधारित गाँव के परिवारीकरण की भावना पर आधारित एक व्यापक धारणा है। यह समाज की त्रिविध शक्ति है स्त्री शक्ति, श्रम शक्ति और युवक शक्ति। वर्तमान समाज को गुलामी से मुक्त करने का विचार है क्योंकि गाँव सभा में सभी को समान रूप से भाग लेने का अधिकार रहता है। आचार्य राममूर्ति कहते हैं कि स्त्री की शक्ति से समाज चलता है, मजदूर की शक्ति से पलता है और युवक की शक्ति से समाज बदलता है। इन तीनों की मुक्ति के बिना समाज में परिवर्तन की बात सम्भव नहीं है। इसमें मुख्य बात समाज के सम्पूर्ण ढाँचे व संरचना को बदलने के लिए मूल्य परिवर्तन और विचार परिवर्तन व स्थिति परिवर्तन करने की है। यह एक नैतिक धारणा है।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार आज के समय में गाँधीवादी तरीका ही समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तन का सबसे अच्छा तरीका है। उन्होंने भूदान और ग्रामदान को नवीन जीवन पद्धति सम्बन्धी एक नवीन सामाजिक दर्शन की संज्ञा दी है।

गाँधी ने सर्वोदय का एक सिद्धान्त दिया था। यह माना गया कि जिससे समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सभी प्रकार की समस्याओं तथा बुराईयों का अन्त हो जाएगा, एक शोषण रहित समाज की स्थापना हो सकेगी जो सत्य, अहिंसा और नैतिकता के सिद्धान्त पर आधारित होगी। गाँधीजी के आध्यात्मिक शिष्य विनोबा भावे द्वारा सर्वोदय के व्यावहारिक एवं रचनात्मक प्रयोग के रूप में भूदान तथा ग्रामदान आन्दोलन चलाए। जयप्रकाश नारायण अपने को पूरी तरह सर्वोदय आन्दोलन के लिए समर्पित कर जीवनदानी बन गये।

15.6 सर्वोदय की प्रासांगिकता

महात्मा गाँधी ने मानव समाज की समस्याओं का व्यवहारिक समाधान करने का प्रयास किया है। गाँधी की समग्र मानव की अवधारणा सम्पूर्ण विश्व संस्कृति के लिए एक अद्भुत व

अपूर्व योगदान है। समग्र मानव की यह अवधारणा हर्बर्ट मारक्यूज की तरह मनुष्य को एक-आयामी न मानकर चेतना की अनन्त सम्भावनाओं से युक्त बहु-आयामी प्राणी मानती है। गाँधी ने मानव जीवन के लिए समग्र दृष्टिकोण एवं विश्व-दृष्टि की प्रस्तुति की है।

विश्व शांति की समस्या आज अत्यन्त गंभीर हो गयी है। वर्तमान परिवेश में इसका समाधान काफी कठिन दिखता है। विनोबा ने स्पष्ट किया है कि, " विश्व योजनाओं और विधानों के बल पर इस समस्या का हल नहीं हो सकता है, क्योंकि विश्व शांति की समस्या तत्वत: नैतिक है। जब तक हम अपने प्रश्नों को नैतिक एवं मानवीय दृष्टिकोण से देखने के आदी नहीं हो जाते अर्थात् जब तक राष्ट्रों के बीच परस्पर सदभावना और संवेदना का प्रादुर्भाव नहीं होता तब तक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का अन्त नहीं होगा।

अहिंसा, प्रेम और शान्ति के कार्यक्रम से ही शोषणविहीन, विषमता रहित समाज की स्थापना हो सकती है। जयप्रकाश नारायण के अनुसार आज के समय में गाँधीवादी तरीका ही समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तन का सबसे अच्छा तरीका है उन्होंने भूदान और ग्रामदान को नवीन जीवन पद्वाति सम्बन्धी एक नवीन सामाजिक दर्शन की संज्ञा दी है। भूदान और ग्रामदान का उद्देश्य आन्दोलन केवल समाज में भूमि का समान वितरण करना ही नहीं बल्कि समाज में समन्वय की भावना पर आधारित हृदय विचार और कार्यों तथा भावनाओं को जोड़ने का विचार है।

सर्वोदय की उपादेयता का मूल्यांकन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि वर्तमान विश्व की स्थान है। दोनों में कहीं कोई विरोध व संघर्ष नहीं है, दोनों में आध्यात्मिक भाईचारा है।

विश्व मानव समाज को समस्याओं व बुराईयों से छुटकारा दिलाने में विश्व की सभी विचारधाराऐं विफल रही हैं और सर्वोदयी विचारधारा को व्यवहार में लाने के गम्भीर प्रयास नहीं किये गये परन्तु मानव के कल्याण, मानव की गरिमा को सुनिश्चित व सुरक्षित रखना मानवता के लिए सर्वोदय की अवधारणा एक आशाजनक विकल्प हो सकता है। मानव जाति का भविष्य गाँधीवादी विचारधारा- सर्वोदय में ही सुरक्षित है। सर्वोदय कोई सम्प्रदाय नहीं है, यह तो एक विश्व धर्म है, विश्व-शान्ति का दर्शन है। विश्व में ज्यों-ज्यों अहिंसा का वैश्वीकरण हो रहा है, त्यों-त्यों विश्व नागरिकता, विश्वधर्म और विश्व राज्य की बातें बढ़ रही हैं। अत: सर्वोदय का भविष्य उज्जवल दिखायी दे रहा है।

15.7 सारांश

भारतीय समाज वर्षों से दुखों, कष्टों से कराह रही थी। समाज में तनाव, संघर्ष, वैमनस्य. असमानता, अन्याय, अधर्म, शोषण एवं हिंसा का चारों तरफ साम्राज्य था। महात्मा गाँधी ने भारतीय संस्कृति के आधार वाक्य " सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया" के आलाक में नवीन सामाजिक रचना का नवीन कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इसके लिए सर्वोदय का सिद्घान्त दिया। सर्वोदय का सिद्घान्त बहु आयामी सिद्घान्त है (सबका सब प्रकार से उदय कल्याण और विकास)। महात्मा गाँधी ने मानव समाज को समस्याओं से मुक्त करने के लिए सर्वोदय का एक सैद्घांतिक विचार दिया। महात्मा गाँधी के पश्चात् उनके आध्यात्मिक शिष्य विनोबा भावे

ने सर्वोदय के सिद्धान्त का भूदान एवं ग्रामदान के रूप में व्यावहारिक प्रयोग कर मानव समाज की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया। भूदान एवं ग्रामदान के माध्यम से विश्व मानव समाज को यह सोचने के लिए बाध्य किया कि अहिंसा के माध्यम से मानव समस्याओं का समाधान सम्भव है अर्थात् सर्वोदय एक विचार है, एक सिद्धान्त है, एक प्रक्रिया है, एक माध्यम है, एक व्यवस्था है।

15.8 अभ्यास प्रश्न

1. महात्मा गाँधी की सर्वोदय की अवधारणा का विस्तार से वर्णन करें।
2. सर्वोदय के विभिन्न आयामों की व्याख्या कीजिए।
3. "सर्वोदय नवीन समाज निर्माण की एक प्रक्रिया भी है, एक व्यवस्था भी, एक कार्यक्रम है" विवेचना कीजिए।
4. सर्वोदय के व्यावहारिक प्रयोगों की विवेचना कीजिए।

15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वेट्टिकल, थोमस वेट्टिकल गाँधीयन सर्वोदय : रीयालाइसिंग ए रियलिस्टिक युटोपिया, नेशनल गाँधी म्यूसियम एवं ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2002
2. अय्यर, आर. एन., मॉरल एण्ड पॉलिटिकल फिलोसॉफी ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., नई दिल्ली, 1973
3. पारीख, भीखू, " गाँधी : ए वेरी शॉर्ट इन्ट्रूडेक्सन, प्रथम भारतीय संस्करण, ओ.यू.पी., नई दिल्ली, 2007
4. दाधीच, नरेश (सम्पादित), टुवर्डस ए मोर पीसफुल वर्ल्ड : इन्टरनेशनल एण्ड इण्डियन परस्पेक्टिव, आलेख पब्लिशर्स, जयपुर, 2004
5. धवन, जी. एन., द पोलिटीकल फिलास्फी ऑफ महात्मा गाँधी, सस्ता साहित्य मण्डल, मुम्बई, 1990
6. सिंह, रामजी, गाँधी और भावी विश्व व्यवस्था, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000

इकाई - 16

शान्ति सेना

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 शान्ति सेना की आवश्यकता
16.3 गाँधी द्वारा प्रस्तुत शान्ति सेना का विचार
16.3.1 शान्ति सेना का जन्म
16.3.2 शान्ति सेना की क्रिया विधि का सैद्धान्तिक आधार
16.3.2.1 सत्य की खोज
16.3.2.2 प्रत्यक्ष हिंसा से बचाव तथा रोकथाम
16.3.2.3 संगठनात्मक हिंसा का प्रतिकार
16.3.2.4 अहिंसक नीतियाँ तथा जीवन मूल्य
16.3.2.5 आंतरिक शान्ति
16.3.3 शान्ति सैनिक की योग्यतायें
16.4 सारांश
16.5 अभ्यास प्रश्न
16.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित के बारे में अपना समझ विकसित कर सकेंगे:-

- शान्ति सेना का अर्थ, उद्देश्य एवं कार्य।
- शान्ति सेना का महत्व एवं आवश्यकता।
- गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत शान्ति सेना का चिन्तन।

16.1 प्रस्तावना

इतिहासकारों की दृष्टि में बींसवी शताब्दी मानव इतिहास की सर्वाधिक खून खराबे वाली शताब्दी रही है। सम्पूर्ण विश्व में युद्ध एवं खूनी क्रांतियों के साथ साथ सुनियोजित हत्याओं एवं विनाश ने मानवता को अतुलनीय पीड़ा एवं कष्ट दिया है। इससे भी अधिक कष्ट दायक रहा, स्थानीय स्तर पर इस युद्ध एवं हिंसा को विवादों के हल के लिए स्वीकार्यता मिलना।

महात्मा गाँधी ने विवादों के हल के लिए इन संगठित एवं असंगठित हिंसक आंदोलनों के विपरीत, विवादों के हल के लिए अहिंसा का मार्ग न सिर्फ विकसित किया बल्कि उसे प्रयुक्त भी किया। उन्होंने कहा अहिंसा को प्रतिहिंसा से समाप्त नहीं किया जा सकता, इसके लिए एक

मात्र मार्ग अहिंसा ही हो सकती है। उनके अनुसार मानवता के पास सबसे बड़ा हथियार अहिंसा ही है। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इन शब्दों में अभिव्यक्ति दी "वर्तमान समय में प्रश्न हिंसा और अहिंसा के मध्य चुनाव का नहीं हैं, अहिंसा और अस्तित्वविहीनता में से किसी एक का चुनाव करना पड़ेगा।"

गाँधी जी इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे कि हिंसक आंदोलन और युद्ध, प्रतिहिंसा या निष्क्रियता से समाप्त नहीं किए जा सकते। उनका विश्वास था कि जो कुछ तलवार से अर्जित किया गया है, वो एक दिन तलवार के कारण ही छिन भी जाएगा। इसीलिए उन्होंने शांति के लिए कार्य करना चाहा, जिसकी हर गतिविधि एवं रूप में अहिंसा है। उन्होने युद्ध की ही भाँति शांति को भी एक नियोजित रूप देना चाहा, इसके लिए एक संगठित समर्पित, प्रशिक्षित एवं निशस्त्र स्वयंसेवकों के संगठन के बारे मे सोचा जो अहिंसा के माध्यम से शांति स्थापना के लिए कार्य करे। गाँधी जी ने इस अहिंसक संगठन को शांति सेना का नाम दिया। उन्होंने इस विचार को 1938 में इस प्रकार समझाया "कुछ समय पहले मैने शांति सेना संगठन का सुझाव दिया, जिसके सदस्य अपने जीवन को दंगो, मुख्य रूप से साम्प्रदायिक दंगो को सुलझाने में लगा दें। यह सशस्त्र बल एवं पुलिस, यहाँ तक कि सेना को भी प्रतिस्थापित कर सके।"

इक्कीसवीं सदी अपने प्रारम्भ में ही युद्ध की विभिषिका की साक्षी रही है युद्ध सिर्फ उन्हीं देशों को प्रभावित नहीं करता जो प्रत्यक्ष लड़ रहे हैं, बल्कि उन पर भी अपना विपरीत प्रभाव डालता है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से युद्ध से दूर है। दूसरे क्षेत्रों में अच्छा कार्य करते हुए भी, संयुक्त राष्ट्र युद्ध की विभिषिका को टालने में असफल रहा है। शांति स्थापना में आमुखीकरण एवं प्रशिक्षण के अभाव में शांति स्थापक संगठन असफल सिद्ध हुए। राष्ट्रीय स्तर पर भी अपराध एवं सामूहिक हिंसा के मामले दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं, बावजूद इसके कि पुलिस एवं अन्य कानून स्थापित करने वाले बलों एवं संस्थानों में वृद्धि हुई है। ये असफलताऐं इन संगठनों की पारम्परिक कार्य प्रणाली (हिंसा एवं बल प्रयोग) पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। क्या वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विवादों को हल करने एवं शांति स्थापना में यह कार्यप्रणाली प्रासंगिक है? गाँधीजी ने शांति सेना के विचार को भारत में साम्प्रदायिक हिंसा एवं विश्वयुद्ध की संभावनाओं को समग्र रूप से हल करने के रूप में देखा।

उनके अप्रत्याशित निधन के कारण शांति सेना का विचार मूर्तरूप नहीं ले सका हालांकि उनका जीवन एवं मृत्यु शांति सेना के लिए आदर्श प्रारूप थे। गाँधी जी के बाद विनोबा भावे और जयनारायण ने उनके इस विचार को मूर्त रूप देने का प्रयास किया। भूदान आंदोलन के दौरान उन्होनें प्रतेयक गाँव में शांति सेना स्थापित करने का प्रयास किया।

16.2 शान्ति सेना की आवश्यकता

वर्तमान सभ्यता के विकास ने मानवता के सामने अनेकों बहुमुखी एवं बहुआयामी चुनौतियाँ प्रस्तुत की है। जबकि दूसरी ओर इनसे निपटने के तरीके हमेशा एकपक्षी ही रहें हैं, तथा तरीके अपनायें गये वो हिंसा उन्मुख थे। हिंसक तरीको के बढ़ते प्रयोग तथा उन पर निर्भरता ने समाज, राष्ट्र एवं वृहद् स्तर पर विश्व को भ्रष्ट किया है। यह कहा जाता है कि जब

हिंसा सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य हो तो यह मानव नैतिकता, बौद्धिकता, विज्ञान, श्रम, धन, संसाधन, समय, तकनीकी आदि को मानव सेवा से उन्मुख कर विनाशोन्मुख बना देती है।

वर्तमान विश्व, हिंसा एवं अस्तित्व के प्रश्न से संबधित चार प्रमुख मुद्दो पर जूझ रहा है, जिनको सुलझाने के लिए नई पहल एवं संस्थानों की आवश्यकता होगी। ये हैं-

1. विवादों से निपटने के तरीके
2. हिंसा
3. संरक्षा एवं सुरक्षा तथा
4. विकास का अभाव

1. विवादों से निपटने के तरीके

विवाद मूलत: बुरे या विनाशात्मक नहीं होते हैं। विवादों को सृजनात्मक या विनाशात्मक रूप दिया जा सकता है। यह निर्भर करता है कि विवादों को किस रूप में ग्रहण किया गया तथा किस प्रकार उनसे निपटा गया। यदि विवादों को ठीक प्रकार से नहीं निपटा जाये तो ये हिंसक बन जातें हैं तथा विनाश का कारण बनते है और यदि ठीक प्रकार से निपटा जाए तो विकास ओर उन्नति को जन्म देतें है।

डॉ. केनिथ बोल्डिंग ने विवादों से निपटने के तरीको को प्रक्रियात्मक एवं अप्रक्रियात्मक तरीको में वर्गीकृत किया है। अप्रक्रियात्मक का अर्थ है, बिना किसी तय प्रक्रिया या मानदण्डों का अनुसरण किए विवादों से निपटना जिसमें मूलत: हिंसा एवं उत्पीड़न का सहारा लिया जाता है। हिंसक कार्यवाही की तीव्रता शासन की शक्ति पर निर्भर करती है, और इसकी परिणति शत्रुता एवं स्थायी विवाद के रूप में होती है।

जबकि प्रक्रियात्मक तरीके, वर्गीकृत एवं सुनियोजित प्रतिक्रिया होती है। जिसकी परिणति दोनों ही पक्षों के लिए सुखद होती है। इस प्रक्रिया में मूलत: अहिंसक तरीके अपनाए जातें है, इनमें शामिल है-

1. समझौता :- इसमें दोनों पक्षों को एक साथ बैठाकर आपसी बातचीत के माध्यम से एक ऐच्छिक समझौते के द्वारा विवाद का हल किया जाता है।
2. न्यायिक प्रक्रिया:- राज्य की शक्तियों एवं कानून तंत्र के माध्यम सें अंतिम निर्णय पर पहुँचा जाता है।
3. बीच बचाव:- तृतीय पक्ष के माध्यम से आपसी समझौते के द्वारा विवाद का हल किया जाता है।
4. मध्यस्थता:- पूर्व आपसी सहमति के आधार पर तृतीय पक्ष को मध्यस्थ बनाकर विवादों का हल किया जाता है।
5. मिश्रित प्रक्रिया - वर्तमान समय में विवादों के हल के लिए एक से अधिक तरीकों को भी काम में लेते हैं, ताकि शीघ्र एवं उचित हल मिल सके। इसी लिए इन्हें मिश्रित प्रक्रिया कहा जाता है।

विवाद की स्थिति में शीघ्र एवं प्रभावी हल प्राप्त करने के लिए लोगों को इन प्रक्रियाओं के प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। गाँधी जी ने शांति सैनिक को इन प्रक्रियाओं के लिए भली भाँति प्रशिक्षित करने की बात की थी।

2. हिंसा

विश्व समुदाय के समक्ष दूसरी सबसे बड़ी चुनौती हिंसा है। हिंसा इस समय जीवन के हर पहलू में व्याप्त है। घरेलु हिंसा से लेकर आतंकवाद एवं विश्व युद्ध तक हिंसा के विभिन्न रूप हैं। एक अध्ययन के अनुसार हिंसा प्रत्येक स्तर पर हर जगह व्याप्त है।
जैसे कि -

- अमेरिका एवं रूस की तर्ज पर भारत और पाकिस्तान द्वारा किए गए परमाणु परीक्षणों ने पूरे विश्व को परमाणु हथियारों की दौड़ में शामिल कर दिया है। मिसाइल क्रांति ने भी अनेकों विकासशील देशों की सुरक्षा चिंता को बढ़ाया है।
- एक ध्रुवीय विश्व में अमेरिका के नेतृत्व में, विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासशील देशों की सीमा अतिक्रमण ने पूरे विश्व को युद्ध के कगार पर खडा कर रखा है।
- किसी विशिष्ट आस्था या विचार से सम्बंधित व्यक्ति या संगठनों द्वारा सुनियोजित आतंकवाद ने विश्व के अनेकों भागों को त्रस्त कर रखा है।
- सेमुएल हंटिग्टन के अनुसार नवीन वैश्विक विवाद तंत्र की शुरूआत संस्कृति एवं सभ्यता के आधार पर समाजों एवं देशों के मध्य संघर्ष से हुई।
- घरेलु एवं सामाजिक जीवन में दिन प्रतिदिन हिंसा विविध रूपों में बढ़ती जा रही है। जो वृहद् स्तर पर समाज एवं मानव के अस्तित्व पर भी खतरा बनता जा रहा है।
- हिंसक विवादों से निपटने के लिए सुसंगठित एवं सुनियोजित शांति सेना जैसे संगठनों की आवश्यकता होगी। वैश्विक अहिंसक शांति स्थापना के लिए पूरे विश्व में प्रयास चल रहे हैं।

3. संरक्षा एवं सुरक्षा

मानव मात्र के लिए सिद्धान्तों एवं संगठनों से सम्बंधित एक प्रमुख प्रश्न संरक्षा एवं सुरक्षा का है। ' यदि आप शांति चाहते हैं, तो युद्ध त्यागने के लिए तैयार रहें' के सिद्धान्त को सभी देशों द्वारा स्वीकार करना होगा। अधिकतर देश प्रीति वर्ष अपनी सकल आय का 15 से 20 प्रतिशत हिस्सा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सुरक्षा पर खर्च कर रहे हैं। गत शताब्दी में लगभग 250 छोटे बड़े युद्ध विश्व के विभिन्न भागों में लड़े गऐ जिनमें लगभग पाँच करोड लोगों ने जान गवाँई। हथियारों के लिए बढ़ती अंधी दौड़ ने न केवल हिंसक प्रक्रिया को तीव्र किया है, बल्कि संपूर्ण विश्व को विध्वंष के कगार पर ला खड़ा किया है। आधुनिक युद्ध की विध्वंषकता संगठित एवं अमानवीय हो चुकी है। थामस मेर्टन के अनुसार आधुनिक युद्ध में वास्तविक समस्या सामनें का युद्ध नहीं है, बल्कि सुदूर योजना केन्द्रों से संगठित तकनीकी विध्वंश है।

आधुनिक तकनीकी वृहद् हिंसा अमूर्त, सामूहिक, व्यापार जैसी, अपराध बोध से मुक्त है, जिसके कारण व्यक्तिगत हिंसा से हजारों गुना घातक एवं प्रभावी है।

पूर्व सोवियत संघ के राष्ट्रपति गोर्बाचोव ने कहा था कि सुरक्षा का विचार हमेशा ही गलत अर्थों में ग्रहण किया जाता रहा है, जबकि इस विचार को शांति के प्रसार एवं स्थायी शांति स्थापना के अर्थों में लेना चाहिए।

इन सब के विपरीत दूसरे पहलू पर भी विचार करें। 27 देशों में किसी प्रकार की' सेना नहीं है। अनेकों देशों के नागरिकों ने अपने आपको वृहदसंहारक हथियारों एवं युद्ध के विरूद्ध संगठित् किया है। इस परिप्रेक्ष्य में शांति स्थापना एवं प्रसार में शांति सेना की भूमिका बहुत ही प्रासंगिक हो जाती है।

4. विकास का अभाव

विकसित एवं विकासशील देशों में आर्थिक असमानता तेजी से बढ़ती जा रही है। 20 प्रतिशत धनाढ्य विश्व की, 20 प्रतिशत सबसे गरीब राष्ट्रों की तुलना में आय 150 गुना अधिक है। विश्व बैंक के आकलन के अनुसार लगभग 1.5 अरब लोग विश्व में निरपेक्ष गरीबी की हालात में जीवन यापन कर रहें हैं। जिसकी प्रतिदिन आय एक डॉलर से भी कम है।

गाँधी जी ने कहा था कि जब तक बड़े राष्ट्र शोषण एवं हिंसक प्रवृति को नहीं छोड़ेंगे जिसकी कि परिणति युद्ध एवं एटम बम के रूप में होती है, तब तक विश्व में शान्ति की बात करना बेमानी होगा इस परीप्रेक्ष्य में शांति, जिसका अर्थ होगा ऐसी दुनिया जो असमानता, युद्ध, आतंक एवं हिंसा से मुक्त हो, की मरिचिका ही सिद्ध होगी। कभी कभार सशस्त्र बल, प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में भूख एवं बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करते हैं तथापि हमें एक ऐसे बल की आवश्यकता है जो सतत् रूप से न्याय एवं समानता पर आधारित समाज निर्माण के लिए कार्य करे।

16.3 गाँधी द्वारा प्रस्तुत शान्ति सेना का विचार

गाँधी जो के लिए शांति सेना का विचार उनके जीवन का एक अनवरत विकासशील विचार था। यद्यपि उन्होंने इस विचार को प्रमुखता से शांति सेना नाम किया तथापि उन्होनें शांति दल, सत्याग्रही सेना, शांति के सैनिक, राष्ट्रीय स्वयंसेवी सिपाही, शांति की सेना, अहिंसा के सिपाही, अहिंसक सेना, अहिंसक स्वयंसेवी सेना, सत्याग्रही टुकड़ी तथा निशस्त्र सेना जैसे नामों से भी अपने विचार को अभिव्यक्ति दी। यह अपने आप में शांति सेना के सतत् विकासशील विचार को व्यक्त करता है। जिसके चलते उन्होने मौटे तौर पर इसकी संरचना, क्रियात्मक विधियाँ और इसके सदस्यों की गुणवत्ता तय की।

16.3.1 शान्ति सेना का जन्म

गाँधी जी का यह विचार एक दिन के चिन्तन की देन नहीं था। उनके लिए अहिंसा मात्र एक दर्शन नहीं बल्कि दैनिक अभ्यास का विषय थी। फिर भी उन्होंने इसे एक संगठित रूप देने से पहले अनेकों कसौटियों पर परखा। इसी परिप्रेक्ष्य में शांति सेना के विचार पर भी पूरे जीवन प्रयोग किए।

गाँधी जी की शांति स्थापना की सफलता की कहानी दक्षिण अफ्रीका से प्रारम्भ होती है, जहां वे एक कानूनी सलाहकार के रूप में गए थे परन्तु उन्होनें दादा अब्दुल्ला शेख और शेख

तैयब हाजी खान मोहम्मद के मध्य विवादों को सुलझाने में मध्यस्थ की भूमिका अदा की। इस घटना ने उन्हें बदल दिया और बाद में कितने ही विवादों को सुलझाने में उन्होनें भूमिका निभाई। उन्होंने इस घटना को अपनी आत्मकथा में इस रूप में उल्लेखित किया " यह सबक मेरे जीवन में इस कदर गहरे तक उतरा कि बीस वर्ष के वकील के रूप में बितायें जीवन में से अधिकतर समय सैकड़ों व्यक्तिगत मामलों में समझौते कराने में बीता।"

अक्टूबर 1913 का ट्रांसवाल मार्च (जिसे उन्होंने शांति की सेना कहा जिसमें 2037 पुरूष, 127 महिलाऐं तथा 57 बच्चे थे), डरबन में 1897 का इंडियन एम्बुलेंस दस्ता, तथा 1899 का क्षुधा राहत कार्य, जोहान्सबर्ग में 1904 का ब्लैक प्लेग राहत कार्य तथा 1910 में टालस्टॉय फार्म की स्थापना (सत्याग्रही परिवारों के पुर्नवास हेतु) को शांति सेना के विचार के अंकुरण काल के रूप में देखा जा सकता है।

भारत वर्ष में गाँधी जी ने अनेक अवसरों पर शांति स्थापना हेतु विभिन्न स्तरों (व्यक्तिगत, सामूहिक, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय)पर अथक प्रयास किए ।

उनकी नवोन्मुख एवं संरचनात्मक भूमिका से चम्पारण किसानों का मुद्दा (1917), अहमदाबाद के मिल श्रमिकों का मुद्दा (1917) तथा खिलाफत आंदोलन (1920) के मुद्दे को हल किया जा सका। उनके संगठनात्मक प्रयासों से 1921 में राष्ट्रीय स्वयं सेवी दल (शांति सेना का पूर्व रूप), उत्तर पश्चिय मोर्चे पर 1929 में खुदाई खिदमतगार, 1930 में 79 सत्याग्रहियों के साथ नमक सत्याग्रह में उनकी सीधी भूमिका तथा 1947 में नौखाली एवं बिहार के शांति मिशन को, शांति सेना के गठन के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। उनके सीधे सीधे शांति सेना के निर्माण के प्रयासों के अलावा विभिन्न समयों पर शांति हेतु उनके द्वारा किए गए कार्य भी शांति सेना के गठन एवं विकास की दिशा में प्रयास के रूप में देखे जा सकते है।

इन सभी शांति एवं शांति संबंधी प्रयासों में गाँधी जी ने विविध रूपों में शांति सैनिक की भूमिका अदा की। उनके सकल रूप में शांति एवं अहिंसा हेतु किए गए प्रयास मानव जाति के उन्नयन हेतु नए आयाम के रूप में स्थापित हुए।

16.3.2 शान्ति सेना की क्रिया विधि का सैद्धान्तिक आधार

गाँधी जी के अनुसार एक आदर्श शांति सैनिक को पाँच मूल सिद्धान्तों पर कार्य करना चाहिए -

16.3.2.1 सत्य की खोज

16.3.2.2 प्रत्यक्ष हिंसा से बचाव तथा रोकथाम

16.3.2.3 संगठनात्मक हिंसा का प्रतिकार

16.3.2.4 अहिंसक नीतियाँ तथा जीवन मूल्य (प्रेम, सौहार्द एवं सेवा)

16.3.2.5 आंतरिक शान्ति

इन पाँचो आयामों में सहसम्बन्ध अन्तर्निहित है तथा समग्र रूप से ग्रहण करने चाहिये। इन पाँचों आयामों पर कार्य करने वाला ही एक आदर्श शांति सैनिक हो सकता है, जबकि इन पाँचों आयामों का एक साथ अनुसरण करने की भी अपनी सीमाऐं है। उनका विश्वास था कि

आदर्श रूप से अहिंसक लोगों की सेना कभी नहीं हो सकती। यह सिर्फ उनके द्वारा बन सकती है, जो सत्यनिष्ठा से अहिंसा में विश्वास करते है। फिर भी यदि कोई व्यक्ति इनमें से एक या दो घटकों पर खरा नहीं उतरता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वो शांति सैनिक नहीं हो सकता। यद्यपि संगठन के केन्द्रीय व्यक्तियों के लिए पाँचों आयाम महत्वपूर्ण हैं तथापि प्रत्येक शांति सैनिक आवश्यक नहीं कि वे पाँचों आयामों पर खरा उतरे। एक या दो आयामों का पूर्णता से पालन करने वाला भी शांति सैनिक हो सकता है।

16.3.2.1 सत्य की खोज

गाँधी जी ने अपने पूरे जीवन काल में अनवरत बढ़ते समर्पण एवं विनम्रता के साथ सत्य की खोज जारी रखी। उन्होने सत्य को निरपेक्ष सत्य, सापेक्ष सत्य एवं समतुल्य सत्य में विभेदित किया। इश्वरीय सत्य एवं सापेक्ष सत्य उनके जीवन के लिए अटल सत्य थे। उनका विश्वास था कि हिंसा और विवाद सत्य की अनदेखी से उत्पन्न होतें है। चूंकि विशुद्ध एवं वास्तविक सत्य को समझने में व्यक्ति विशेष की अपनी सीमाऐं होती हैं, अत: उन्होनें सुझाव दिया कि अपनी आत्मानुभूति एवं सतत प्रयासों से दूसरो में सत्य की अनुभुति करनी चाहिए। उनके लिए सत्य एक लक्ष्य था, जिस तक अहिंसा के माध्यम से ही पहुँचा जा सकता था। वो कहते थे जहाँ अहिंसा है, वहीं सत्य है और सत्य ही ईश्वर है।

उनके अनुसार एक शांति सैनिक के लिए निम्न माध्यमों के द्वारा अनवरत सत्य की खोज आवश्यक थी।

- **अहिंसक वार्तालाप**

उनके अनुसार वार्तालाप के दौरान, श्रवण, बर्ताव, बोलने के दौरान तथा कायिक या सांकेतिक रूप से किसी प्रकार भी भावनात्मक चोट न पहुँचायी जाये। इसे विनम्र वार्तालाप कहा जा सकता है। अहिंसक वार्तालाप को हम दो प्रमुख घटकों के रूप में देख सकतें है। पहला किस प्रकार हम खुद को व्यक्त करते है, और किस रूप में दूसरे कि सुनते या ग्रहण करते है। इसका अर्थ है हम क्या चाहते हैं, जब दूसरें से इन सबका प्रतिउत्तर प्राप्त करतें है। दूसरा हम अपने संवाद में प्रतिरोधक, रक्षात्मक तथा हिंसक प्रतिक्रिया को कम से कम कर दें।

गाँधी जी ने विनम्र वार्तालाप का सम्पूर्ण जीवन में अभ्यास किया, यहाँ तक, कि जब उन्हें राजनीतिक विरोधियों की आलोचनाओं का सामना करना पड़ा, तब भी अपने विनम्र वार्तालाप को नही छोड़ा।

- **संवाद**

दूसरों के अन्दर निवास करने वाले सत्य को जानने एवं उसका सम्मान करने के लिए संवाद आवश्यक है। संवाद मात्र सूचनाओं एवं ज्ञान के आदान प्रदान की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह वांछित एवं सफल मानव सहसम्बंधों की स्थापना का माध्यम है। प्रत्येक व्यक्ति अंतिम रूप से वास्तविकता को विभिन्न रूपों में ग्रहण करता है, सिर्फ संवाद के माध्यम से ही उस अंतिम सत्य को समग्र रूप में समझा जा सका है। संवाद के दौरान लोग एक दूसरे को सुनते हैं तथा प्रतिक्रिया देते हैं, जो उनकें मध्य सम्बंध स्थापित करने तथा जारी रखने मे सहयोगी है।

- **पारदर्शिता**

पारदर्शिता का अर्थ है - स्वयं के जीवन तथा दूसरे के साथ सम्बंधों में पारदर्शिता। गाँधी जी ने कहा था, "सत्य गोपनीयता से घृणा करता है, आप जितने पारदर्शी होगें, उतने ही सत्य के निकट होगें।"

- **सर्वधर्म समभाव**

सत्य के सभी रूपों (ईश्वर) में आस्था रखना, इसका अर्थ है सभी धर्मों का उसी प्रकार सम्मान करना जैसे की आप अपने धर्म का करतें हैं, इसे इस प्रकार से भी परिभाषित किया जा सकता है "व्यक्ति अपने स्वधर्म में स्थित रहे तथा दूसरे धर्म के लोगों एवं आस्था के प्रति आदर पूर्ण रहे।"

- **आत्ममूल्यन**

यह वो प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति स्वयं को एवं अपने कार्य को प्रकषति एवं संस्कृति से जोड़ना सीखता है। यह व्यक्ति को, स्वयं को मात्र एक दमित बिम्ब स्वीकार करने से रोकता है एवं व्यक्तिगत क्षमताओं को अपेक्षित सम्मान देने हेतु सक्षम बनाता है। यदि ऐसा संभव होता है तो करोड़ो गरीब एवं दमित लोग जाग उठेगें एवं स्थापित शक्ति केन्द्रों को उखाड़ फेकेंगे।

- **रूपान्तरण**

रूपान्तरण, नए सत्य की प्राप्ति पर बदलने की आत्मेच्छा की प्रक्रिया है। जब गाँधी जी ने अहिंसक क्रांति के बारे में समझाया तो उन्होनें कहा "यह शक्ति को अवरूद्ध करने की योजना नहीं है।" यह योजना है अन्तर्सम्बन्धों को रूपान्तरित करने की, जिसकी परिणति शांति पूर्वक शक्ति स्थानान्तरण के रूप में होगी।

16.3.2.2 प्रत्यक्ष हिंसा से बचाव तथा रोकथाम

शांति सेना के लिए सबसे महत्वपुर्ण कार्य था, प्रत्यक्ष हिंसा के विविध रूपों यथा हत्या, घात, प्रहार, सम्पति का विनाश, युद्ध इत्यादि से बचाव एवं उनकी रोकथाम। गाँधी जी का विश्वास था कि सिर्फ अहिंसा के माध्यम से ही इन समस्याओं का हल हो सकता है। उन्होंने कहा था मानवता को हिंसा से दूर रखने का एक मात्र उपाय अहिंसा ही है। अणु बम के युग में शुद्ध अहिंसा ही हिंसा के समस्त प्रकारों का प्रतिकार कर सकती है।

प्रत्यक्ष हिंसा से बचाव एवं उसकी रोकथाम के लिए निम्न विधियों को प्रयोग किया जा सकता है:-

- **विवादों का शांतिपूर्ण हल एवं शांति स्थापना**

संवाद, परामर्श, मध्यस्थता, साथ ही साथ कानूनी एवं न्यायिक प्रक्रियाओं के माध्यम से सौहार्द पूर्ण माहौल में विवादों का हल एवं शांति स्थापना द्वारा।

- **आपात बीच-बचाव**

एक शांति सैनिक को विवाद के उग्र होनें से पहले ही दोनों समूहो के बीच एक तटस्थ बल की भाँति कार्य करना चाहिए ताकि युद्ध और दंगों की स्थिति से बचा जा सके।

- **वैकल्पिक बचाव**

जब कभी भी राज्य पर बाहरी ताकतों का हस्तक्षेप बढ़े तो बाहरी ताकतों को उनके साथ असहयोग एवं अवज्ञा के माध्यम से राज्य से बाहर निकाल फैंकें।

- **नि:शस्त्रीकरण**

निशस्त्रीकरण से तात्पर्य है एक पक्षीय, द्विपक्षीय या बहु पक्षीय सहमति के आधार पर हथियारों का उत्पादन, वितरण एवं उपयोग की रोकथाम। गाँधी जी कहा करते थे कि जब तक महा शक्तियाँ अपने आपको निःशस्त्र करने का निर्णय नहीं लेती, शांति स्थापना नहीं हो सकती।

16.3.2.3 संगठनात्मक हिंसा का प्रतिकार

विश्व में इस समय संगठनात्मक हिंसा एक बड़ी समस्या है जो असमानता, अन्याय, शोषण आदि के माध्यम से होती है। इस प्रकार की संगठनात्मक अन्तर्निहित हिंसा सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक सांस्कृतिक तथा मानव जीवन के अनेकों पहलुओं में व्याप्त है। इसे चुनौती देना चाहिए इसके लिए सत्य एवं अहिंसा पर आधारित नए संगठनों के निर्माण की आवश्यकता है। इसके लिए निम्न गतिविधियाँ जरूरी हैं :-

अहिंसक प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया (सत्याग्रह)

जब न्याय, स्वतंत्रता आदि के आधारभूत प्रश्न समक्ष हों तो सत्याग्रह आवश्यक है। एक बार जब विवादों के हल के दूसरें तरीके असफल हो जाऐं तो न्याय एवं स्वतंत्रता की स्थापना के लिए सत्यग्रह के रूप में प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया की आवश्यकता होगी। असहयोग एवं आत्म-तप तब सत्याग्रह का रूप ले लेता है, जब सत्यप्रेम एवं आध्यात्म उसमें सम्मिलित हो जाए। इस अहिंसक प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया के लिए योजना,, प्रशिक्षण एवं नेतृत्व आदि की आवश्यकता होती है।

- **सृजनात्मक कार्य**

वैकल्पिक एवं समानान्तर शांति स्थापना के लिए दूर गामी कार्यप्रणाली है - सृजनात्मक कार्य। ब्रिटिश समय में खादी एवं ग्रामोद्योग संघर्ष का पयार्य बन गया था।

- **अहिंसक संगठन एवं प्रबंधन क्षमता**

गाँधीजी हिंसा को चुनौति देने के लिए संगठन बनाते थे। उन्होनें समझाया एक रूढिवादी सोच के साथ संगठन संभव नहीं हैं। सभी अहिंसक ताकतों की एकता आवश्यक है। मैं प्रयोगों के माध्यम से इसकी संभावनाओं को सिद्ध करता रहा हूँ। उन्होनें अहिंसा के प्रकार एवं अभ्यास के लिए अनेकों संगठन स्थापित किए।

16.3.2.4 अहिंसक नीतियाँ तथा जीवन मूल्य (प्रेम, सौहार्द एवं सेवा)

गाँधीजी के अनुसार बहादुरी किसी को मारने में नहीं बल्कि खुद को खपाने में है। उनके लिए अहिंसा मानव जीवन का सर्वोपरि कानून था। इसलिए उन्होनें हिंसा के प्रत्येक रूप (व्यक्तिगत, सामूहिक, मानवेत्तर प्राणियों की हत्या, प्रेम एवं दया का मानव एवं अन्य जीवों के प्रतिअभाव) को पूर्णत: अस्वीकार किया। शांति सैनिक अपनी कार्यप्रणाली के दर्शन में जब अहिंसा को अपनाता है तो उसे साथ ही साथ युद्ध (सामुहिक हिंसा) का प्रतिकार तथा प्रेम, सद्भाव, समभाव, एवं प्राणी मात्र के प्रति सेवा भाव का प्रसार करना चाहिए। आदर्श रूप से इसे अभ्यास में लाने के लिए उन्हें स्वयं को निम्न गतिविधियों में लगा देना चाहिए :-

- **राहत, पुनर्वास एवं मानव सहायता**

जब भी प्राकृतिक आपदाऐं मानवता पर आक्रामण करेंगी, इन सबकी आवश्यकता होगी। गाँधी जी चाहते थे कि शांति सैनिक अग्नि शमन, प्राथमिक चिकित्सा, राहत सामग्री के वितरण, एम्बुलेंस सहायक के रूप में तथा राहत शिविरों के आयोजन में प्रवीण हो।

- **वैकल्पिक जीवन शैली**

शांति सैनिक उपभोक्ता वादी जीवन शैली को छोड़कर अहिंसक एवं उदार जीवन शैली अपनाऐं। गाँधी जी कहते थे जो अहिंसा व्रत धारण करें, उसके परिवार में, पड़ोसियों के प्रति, व्यापार में, संगठन एवं सार्वजनिक बैठकों में, तथा यहाँ तक कि अपने विरोधियों के साथ भी उसके व्यवहार में अहिंसा परिलक्षित हो।

- **अंतवैयक्तिक एवं अंतर सामूहिक सम्बंध**

गाँधी जी दो व्यक्तियों या समूहों के मध्य बेहतर सम्बंधों को स्थानीय सेवा के समकक्ष मानते थे। वो कहते थे कि इन सम्बंधों के माध्यम से असामाजिक तत्वों की समस्या को हल किया जा सकता है।

- **पर्यावरण मैत्री**

इसका अर्थ है अपने चारों और स्थित जैविक एवं अजैविक घटकों से मैत्री सम्बन्ध। हमें उन गतिविधियों में शामिल नहीं होना चाहिए जो पर्यावरण विनाश का कारण बनें।

16.3.2.5 आंतरिक शान्ति

एक शांति सैनिक को शांति एवं सृजनात्मकता से परिपूर्ण होना चाहिए। एक व्यक्ति जो आंतरिक रूप से शांत नहीं होगा, बाहर भी शांति स्थापना नहीं कर पाएगा। यह ठीक है कि आंतरिक एवं बाह्य शांति में एक सम्बन्ध होता है, फिर भी बाह्य अशांति को उत्तरदायी ठहराकर आंतरिक शांति से पलायन नहीं किया जा सकता। गाँधी जी के अनुसार योग, प्रार्थना, ध्यान, नीरवता, उपवास आदि के माध्यम से शांति सैनिक को आंतरिक शांति का प्रयास करना चाहिए। वो कहते थे “मेरा सबसे बड़ा हथियार, मेरी मूक प्रार्थना है।" उनके अनुसार एक शांति सैनिक के लिए ईश्वर में अटूट विश्वास, सेनानायक के प्रति पूर्ण आज्ञाकारिता, तथा सेना की आंतरिक एवं बाह्य इकाइयों में सहयोग आवश्यक है, तथा प्रशिक्षण अभ्यासों के माध्यम से आंतरिक शांति प्राप्त की जा सकती हैं।

गाँधी जी ने उपर्युक्त संदर्भ में निम्नलिखित बातों पर बल दिया :-

- **शांति एवं अहिंसा के लिए प्रशिक्षण**

इसमें शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक प्रशिक्षण शामिल है। गाँधी जी ने एक बार कहा था - एक सैनिक एवं शांति सैनिक के कुछ प्रारम्भिक प्रशिक्षण समान होगें। उन्होनें कहा था यदि बौद्धिक क्षमता हिंसक आंदोलनों में महत्वपूर्ण है तो यह अहिंसा के लिए उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार जिस प्रकार से सैनिक मारने का प्रशिक्षण प्राप्त करता है उसी प्रकार शांति सैनिक के लिए अहिंसा हेतु मरने का प्रशिक्षण आवश्यक है।

- **शांति खेल**

प्रतियोगी खेलों के स्थान पर, शांति पूर्ण समाज की स्थापना के लिए सहयोगात्मक खेल सीखने एवं खेलने चाहिए।

- **रूपान्तरण अभ्यास**

योग, ध्यान, प्रार्थना, आत्मनिरीक्षण तथा ऐसी ही तकनीकों के माध्यम से अहिंसा को जीवन में पूर्णता से उतारा जा सकता है।

शांति सेना के सिद्धान्त एवं आयाम शांति सैनिक बनने के लिए आवश्यक है, परंतु एक शांति सैनिक इस आयामों की समग्रता से बनता है। गाँधी जी एक दुर्लभ प्रतिभाशाली व्यक्तित्व थे जिन्होनें अपने समय एवं भविष्य के लिए शांति सेना की आवश्यकता को समझा। उन्होनें कहा था " यह मेरा अटूट विश्वास है कि यदि हमारे पास पर्याप्त संख्या में अहिंसक शांति सैनिक हो तो बिना करोडों रूपये खर्च किये हम शांति स्थापना में सफल हो सकतें है।" उनके अनुसार ऐसी सेना जो वास्तविकता में अहिंसक नहीं है, शांति की स्थापना नहीं कर सकती। गाँधी जी के बाद के युग में शांति सेना के विचार को ज्यादा विस्तार मिला।

16.3.4 शान्ति सैनिक की योग्यतायें

गाँधी जी ने शांति सैनिक की योग्यताओं के संदर्भ में विचार व्यक्त करते हुए कहा कि शान्ति सैनिक का अहिंसा में पूर्ण विश्वास हो, जो कि ईश्वर में पूर्ण आस्था के बिना संभव नहीं है। ईश्वरीय शक्ति एवं आशीर्वाद के बिना वो कुछ नहीं कर सकता। इसके बिना उसमें बिना क्रोध, डर या बदले की भावना के मरने का साहस उत्पन्न नहीं होगा। यह साहस इस विश्वास से उत्पन्न होता है कि ईश्वर सभी के हृदय में निवास करता है, तथा ईश्वर की उपस्थिति में भय का अस्तित्व नहीं हो सकता। ईश्वर की सर्वव्यापकता के ज्ञान का अर्थ है सभी जीवों के प्रति सम्मान, यहाँ तक कि जिन्हें हम विरोधी या असामाजिक कहते हैं उनके हृदय में भी ईश्वर निवास करता है। मनुष्य पर जब पाशविकता होवी हों तो इस अपेक्षित हस्तक्षेप के माध्यम से मानव की क्रोध की तीव्रता को दूर किया जा सकता है। गाँधी जी ने शांति सैनिक के लिए निम्न योग्यताऐं सुझाई:-

1. यह शांति का दूत पृथ्वी पर मौजूद सभी धर्मों के प्रति समान आस्था रखें। जैसे कि यदि वह हिंदू है तो, भारत के सभी, दूसरे धर्मों का सम्मान करें। इसके लिए आवश्यक है, कि देश में प्रचलित दूसरे सभी धर्मों के सामान्य सिद्धान्तों का उसे ज्ञान हो।
2. कार्य एकल या सामूहिक रूप से किया जा सकता हैं। अत: स्थानीय स्तर पर सेना के निर्यात के लिए साथियों की प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं है।
3. सामान्यत: कहा जाता है, शांति का कार्य स्थानीय व्यक्तियों द्वारा अपनी जगह पर किया जा सकता है।
4. यह शांति का दूत, शांति की स्थापना अपनी व्यक्तिगत सेवा एवं सम्बंधों के आधार पर स्थानीय लोगों के साथ अपनी ही जगह या चुने हुए क्षेत्र में करेगा ताकि किसी भी स्थिति के साथ निपट सके एवं उसे किसी दूसरे पर निर्भर न रहना पड़े।

5. कहने की आवश्यकता नहीं है, कि शांति सैनिक का चरित्र निर्दोष हो वो अपने निष्पक्ष व्यवहार के लिए जाना जाए।
6. सामान्यत: तूफानों की पूर्व में चेतावनी मिल जाती है, यदि ऐसा है तो, शांति सेना को विनाश की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, बल्कि स्थिति को पूर्वानुमान के आधार पर संभालने का प्रयास करना चाहिए।
7. इस आंदोलन की सफलता के लिए कुछ पूर्णकालिक स्वयंसेवकों का होना अच्छी बात है, परन्तु वह अत्यावश्यक भी नहीं है। इसके पीछे भावना जितना हो सके, उनको अच्छे एवं सच्चे पुरूषों एवं महिलाओं को जोड़ना है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से स्वयंसेवक शांति सेना से जुड़े, जो अपने क्षेत्रों के ऐसे लोगों के साथ सम्बंध स्थापित कर सकें जो शांति सैनिक की योग्यताऐं रखते हों।

ये सामान्य सुझाव हैं, प्रत्येक केन्द्र इन सुझावों के आधार पर अपना विधान बना सकता है।

16.4 सारांश

गाँधीजी ने कहा था "मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।" एक आदर्श शान्ति सैनिक कैसा हो इसकी सीख भी हम गाँधीजी के जीवन शैली को समझ कर प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने सर्वप्रथम 1938 में कांग्रेस पार्टी के समक्ष यह विचार रखा कि उसे एक शान्ति सेना का गठन करना चाहिए और तब से 1948 तक, यानि लगभग एक दशक तक, शान्ति सेना के गठन और कार्य सम्बन्धी अनेक दिशा-निर्देश दिये और कार्य किए। परन्तु उनके समय विभिन्न प्रयासों के उपरान्त भी शान्ति सेना का जो सपना गाँधीजी ने संजोया था वह साकार नही हो सका। उनके पश्चात विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण, इत्यादि के विभिन्न प्रयासों के कारण शान्ति सेना आंशिक रूप में तो विकसित हुआ और उसने भूदान और ग्रामदान जैसे आन्दोलनों में सक्रिय कार्य भी किया परन्तु जिस व्यापक स्तर पर गाँधीजी ने इसकी कलपना की थी वह आज भी साकार नहीं हुआ है। फिर भी सुखद बात यह है कि न केवल भारत में पर विश्व के पटल पर भी ऐसे प्रयास जारी हैं जिसके कारण हम आशान्वित हैं कि एक दिन गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत शान्ति सेना का सपना जरूर पूरा होगा और समाज एवं विश्व में हिंसा को रोकने एवं शान्ति निर्माण के कार्य को सम्पन्न करने में शान्ति सेना प्रभावी भूमिका अदा करेगा।

16.5 अभ्यास प्रश्न

1. शान्ति सेना का अर्थ, उद्देश्य एवं कार्यों को समझाइये।
2. शान्ति सेना से सम्बन्धित गाँधीजी के विचार समझाइये।
3. शान्ति सेना की क्रियाविधि के सैद्धान्तिक आधार और शान्ति सैनिक की योग्यतायें समझाइये।

16.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गाँधी, एम.के., सत्य के साथ मेरे प्रयोग (आत्मकथा), नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1988
2. गाँधी, एम.के., नॉन वायलेंस इन पीस एण्ड वार, अहमदाबाद : नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, 1949
3. पारीख भीखू, कोलोनियलिस्म ट्रेडिशन एण्ड रिफार्म : एन एनालिसिस ऑफ गाँधीस पॉलिटिकल डिस्कोर्स, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1989
4. बोन्दुरां जे., कोंक्वेस्ट ऑफ वायलेंस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुम्बई, 1959
5. वेबर, थॉमस, द शान्ति सेना : फिलॉसफी, हिस्ट्री एण्ड ऐक्शन, ओरियन्ट ब्लेकस्वेन, नई दिल्ली, 2009
6. भास्करन एम. विल्लियम, इण्डियन परस्पेक्टिव ऑन कानफिल्ट रेसोल्यूशन, गाँधी मीडिया सेंटर, थिरूवनन्थपुरम, 2004

ISBN : 13/978-81-8496-338-0